साहित्य के साथ जीवन का सम्बन्ध स्थापित करना और उसे युग का प्रतिनिधि, सामाजिक अभिव्यक्ति कहना फ्रास की राज्य-क्रान्ति से ही प्रारम्भ हो गया था। इस परिपार्श्व मे साहित्यिक अध्ययन के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि विषय की सास्कृतिक और साहित्यिक पीठिका का विवेचन हो जाय। प्रस्तुत विषय के सन्दर्भ मे इस पृष्ठभूमि का उपयोग दो रूपो मे सिद्ध है। सामान्यत यह माना जाता है कि प्रत्येक श्रेष्ठ कलाकार सस्कृति का वक्ता, उसकी विशेष धारा का प्रतिनिधि होता है। हम निराला के काव्य को भारत के सास्कृतिक-पुनर्जागरण के सदर्भ मे देखते हैं और इस कथन की सत्यता मूल्याकित करते हैं। इसके साथ ही श्रेष्ठ कलाकार का एक और पक्ष होता है। वह युगीन साहित्यिक गतिविधियो का प्रतिनिधित्व और नेतृत्व भी करता है। समय की प्रवहमान गतिशील साहित्य-धारा मे श्रेष्ठ कलाकार एक मोड उपस्थित करता है और स्वभावत ही एक नवीन आन्दोलन का पुरस्कर्ता भी बनता है। यह आन्दोलन और मोड पुरानी धारा से किन अर्थो मे नवीन है—इसका मूल्याकन प्राचीन धारा के परिचय से ही ज्ञापित हो सकता है। इस परिवर्त का उद्देश्य उसी सास्कृतिक जागरण और साहित्यिक-पृष्ठभूमि से परिचित होने का है, जो निराला के काव्य मे मूर्त भी है और नवीनता का अवदान भी देती है। सास्कृतिक और साहित्यिक इस रेखाचित्र मे उन तत्वो की शोध का ही प्रयत्न है, जिससे निराला के काव्य ने समर्थन प्राप्त किया है।

यूरोपीय पुनर्जागरण और फ्रास की राज्यक्रान्ति, वहाँ उदार-भावनाओ का प्रवेश लेकर आए थे। भारत का पुनर्जागरण भी पाश्चात्य सम्पर्क का परिणाम है। यह कहना अधिक दूर तक सत्य न भी हो तो उसका श्रेय उस सम्पर्क को आशिक रूप से मिलता ही है। पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क मे बगाल प्रथम रहा और नवीनता की जो लहर आई उसकी चेतना का प्रथम स्फुरण भी वही हुआ। १८५७ की राज्य-क्राति के बाद भारतीय चतुर्दिक् विपन्नता के दर्शन होते है। अग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य-सभ्यता के प्रभाव स्वरूप, पुनर्जागरण का आन्दोलन माना जाता है, लेकिन इस जागरण मे भी धार्मिक-पुनरुत्थान को ही प्रमुख दायित्व है। वस्तुत यह आन्दोलन रक्षात्मक रूप मे ही आया और अग्रेजी शिक्षा उसकी बाह्य प्रेरणा मात्र मानी जा सकती है। उस शिक्षा का ही परिणाम था कि भारतीय चेतना ने पश्चिम का अनुराग, भारत के अतीत को भी भुला बैठा था। यह सही है कि यूरोपीय बुद्धिवाद के प्रभाव मे सामाजिक बुराइयो और धार्मिक रूढियो के प्रति तीव्र आलोचक दृष्टि का उदय हुआ

था, लेकिन इसमें पाश्चात्य अनुवर्तिता भी प्रमुख थी, इसे अस्वीकार नही किया जा सकता। पुनर्संस्थापन और पुनरुत्सर्जन का जो आन्दोलन आया उसमे अतीत के प्रति जो कुछ राग मिलता है, वह भी कतिपय राष्ट्रीय और आध्यात्मिक नेताओ का ही कार्य है, अन्यथा बगाल के तत्कालीन नवोदित भारतीय युवको मे तो एक सीमा तक उच्छृ खलता भी मिलती है जो अतीत से अप्रत्याशित ही विदा लेना चाहता है—परम्परा से कटी हुई शाख की तरह विच्छिन्न होना चाहता है। पर परम्परा को इस सफलता से उपस्थापित नहीं किया जा सकता, यह नवीन आन्दोलन की मूल प्रवृत्ति भी प्रमाणित करती है।

यह सही है कि नवीन शिक्षा के फलस्वरूप भारत मे धार्मिक और सामाजिक दुर्दशा की जाच हो चुकी थी, पर उससे हानि भी कम नहीं हुई थी। राजा राममोहन राय का ऐसे अवसर पर समाज का नेतृत्व लेना एक अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति है। भारतीयों की क्रमश वर्द्धमान दासता का जो दूरगामी परिणाम हो सकता-था उसे राजा राममोहन राय प्रभृति कुछ नेताओं ने इतनी दूर नही जाने दिया। भारतीय नवोत्थान की धारा के क्रम मे छोटे-बडे अनेक व्यक्तित्व उत्पन्न हुए हैं। यह धारा अब भी प्रवहमान है और आज भी ऐसे व्यक्तित्वो का अविर्भाव अवरुद्ध नहीं हुआ है किन्तु इन सारे व्यक्तित्वो के आध्यात्मिक पिता राजा राममोहन राय हैं।[1] राय महोदय का उद्देश्य मध्यम मार्ग को लेकर चलना था। अपने धर्म और अपनी परम्परा मे विश्वास के साथ ही वे पाश्चात्य नवीन सभ्यता की विशेषताओ के साथ समन्वय करना चाहते थे। मिस कालेट ने लिखा है कि 'इतिहास मे राजा राममोहन राय का स्थान उस सेतु के समान है, जिस पर चढकर भारतवर्ष अपने अतीत अथाह से अज्ञात भविष्य में प्रवेश करता है।' एक ओर जहाँ राजा राममोहन राय पर वेदान्तिक प्रभाव और हिन्दुत्व के प्रति तीव्र राग था वही दूसरी ओर पाश्चात्य प्रभावों को भी वे छोडना नहीं चाहते थे। यूरोपीय मानवतावाद का भारतीय सस्करण उनके विचारो मे प्राप्त होता है। यह अवधारणा अधिक व्यापक, उदार और युगीन भी रही। 'ब्राह्मो-समाज' की स्थापना का लक्ष्य एक ईश्वर मे विश्वास भी था और हिन्दू धर्म की रुढि मूर्ति-पूजा का विरोध भी। ब्राह्म-समाज के वास्तविक सस्थापक महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने आदि-समाज की धारा को दूसरा ही मोड दिया जिसमे केशवचन्द्र सेन का नव-विधान पूर्व ही ईसाईयत के प्रभाव को प्रमुख करने लगा था। परवर्ती ब्रह्म-समाज की गतिविधियों मे भारत के यूरोपीयकरण की जो प्रवृत्ति दिखाई दी थी वह नवोत्थान का पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व या नेतृत्व नही कर सकी। ब्रह्म-समाज के कतिपय व्यक्तियो ने वेदो पर बौद्धिक और तार्किक शैली प्रयुक्तकर उनके अपौरुषेयत्व से असहमति प्रकट की, जो उन्हें हिन्दू समाज और जनता से दूर ले गई। यह सही है कि ब्रह्म-समाज ने समाज-सुधार के कुछ प्रयत्न भी किए लेकिन वे सुधार भी ईसाई प्रभाव ही माने गए। ब्रह्म-समाज का प्रेरणा-पुत्र महाराष्ट्र का प्रार्थना-समाज

१ —जकारियो, रिनेसेन्ट इडिया

महाराष्ट्र मे नव-जागृति का सन्देश लेकर स्थापित हुआ। जस्टिस रानाडे के समाज-सुधार सम्बन्धी विचारो मे अधिक उदारता थी और वे अपनी परम्पराओ पर उतने कटु प्रहार भी करना नहीं चाहते थे। बंगाल की नवोत्थान-प्रेरणा महाराष्ट्र मे आकर अधिक सामाजिक भी हुई। शारदा-सदन ने नारियों की जागृति के उद्देश्य से कार्य भी किया, लेकिन महाराष्ट्र के सुधारो का परिणाम भी दूरगामी नही हुआ। सुधारको की वैयक्तिक सीमाओ और परिस्थिति की प्रतिकूलता ने उसे पूर्ण नही बनने दिया। फिर भी इतना तो सही है ही कि, जिस भारतीय और हिन्दू राष्ट्रीयता का जयघोष तिलक ने आगे चलकर किया, उसका सांस्कृतिक धरातल रानाडे ने पहले ही स्थापित कर दिया था। आधारत ब्राह्म-समाज और प्रार्थना-समाज का उदय भ्रम की-सी स्थिति मे हुआ, जब कि चेतना अपनी गति के लिए मार्ग ढूंढा करती है। एक दिग्भ्रम का-सा वातावरण तत्कालीन आन्दोलनों मे दिखाई पडता है। ऐसी स्थिति मे महर्षि दयानन्द का आविर्भाव, वेदो के पुनर्संस्थापन और आर्यत्व के प्रतिष्ठा-स्थापन का उद्देश्य लेकर हुआ। ब्रह्म-समाज और प्रार्थना-समाज की उनकी आलोचनाओ मे स्वदेश-भक्ति, वेद-प्रतिष्ठा और आर्यत्व-गौरव-दिग्दर्शन का प्रयत्न है। उस परिस्थिति मे भारतीयो को अपने अतीत पर विश्वास और हिन्दुत्व की शक्ति का परिचय देना उन्हे प्रगति के लिए कृत-संकल्प करना था। दयानन्द ने भी बुद्धिवाद को ही अपना अस्त्र बनाया और मानवतावाद के प्रति भी उनकी स्वाभाविक गति थी। लेकिन यह कार्य भी उन्होंने हिन्दुओ को जाग्रत कर, उन्हे प्रगतिशील बनाकर ही किया। आर्य-समाज ने समाज की कुरीतियो और समस्याओ का निराकरण तो किया ही, अतीत गौरव के प्रकाश मे पुनर्जागरण का सन्देश भी दिया। उसने आशा और जीवन के प्रति ऐहिक-दृष्टि का भी समस्थापन किया। आर्य-समाज का महत्व इसी मे है कि उसने हिन्दुत्व की हीन-भावना को मिटाया, उत्साह उत्पन्न किया और प्रगति के लिये तैयार किया। आर्य समाज के उदय के बाद अविचल उदासीनता की मनोवृत्ति विदा हो गयी। हिन्दुओ का धर्म एक बार फिर जगमगा उठा।[1] यह हिन्दुत्व की प्रतिष्ठा इस सीमा तक की गई कि विदेशी महिला ऐनीबेसेन्ट तक ने अखिल विश्व का कल्याण, हिन्दुत्व के जागरण मे माना। उन्होंने कहा कि चालीस वर्षों के सुगम्भीर चिन्तन के बाद मैं यह कह रही हूँ कि विश्व के सभी धर्मो मे हिन्दू धर्म से बढ़कर पूर्ण वैज्ञानिक, दर्शन-युक्त एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण धर्म दूसरा और कोई नही है।[2] इस सांस्कृतिक पुनरुत्थान के साथ ही थियोसाफिकल सोसाइटी का महत्व राजनीतिक चेतना के स्फुरण मे भी है और कहा तो यहा तक जाता है कि गाधी के आविर्भाव के लिए जमीन तैयार करने वालो में एक अमर नाम श्रीमती ऐनी बेसेन्ट का भी है।[3]

ये प्रयत्न और प्रयास उस प्रमुख सांस्कृतिक जागरण की भूमिका का कार्य करते

1 —The Cultural Heritage of India : Part 2

२ —१९१४ का उनका भाषण। संस्कृति के चार अध्याय—दिनकर पृ० ४७६

३—वही पृ० ४६६

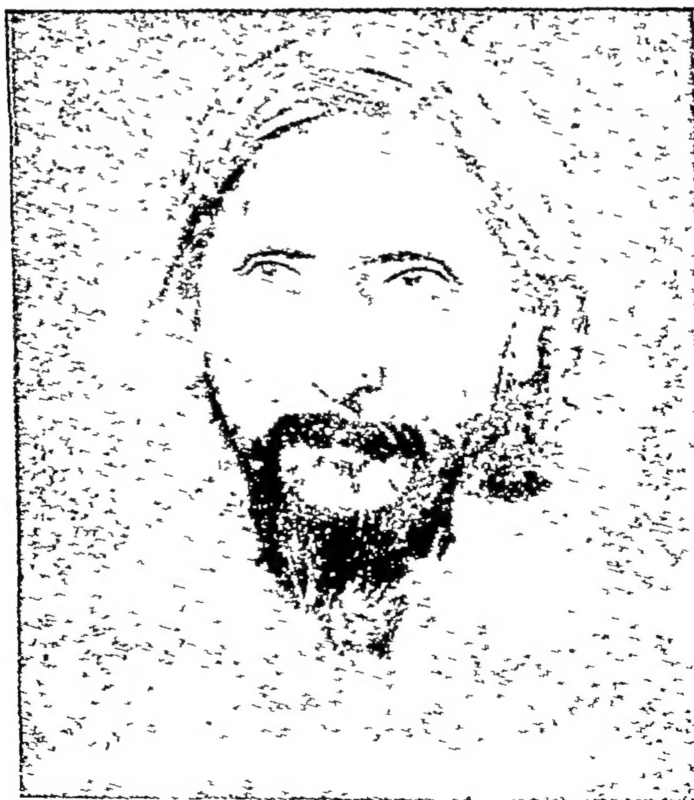
प्रकाशक—
विद्या प्रकाशन मन्दिर
दरिया गज, दिल्ली ।

प्रथम सस्करण—सन् १९६०

मूल्य : दस रुपये (१०.००)

मुद्रक—
हरिहर प्रेस,
चावडी बाजार, दिल्ली ।

काव्य-पुरुष निराला को—



प्राक्कथन

श्री धनञ्जय वर्मा की प्रस्तुत पुस्तक कवि निराला पर लिखे गए उनके प्रबन्ध का किंचित् परिवर्तित रूप है। निराला के साहित्य और उनके व्यक्तित्व से सबंधित कई पुस्तकें अब तक प्रकाशित हुई हैं। वे सभी विवेच्य विषय पर अपनी अपनी दृष्टि से प्रकाश डालती हैं। परन्तु किसी एक पुस्तक में निराला के व्यक्तित्व, उनकी विचारणा और उनके काव्य का समाहित स्वरूप उपस्थित नही हुआ। प्रस्तुत पुस्तक मे श्री धनञ्जय वर्मा ने इनका एक समाहित चित्र देने का प्रयत्न किया है। व्यक्तित्व और जीवनी वाले अध्यायो के परिपार्श्व मे निराला जी के काव्य की समीक्षा की गई है। इस कारण सम्पूर्ण पुस्तक में एक अन्विति और समरसता आ सकी है, जो लेखक की उल्लेखनीय उपलब्धि है। निराला-काव्य का विवेचन आनुक्रमिक भमिका पर किया गया है, जिससे उनकी काव्य-रचना के क्रम-विकास का यथोचित परिचय मिल जाता है। निराला जी के व्यक्तित्व के अनेक पहलू उनके काव्य मे प्रतिच्छायित हुए हैं, परन्तु सूक्ष्मता के साथ और गहराई में जाकर उस प्रतिच्छाया का निर्देश अब तक पर्याप्त रूप मे नहीं किया गया है। धनञ्जयजी ने इस दिशा मे भी प्रयास किया है। प्राय: लोग निराला के काव्य को अतिरजना की दृष्टि से देखते रहे हैं। कुछ समीक्षको को उनमे सहृदयता की कमी दिखाई दी है। बौद्धिक पक्ष का प्राबल्य जान पडा है। कुछ अन्यो को उनकी काव्य-रचना मे कोई दोष दिखाई नही दिया। इन सब मे सतुलित दृष्टि की कमी रही है। श्री धनजय वर्मा ने यहाँ भी एक सतुलन लाने की चेष्टा की है। निराला जी के अद्यतन काव्य मे कुछ नए तत्व पाए जाते हैं जिनकी विवेचना हाल के समीक्षको ने बहुत ही एकागी दृष्टि से की है। निरालाजी का काव्य-विकास 'परिमल-गीतिका' तक एक विशेष दिशा का निदर्शक है। उनकी "राम की शक्ति-पूजा" और "तुलसीदास" आदि वृहत्तर काव्य-रचनाएँ एक दूसरे उत्थान की प्रतिनिधि हैं। "कुकुरमुत्ता" से लेकर "वेला और नए पत्ते" तक निराला जी का काव्य व्यग्य, हास्य और प्रयोग की धाराओ मे प्रवाहित हुआ है। उनका अन्तिम काव्य निर्माण शान्त रस की भूमिका पर चल रहा है। भाषा के प्रयोग में भी अनेक परिवर्तन निराला जी ने किए हैं, यद्यपि उनकी एक शृंखला भी बनी हुई है। इन समस्त भिन्नताओ के रहते हुए निराला का काव्य-वैशिष्ट्य किसी सूक्ष्मदर्शी समीक्षक द्वारा ही आकलित हो सकता है। प्राय लोग उनकी सपूर्ण रचनाओं का तारतम्य नही जान पाते। विविधता में एकता की पहिचान नही हो

पाती। श्री धनञ्जय वर्मा ने निराला-काव्य के वैविध्य की छानबीन की है, और उसके समन्वित आकलन का प्रयत्न भी किया है। सक्षेप मे इस पुस्तक मे निराला के काव्य-वैशिष्ट्य को केन्द्र मे रखकर उनकी विविध कृतियो की समीक्षा की गई है। पृष्ठभूमि मे निराला की जीवनी बराबर बनी रही है। इस कारण इस समीक्षा-पुस्तक मे वस्तुमुखी साहित्यिक विवेचन के लिए अधिक अवकाश मिल सका है। पुस्तक में अब तक की समीक्षाओ का उपयोग करते हुए नए सतुलन और समाहार का उद्योग किया गया है। यही इस पुस्तक की प्रमुख विशेषता है। यह प्रबन्ध मेरे ही निरीक्षण मे लिखा गया है, इसलिए इसकी प्रशसा करना हमारा कार्य नही। यह तो हिन्दी के साहित्यिक पाठको के निर्णय का विषय है।

अध्यक्ष—हिन्दी विभाग
सागर विश्वविद्यालय
सागर
२६–२–६०

नन्ददुलारे वाजपेयी

विवृत्ति

प्रेरणा और दिशाएँ

प्रस्तुत समीक्षा की प्रेरणा गुरुदेव आचार्य वाजपेयी जी से ही प्राप्त हुई और उसका यह रूप उन्ही के निर्देशो का परिणाम है। निराला जी के काव्य क मूल्याकन अपेक्षाकृत कम ही हुआ है और यही कारण है कि युग के अन्य कवियो पर जहाँ समीक्षाओ की बहुलता है वहाँ निराला जी के विषय में उनकी विरलता। मैंने साहस किया है और मुझे निर्देशन का बल प्राप्त हुआ है।

प्रस्तुत समीक्षा के प्रस्थान के विषय मे मुझे कुछ कहना है। मूलत मेरा प्रयत्न आचार्य वाजपेयी जी की समीक्षा सम्बन्धी चेष्टाओ की सप्त-सूत्रीय-व्याख्या[१] का अनुवर्तन रहा है। आरोपित समीक्षा के स्थान पर मेरा प्रयत्न काव्य और कवि सापेक्ष्य समीक्षा का है और मूलत मैंने व्याख्या का मार्ग ही अपनाया है। इसी कारण आकार भी कुछ वढ गया है। काव्य-समीक्षा मे निर्लिप्त तटस्थता की अपेक्षा की जाती है अवश्य, पर मैं अपने को सदैव एक महत्ता के सामने पाता रहा हूँ और स्वभावत मैं अधिक वस्तु-परक नहीं हो पाया हूँ। मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँच पाया हूँ कि कविता तटस्थ होकर पढी ही नही जा सकती। अवश्य यह समीक्षा की वैज्ञानिकता के मार्ग मे एक वाधा है, पर इससे उसकी मूल-धारणा की क्षति भी नही होगी, ऐसा विश्वास है।

प्रस्तुत समीक्षा

विषय का विभाजन तीन परिवृत्तों और नौ परिवर्तों मे हुआ है। सास्कृतिक जागरण और साहित्यिक पृष्ठभूमि की अधिकाँश सामग्री सकलित है। यद्यपि मेरा प्रयत्न व्याख्याओ की भिन्नता की ओर रहा है और परिणामत निष्कर्षों में भी कुछ भिन्नता है। सास्कृतिक और साहित्यिक चेतना की गतिमान धारा में कवि का ग्राह्य और देय दोनो विवेचित करने की ओर मेरा लक्ष्य रहा है। स्वामी विवेकानन्द के कार्यों का विस्तार से विवेचन सोद्देश्य है। कवि पर उनके दर्शन और चिन्तन का यथेष्ट प्रभाव है। साहित्यिक धाराओ का विवेचन भी भारतीय पुनर्जागरण काल से लेकर समसामयिक गतिविधियों तक हो गया है। इसका उपयोग कवि के कार्यों का महत्व समझने में भूमिका का है।

१—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, विज्ञप्ति

यद्यपि यह सही है कि 'साहित्यकार के जीवन का विश्लेषण उसके साहि के मूल्यांकन से कठिन है',[1] तथापि मेरा प्रयत्न निराला जी के व्यक्तित्व का, मनो वैज्ञानिक परिपार्श्व विश्लेषण का रहा है। इस प्रयत्न मे कुछ वैज्ञानिकता और वस्तु परकता का लक्ष्य भी मेरा रहा है। व्यक्तित्व-विश्लेषण का उद्देश्य काव्य को समझ की दिशा मे, सहयोग है और मैंने उनके व्यक्तित्व और काव्य मे एक समप्रवा धारा पर ही अधिक बल दिया है। साथ ही एक विवादास्पद प्रश्न पर भी मैंने विचा किया है। उनकी वर्तमान-धारा पर विचार इसलिए भी किया गया है कि इ अवस्था मे उन्होंने काव्य-सृजन किया है। इस विवेचन मे मेरा अपना कोई निष्क इसलिए नही है कि वह आत्यन्तिक प्राप्त नही किया जा सकता। सभावनाएँ व्यक्त की जा सकती है। वही हुआ भी है।

काव्य की सही-सही भावकता के लिए कवि की काव्य-दृष्टि का महत्व आधुनि समीक्षा का एक उपयोगी दिशा-निर्देश है। काव्य के विषय मे कवि के लक्ष्य औ दृष्टि का विवेचन भी इसी दिशा का अनुसरण है। इस ओर एक कठिनाई रही है स्पष्ट निर्देशो की पूरी-पूरी स्थिति के अभाव मे मैंने उनकी व्याख्या पर आग्रह किया है निराला जी की काव्य-दृष्टि का युग के सन्दर्भ मे महत्व और देय का विवेचन कि गया है। यह उनके काव्य के मूल को ग्रहण करने मे हमारी सहायता कर सकता है

परिवृत दो पूरी तरह से उनके कलात्मक सौष्ठव का अध्ययन है जो चा परिवर्तों मे विभाजित है। प्रथमत. उनके मुक्त-छद का अध्ययन है और 'परिम इसका केन्द्र है। परिमल की रचनाओ का सुविधानुसार विषयगत विभाजन भी व लिया गया है और परिमल के युगीन महत्व के प्रति मेरा आग्रह रहा है। इस अं मेरे विश्वासो मे प्रतिनिधि मान्यताओं से किंचित् विरोध है, तथापि मैंने उसके कार भी दिये हैं।

गीतिका, अर्चना, आराधना और गीतगुंज पर दृष्टि केन्द्रित कर निराला की गीत-सृष्टि पर विचार किया गया है। ऐसा नही है कि गीत अन्य ग्रथो मे न मिलते, पर काव्य-रूपों के साथ ही मेरी दृष्टि उनकी मूल-भूमि पर भी रही है, इ लिए अणिमा और वेला के गीतो का अन्तर्भाव इस परिवर्त मे नही हो सकता है गीत-सृष्टि मे मैंने निराला के सगीत-काव्य पर अधिक आग्रह किया है और रूप साथ ही आत्मा का विवेचन यहाँ प्रधान है।

प्रगति और प्रयोग के रूप में कुकुरमुत्ता, वेला, नये पत्ते और अणिमा रचनाओ का विवेचन उनकी मूल-भूमि को ध्यान मे रखकर किया गया है। निराला जी के काव्य मे एक नया मोड था, अत समीक्षा शैली मे भी कुछ अन्तर गया है। यहाँ उस भूमि को स्पष्ट करने की ओर ही मेरा प्रयत्न रहा है।

वृहत्तर रचनाओं का केन्द्र अनामिका है और अनामिका को मैंने उनका प्रति निधि काव्य-सग्रह माना है। उसकी दो विशिष्ट रचनाओ और तुलसीदास का अध्

१—पथ के साथी : महादेवी वर्मा पृ० ६५

न महाकाव्यात्मक परिवेश मे ही किया गया है और मेरा प्रयत्न यहाँ निराला जी
: महत्-काव्य का विवेचन रहा है। महत् काव्य की अवधारणा के विषय मे यद्यपि
वरक्राम्बी के ग्रन्थ [1] की विशेषता है, तथापि उसकी स्थापनाओ मे शास्त्रीय-काव्य
क्लासिकल पोयट्री) को केन्द्र बनाया गया है और सामान्यत उसकी अधिकाश
वशेषताएँ श्रेष्ठ काव्य की भी है। इस कारण महत् काव्य की अवधारणा मे किसी
क आधार को केन्द्र न बनाकर शाश्वत और स्थायी मूल्यो के प्रति ही आग्रह व्यक्त
िया गया है। इस परिवर्त मे इस विश्वास के विवेचन का प्रयत्न है कि निराला
ी के महाकाव्य के प्रणयन के अभाव मे भी वे महाकवि हैं और उनका काव्य महा-
ाव्यात्मक गरिमा को प्राप्त करता है।

परिवृत्त तीन मे निराला जी के काव्य के शिल्प-पक्ष का अध्ययन है और इस
ोर भी मेरा प्रयत्न शिल्प-पक्ष की चली आती हुई शैली, अलकार और रस आदि के
ववेचन की अपेक्षा स्वतन्त्र रूप की ओर रहा है। वहाँ अलकारो का नाम नही
िनाया गया है, न ही रस की विवेचना मे उसके अगो का विवेचन हुआ है। शिल्प
ो एक स्वतन्त्र अन्विति न मानकर काव्य के अन्तरग के अनुरूप ही इसका अध्ययन
िया गया है।

अन्तिम परिवर्त—निष्पत्ति : मूल्याकन— निराला जी के काव्य के प्रति समीक्षा-
मक विश्वासो और स्थापनाओ की विवेचना है। उनकी मूल विशेषताओं और युगीन
ाहत्व तथा प्रदेय का विवेचन इस परिवर्त का लक्ष्य है और सामान्यत यह उपसहा-
ात्मक, निष्कर्षात्मक है।

निराला के सम्पूर्ण काव्य और उनके व्यक्तित्व की व्यापकता तथा अप्रतिमता
रखने का मेरा यह प्रयत्न है।

आभार बोध

प्रस्तुत समीक्षा की प्रेरणा से लेकर उसके अन्तिम रूप तक की सारी प्रक्रिया
ुरुदेव की कृपा और आशीर्वाद का परिणाम है। प्रस्तुत समीक्षा ही क्या सम्पूर्ण
ारा वर्षों का अध्ययन उन्ही की अनुकम्पा का परिणाम है, अत किसी औपचारिक
ौर व्यवहारिक, शाब्दिक अभिव्यक्ति के स्थान पर मैं उसे आत्मानुभूत करता हूँ।
यह पूरी समीक्षा उन्ही की प्रेरणा है,—उन्ही का है, केवल इसकी न्यूनताएँ और
सीमाएँ मेरी अपनी है।

चैत्र शुक्ल १२ सोमवार स० २०१६
२० अप्रैल १९५९
सागर विश्वविद्यालय, सागर।

धनञ्जय वर्मा
हिन्दी-विभाग

1—Lascelles Abercrombie : The Idea of Great poetry.

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशित करते हुए हम गर्व अनुभव कर रहे हैं। युग-स्र
महाकवि निराला पर पहले भी लिखा गया है पर इस पुस्तक मे महाकवि के जीव
तथा कृतियों का जो विशद और प्रमाणिक मूल्याकन हुआ है वह लेखक के गा
अध्ययन तथा प्रतिभा का परिणाम है, तिस पर निराला जी के निकटतम जानक
प्रसिद्ध विद्वान आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के निरीक्षण और निर्देशन ने इसकी प्रम
णिकता मे सोने में सुहागे का काम किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन की प्रेरणा मे श्री रामदुलारे वाजपेयी का बडा ह
रहा है। आभार शब्दों से अधिक आत्मानुभूत करता हूँ।

—अमरनाथ शु

विषयानुक्रमणिका

परिवृत—१

परिवृत—२

परिवृत—३

परिवृत–१

१ सांस्कृतिक जागरण और साहित्यिक पृष्ठभूमि
२ व्यक्तित्व–विश्लेषण
३ काव्य–दृष्टि

परिवर्त — एक

सास्कृतिक जागरण और साहित्यिक पृष्ठभूमि

१ प्रयोजन

साहित्य और समाज तथा युग

प्रस्तुत ग्रंथ मे सास्कृतिक पीठिका का महत्व, कलाकार, संस्कृति का वक्ता

युगीन साहित्यिक गतिविधियो का प्रतिनिधित्व और श्रेष्ठ कलाकार परिवर्त का प्रयोजन। सास्कृतिक जागरण और साहित्यिक पृष्ठभूमि का परिचय

२ सास्कृतिक जागरण

भारतीय नव जागरण और नव शिक्षा, राजा राममोहन राय, ब्राह्मो- समाज, केशवचन्द्र सेन और देवेन्द्रना ठाकुर, प्रार्थना-समाज और रानाडे, आर्य-समाज और दयानन्द, थियोसाफिकल सोसाइटी और ऐनी बेसेंट।

रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण का धर्म वेदान्ती अद्वैतवाद, विवेकानन्द,

तिलक, गांधी, अरविन्द,

बाह्य-प्रभाव, मार्क्स

३ साहित्यिक पृष्ठिभूमि

स्वच्छन्दतावादी काव्य, भारतेन्दु युग, द्विवेदीयुग, स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन, छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, साम्प्रतिक आन्दोलन

४ निष्कर्ष

स्वच्छन्दतावादी काव्य और सास्कृतिक जागरण

छायावाद का आरम्भ

निराला का प्रवेश और इस सन्दर्भ मे उनका महत्व

ही सत्य है तथा सर्वकारण है । यह विश्व ब्रह्म का रूप है और आत्मा भी ब्रह्म है, क्योकि आत्मा की परमात्मा से अग्नि उर्दाचवत्[२] उत्पत्ति सङ्केतित हुई है । ब्रह्म ही क्योकि अन्तिम सत्य है और शेष सब कुछ का अन्तर्भाव उसमे हो जाता है, अत उपनिषदो ने मानव की मूल एकता और अभेदत्व का सन्देश दिया । इसी औपनिषदिक विचारधारा पर शकराचार्य का अद्वैतवाद प्रतिष्ठापित हुआ । शकराचार्य के ब्रह्म-सूत्र मे आत्मा की मुक्ति का ही सन्देश है । उनके मत का मूल बहुश्रुत—"ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या"—ब्रह्म को ही एकमात्र सत्य मानता है । माया तो मिथ्या और भाव-मात्र है । वह जीव को अज्ञान मे डालकर दु ख को वरण करती है और ब्रह्म मे पृथकता अनुभव करती है । पारमार्थिक दृष्टि से शकराचार्य जीवात्मा और ब्रह्म का एकात्म निर्धारित करते हैं । सत्य के दो रूप वहाँ माने गये हैं—पारमार्थिक एव व्यावहारिक । ब्रह्म पारमार्थिक सत्य है और ससार व्यावहारिक, जो पारमार्थिक दृष्टि से असत्य ही है । अँधेरे की रस्सी मे साँप का भ्रम-सा ही है । शाकरमत मुक्ति का मार्ग ज्ञान को ही मानता है । ससार का मिथ्यात्व, ब्रह्म और जीवात्मा की अद्वैतता का ज्ञान ही मुक्ति है । भारत की चिन्ताधारा के प्रमुख निवृत्ति और प्रवृत्ति मार्गो मे शाकरमत निवृत्ति को लेकर चला था । वहाँ कर्म, प्रवृत्ति नही, ज्ञान और निवृत्ति ही मुक्ति का साधन है । ससार को मिथ्या मानकर उसमे राग अथवा प्रवृत्ति के प्रति शाकर-मत की असहमति है । भारत की तत्कालीन स्थिति मे शकर का यह निवृत्ति-मार्ग किस सीमा तक कल्याणकारी और युगीन आवश्यकता की पूर्ति करता यह सन्दिग्ध है, परन्तु इतना तो असदिग्ध है ही कि अद्वैतवाद की दार्शनिक व्याख्या मे शकराचार्य का बहुत बडा महत्व है, लेकिन तत्कालीन भारत को तो ऐसे दर्शन और जीवन दिशा की आवश्यकता थी जो जीवन के प्रति निवृत्ति का, कर्म का सन्देश देकर देश और समाज का हित करती । यह कार्य स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक और कर्मठ वेदान्त ने किया । उस भौतिकवादी युग मे भी प्राचीन धर्म के पुनरुत्थान का जो क्रम स्वामी जी ने आरम्भ किया, वह अपूर्व था । वेद को उन्होंने समस्त आध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत मानकर अद्वैतवाद को कर्मजीवन मे परिणित किया ।[३]

विवेकानन्द ने कहा कि, यह ससार प्रकृति और माया भी अनादि और अनन्त है । सृष्टिकारिणी शक्ति सर्वकाल मे विद्यमान रही है और वह अभी वर्तमान भी है ।[४] सृष्टि का तात्पर्य विवेकानन्द ने प्रकाशित होना, बाहर निकलना माना । उनका कथन है कि अग्रेजी मे क्रियेशन (Creation) शब्द से जो तात्पर्य निकलता है, वह भ्रामक है, युक्ति पूर्ण नही है । क्योकि वह असत् से सत् की उत्पत्ति मानता है । अभाव से भाव का और शून्य से ससार का उदय मानता है । सृष्टि का यथातथ्य अर्थ प्रोजे-

१—ईशोपनिषद् ।
२—मुण्डकोपनिषद् ।
३—भारत मे विवेकानन्द—अनु श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' पृ० ४५८ ।

क्शन (Projection) है। समस्त प्रकृति और सृष्टि वर्तमान तो रहती है केवल प्रलयकाल मे वह कुछ समय के लिये विलीन हो जाती है। और फिर प्रकाशित होती है, बाहर आती है।[1] यह सृष्टि किसने की ? विवेकानन्द उत्तर देते हैं—ईश्वर ने की, ब्रह्म ने की, जो नित्य, नित्यशुद्ध, सदा जाग्रत, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, परमदयामय, सर्वव्यापी, निराकार और अखड है। विवेकानन्द ने यहाँ आकर एक बहुत बडे ऐसे प्रश्न का समाधान किया जो तर्क की तुला पर नास्तिकता को प्रश्रय दे सकता है। उन्होंने शका उठाई कि यदि ब्रह्म ही इस ससार का स्रष्टा और नियता है, तो ससार मे वैषम्य क्यो है ? उसमे आपत्तिया क्यो हैं ? उत्तर मे वेदान्त कहता है, कि यह ईश्वर का दोष नही है कि जगत मे यह वैषम्य है, यह प्रतिद्वन्द्विता विद्यमान है। इसकी सृष्टि हमी ने की। ईश्वर की कृपा तो नित्य है, वह अपरिवर्तनीय भी है। हमी लोग वैषम्य के कारण हैं। सृष्टि की तरह जीवन भी तो अनादि और अनन्त है। शून्य से उसकी उत्पत्ति ही भ्रामक है। जिसे स्वामी जी ने कर्म-विधान कहा—वह मानता है कि हमी कार्य हैं और हमी कारण हैं। मनुष्य की इच्छा-शक्ति को स्वामी जी ने किसी भी घटना के अधीन अनुवर्ती नही बनाया। उसकी प्रबल, विराट, अनन्त इच्छाशक्ति और स्वतन्त्रता के सामने सभी शक्तियाँ—यहाँ तक कि प्राकृतिक शक्तियाँ भी—सिर झुका देंगी।[2] आत्मा को उन्होंने चली आती हुई अद्वैत परम्परा के ही अनुसार आदि अन्त रहित और स्वरूपत अविनाशी माना। वह सर्व-विद्य-शक्ति है और आनन्द, पवित्रता, सर्व-व्यापिता और सर्वज्ञता आत्मा की विशेषताएं हैं। वह प्रत्येक मे अन्तर्हित है। इस आत्मा और परमात्मा का अद्वैत सम्बन्ध है।[3]

विवेकानन्द ने कहा कि "यह एक महान् तत्व है, जिसे हमे याद रखना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक प्राणी मे—चाहे वह कितना ही दुर्बल हो या दुष्ट हो, बडा हो या छोटा, वही सर्वव्यापी सर्वज्ञ आत्मा विराजमान है। अन्तर जो कुछ है वह आत्मा मे नही, उसके प्रकाश की न्यूनाधिकता मे है।[4] यही धारणा समस्त चेतन सृष्टि में भ्रातृत्व का रूप धारण करती है।[5] इस आत्मा का लक्ष्य है—स्वाधीनता ! मुक्ति !! अनन्त आनन्द स्वरूप और लिग-भेद-रहित इस आत्मा का लक्ष्य स्वातन्त्र्य है।[6] इस मुक्ति और स्वाधीनता का बाधक अज्ञान है, क्योकि वही बन्धन है। इसे दूर करने का उपाय ज्ञान है।" यह तो स्वामी जी ने भी माना, लेकिन इस ज्ञान की दिशा उन्होंने निवृत्ति की ओर न मोडकर प्रवृत्ति की ओर दिखाई। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिये

१—सृष्टि की यह व्याख्या हम निराला की कतिपय कविताओ मे भी पाते हैं।
२—निराला की कविता—'तुम हो महान'—
३—निराला की कविता—'तुम और मैं'
४—यह निराला के मानववाद और सर्वव्यापी करुणा का दार्शनिक आधार है।
५—एव तु पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमय हरिम्।
६—निराला की कविता मे छन्दोमुक्ति—'आत्मा की मुक्ति' से प्रमाणित की गई है।

उन्होने भक्ति-पूर्वक ईश्वराधन का मार्ग तो बताया ही, पर साथ ही सर्वभूतो को परमात्मा का मन्दिर समझ कर उनसे प्रेम करने से ज्ञान होता है, यह कहना विश्व-मानवता का ही नही, प्राणि-जगत के प्रति भी प्रेम का सन्देश देना था। उन्होने कहा कि अद्वैतवाद और वेदान्त यही शिक्षा देता है कि मनुष्य-जाति को आत्मवत् प्यार करो। मनुष्य और इतर प्राणियों मे भी कोई भेद-भाव नही है, इसीलिये कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही अखण्ड स्वरूप है और उसी ब्रह्म की ज्योति है। हम उनसे प्रेम करते हैं, वस्तुत हम स्वय से प्रेम करते हैं, उन्हे मुक्ति और स्वाधीनता देते हैं, वस्तुत. हम स्वय मुक्त और स्वाधीन होते हैं। इस अद्वैतवादी व्याख्या को स्वामी जी ने जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र मे उतारा। कुम्भकोनम् के अपने भाषण मे स्वामी जी ने कहा था कि "द्वैतवाद के प्रेम, भक्ति और उपासना मे कैसा अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है—मैं जानता हूँ। उसकी अपूर्व महिमा को मैं भली प्रकार जानता हूँ, लेकिन आनन्द-पुलकित होकर आँखो से प्रेमाश्रु बहाने का समय अब नहीं है। हमने बहुत-बहुत आँसू बहाए हैं। अब कोमल भाव धारण करने का समय नहीं है। कोमलता की साधना करते-करते हम लोग जीते जी मुर्दा हो रहे है। हमारे देश के लिए इस समय आवश्यकता है—लोहे की मास-पेशियो और फौलाद की नाडी तथा धमनी की, क्योकि इन्ही के भीतर वह मन निवास करता है जो शपाओ एव वज्रो से निर्मित होता है। शक्ति पौरुष, क्षात्र-वीर्य और ब्रह्म-तेज इनके समन्वय से भारत की नयी मानवता का निर्माण होना चाहिये।"[१] विश्वास, विश्वास और विश्वास—अपने आप पर विश्वास और परमात्मा पर विश्वास, यही उन्नति का एकमात्र उपाय है। नास्तिक वह नही जो-ईश्वर पर अविश्वास करता है। नास्तिक वह है, जो अपने ऊपर अविश्वास करता है। अपने आप पर विश्वास करना सीखो और इसी आत्म-विश्वास के बल से अपने पैरो पर खडे हो जाओ और शक्तिशाली बनो। हमारे देश को अब वीरता की आवश्यकता है। अद्वैतवाद हमे सर्वशक्तिमान्, तेजस्वी और सर्वज्ञ सोचने को कहता है।"[२] स्वामी जी ने अनेक बार कहा कि भारत का कल्याण शक्ति की साधना में है। जन-जन मे जो शक्ति छिपी है उसे साकार करना है। इसीलिये कदाचित्, विवेकानन्द का धर्म राष्ट्रीयता को उत्तेजना देने वाला कहा गया है। उनका विश्वास विराट-पूजा मे था। नवभारत मे जिस विश्व धर्म और विश्व-बधुत्व तथा विश्व-वाद की भावना राममोहन राय से आरम्भ हुई थी, उसका चरम परिष्कार विवेकानन्द के भाषणो में हुआ। यही नही, नये भारत तथा नये साहित्य मे नारी के प्रति जो उदार दृष्टिकोण और श्रद्धा का भाव आया वह भी कई अर्थों मे विवेकानन्द की असीम उदारता का देय माना जा सकता है। ईसा को विवेकानन्द ने अपूर्ण कहा, क्योकि नारी को उन्होंने नर के समक्ष नही रखा। नारियो को उन्होने महाकाली की साकार प्रतिमा माना था।—"यदि इन्हे ऊपर नहीं उठाया, तो मत सोचो कि तुम्हारी अपनी उन्नति का कोई

१—शक्ति और पौरुष का यही आख्यान निराला के काव्य का मेरुदण्ड है।

अन्य मार्ग है। ससारे की सभी जातिया नारियो का समुचित सम्मान करके ही महान् हुई हैं।"

इस प्रकार रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानन्द ने नये भारत का आध्यात्मिक निर्देशन किया था। "वर्तमान भारत जिस ध्येय को लेकर उठा है उसका सारा आख्यान स्वामी विवेकानन्द कर चुके थे।"[१] निवृत्ति से प्रवृति की ओर दार्शनिक संक्रमण विवेकानन्द की देन है, जिसका राजनीति और जीवन के कठोर यथार्थ मे प्रवर्द्धन तिलक ने किया। तिलक के उपदेश निर्भीकता और सच्चाई के सबसे बडे उपदेश थे।"[२] उनसे भारतीयों की रही सही हीन भावना और कदर्य-वृत्ति मूल से हट गयी। स्वाधीनता को जन्म-सिद्ध अधिकार मानकर उसकी प्राप्ति के लिये युद्ध रत होने की स्थिति तक लाने वाले तिलक ने गीता का अर्थ युगानुकूल लगाया और कर्मयोग का प्रतिपादन किया। जहाँ स्वामी विवेकानन्द का क्षेत्र धर्म और विश्व-मानवता का था, वहाँ तिलक ने समाज और राजनीति मे नयी स्फूर्ति सचरित की। पराधीनता से क्षुब्ध, हिन्दू-पतन से दुखी, तिलक ने भारत को कर्तव्य की ओर प्रेरित ही नही किया, बल्कि उसे विजय के लिये सन्नद्ध भी किया। 'ससार मे मनुष्य मात्र का कर्तव्य क्या है?' इसकी व्याख्या गीता-रहस्य मे तिलक ने की और गीता का नया अर्थ प्रतिपादित किया है।[३] जो स्वराज्य के युद्ध मे विजय-श्री प्राप्त होने पर भी सदा के लिये बना रहेगा।[४] भारतीयो मे स्वाधीनता के प्रति जो आकुल प्रयत्न और छटपटाहट तथा विद्रोह तत्कालीन समाज मे मिलता है उसके जनक तिलक ही माने जायेंगे। भारत की राष्ट्रीयता अब तक जाग्रत हो चुकी थी। उसमे आत्म-विश्वास भी आ चुका था। ऐसे समय मे महर्षि अरविन्द का आविर्भाव हुआ, जिन्होने समाज और राजनीति को तो इतना प्रभावित नही किया, लेकिन दर्शन और साहित्य के क्षेत्र मे उनकी प्रतिपत्तिया महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारी हैं। हिन्दी कवियो मे श्री सुमित्रानन्दन पत का स्वर्ण-काव्य उनके अरविन्द-दर्शन-प्रेम का परिणाम है। अरविन्द की अतिमानस और अतिमानव की धारणा एक ऐसी भव्य चेतना का परिणाम है, जो दर्शन और साहित्य, मनोविज्ञान और योग की धाराओ का समन्वय करती चलती है। उपनिषदो के ब्रह्मवाद से पाश्चात्य विकासवाद का समन्वय कर उन्होने सत्य के गत्यात्मक और स्थिर दोनो रूपको का प्रतिपादन किया।[५] विकास क्रम के उन्होंने दो पक्ष माने हैं—अधोविकास (Envolution) और उर्ध्व-विकास (Evolution)। अधोविकास मे ब्रह्म से अतिमन, अतिमन से मन और फिर क्रमश प्राण और पदार्थ पर चेतना आती है। इसके

१—सस्कृति के चार अध्याय—दिनकर पृ० ५०६।

२—वही पृ० ५१६।

३—श्री मद्भगवद्गीता रहस्य—तिलक-प्रस्तावना पृ० २६
अनुवादक—माधवराव सप्रे

४—महात्मा गाधी · वही (दिव्य टीका मौक्तिक)

५—**Life Divine—Sri Arbindo.**

विपरीत उर्ध्व-विकास मे पदार्थ-गत चेतना क्रमश: प्राण, मन और अतिमन से होती हुई ब्रह्म मे पहुँचती है।[1] विवेकानन्द ने कहा था कि शून्य से उत्पत्ति नही मानी जा सकती। अरविन्द ने कहा कि पदार्थ से ही चेतना उत्पन्न होती है। वह उसी मे निहित है। अरविन्द ने भी मानव को सर्वश्रेष्ठ माना इसलिए कि उसमे अतिमानस का उदय होता है। इसी भूमि पर मानव के दैहिक और आध्यात्मिक अस्तित्व के पूर्णतया विकास का आख्यान अरविन्द ने किया। वे स्वय कवि थे। अत उनके दर्शन में अनुभूति का योग भी है। साहित्य को भी उन्होने इसी धारणा के अनुकूल सतत् प्रगतिशील माना। उनके भविष्यत् काव्य की अवधारणा[2] अतिमानव और अतिमानस के समकक्ष है जहाँ सत्य का सजीव साक्षात् दर्शन (Vision) प्राप्त हो सकेगा और कवि मत्र-द्दष्टा तथा कविता मत्र-शक्ति से सन्निविष्ट हो सकेगी। उर्ध्व-विकास की यह प्रक्रिया और दिव्य जीवन का यह दर्शन अधिक प्रचलित और ग्राह्य न बन पाया, क्योकि अरविन्द की साधना व्यक्ति की साधना थी। वह आश्रम तक ही सीमित रह गई। इसके विपरीत महात्मा गाधी का क्षेत्र सम्पूर्ण भारत और समाज का प्रत्येक वर्ग था। स्वभावत: उन्होंने नवीन भारत की चेतना को सबसे अधिक प्रभावित किया। उनकी आध्यात्मिक साधना राष्ट्रीय साधना थी और आत्मा की मुक्ति को वे देश की मुक्ति से समरस कर सके। गाधी ने जीवन और कृतित्व के सदाचार और पवित्रता का जो सौष्ठववादी दृष्टि-कोण भारत को दिया वह साहित्य की सौष्ठववादी धारा का भी जनक बना। शिव और सत्य की साहित्य-साधना पर गाधी के प्रचार और व्यवहार का प्रभाव स्वीकार करना ही पड़ेगा। भारत की स्वाधीनता का श्रेय गाधीजी को तो है ही साथ ही जीवन के एकाधिक क्षेत्रों मे भी उनके सिद्धान्तो ने पथ-प्रदर्शन किया है। परतत्रता के अन्तिम क्षणो और स्वतत्रता के पश्चात् भी गाधी ने दर्शन और साहित्य को प्रभावित किया है। अहिंसा के बल पर स्वाधीनता-प्राप्ति एक विलक्षण सफल प्रयोग तो था ही, साथ ही जिस विश्व-बधुत्व और मानवता की अवधारणाएँ पूर्वतर सास्कृतिक नेताओ ने दी थीं, उन्हे महात्मा ने जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र मे उतारा था। समाज की चिन्तना का मूल वे व्यक्ति को मानते हैं, फिर भी वे व्यक्तिवादी दार्शनिक नही कहे जा सकते। क्योकि व्यक्ति के परिष्कार का अर्थ वे समाज का परिष्कार ही मानते हैं। व्यक्ति की मुक्ति ही समाज की मुक्ति है, अत व्यक्ति-मुक्ति अपना क्षेत्र विस्तृत करती हुई समाज राष्ट्र और विश्व तक प्रसरित होगी। गाधी-दर्शन आदर्शवादी तो है ही उसका उचित मूल्याकन भी समय की अपेक्षा करता है। नवीन भारत के निर्माण मे उनका अवदान अप्रतिम भी है। गाधी के ही समय से भारत में भौतिकवाद की वह ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक विचार-धारा भी सक्रिय थी जिसके प्रणेता मार्क्स थे। साहित्य और कला के प्रगतिवादी आन्दोलन से मार्क्स की विचार-धारा का गहरा सम्बन्ध है और राजनीति की समाजवादी अथवा साम्यवादी धारा तो उनकी देन है ही। मार्क्स की प्रतिपत्तिया

१— न्यूनाधिक्त ऐसा ही उर्ध्वगमन निराला के 'तुलसीदास' मे भी है।
२— **Future Poetry—Sri Arbindo.**

एकाधिक हैं और व्यापक, विस्तृत हैं । उनके परिणाम-स्वरूप दर्शन मे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, राजनीति मे साम्यवाद और साहित्य मे प्रगतिवादी, जनवादी धारणाएं आई । मार्क्स सर्वहारा वर्ग के दार्शनिक प्रवक्ता बनकर आए थे और साहित्य मे उसके प्रभाव स्वरूप दलित और शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति का युग आया । साहित्य और कला में सामाजिक दायित्व की, कलाकार की तीव्र एषणा का प्रचलन हुआ, जनवादी साहित्य का प्रणयन हुआ । हिन्दी के प्रगतिवादी आन्दोलन की प्रेरणा मार्क्स का दर्शन और उसकी पतिपत्तिया मानी जाती है । पूंजीवादी, व्यक्तिवादी अवधारणाओ के विरोध मे साम्यवादी, सामाजिक धाराओ का प्रचलन हुआ और साहित्य तथा कला ने एक नया मोड लिया । मार्क्स की ही भाति जिस पाश्चात्य विचारक ने साहित्य और कला को प्रभावित किया है वह फ्रायड है, जिसके प्रभाव-स्वरूप मनोविश्लेषण की प्रक्रिया का साहित्य मे अवतरण हुआ । साम्प्रतिक साहित्य मे एकाधिक विचार धाराओ का प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है । फ्रायड, एडलर, युग की मनोविश्लेषण की प्रतिपत्तियो का साहित्यिक अनुवाद एक आन्दोलन के रूप में ही उठा और पाश्चात्य साहित्य की एकाधिक गतिविधियां प्रकृतिवाद और यथार्थवाद, अन्तश्चेतनावाद और अतियथार्थवाद आदि साहित्य और कला को प्रभावित कर रही हैं । इन सबका मूल्याकन कुछ समय की माग करता है और निश्चयात्मक रूप से यह नही कहा जा सकता कि ये किस दिशा मे कितनी दूर तक सफलता से जायेंगी ।

यह भारत के सास्कृतिक जागरण का अब तब का सक्षिप्त रेखाचित्र है जिसके परिपार्श्व मे हम निराला के काव्य का मूल्याकन, अध्ययन करते हैं । कवि की अन्तश्चेतना में समय और समाज की गतिविधियो का प्रभाव ग्रहीत होता है और अचेतन ही वह उसकी विकृति करता रहता है, फिर एक सास्कृतिक कलाकार का तो यह दायित्व भी हो जाता है । निराला के काव्य को हम सास्कृतिक जागरण का प्रतिनिधि भी मानते हैं ।

× × × ×

हमारी यह एक मूल प्रतिपत्ति है कि हिन्दी का स्वच्छन्द-काव्य युग की अनिवार्य आवश्यकता के रूप मे उद्भूत हुआ और वह विकास की चली आती हुई धारा का चरम परिष्कार था । उसे केवल वाह्य प्रभाव, यूरोप की रोमाटिक साहित्यिक धारा की अनुकृति और बगाल की छाया कहने से हमारी असहमति है । सत्य तो यह है कि किसी मौलिक साहित्य-आन्दोलन की जडें वाह्य प्रभाव मे न होकर स्वत की परिस्थितियो और आवश्यकताओ मे होती हैं । उसे किसी वाह्य प्रेरणा का परिणाम भी हम नही मान सकते । प्रेरणा से जो अर्थ गर्भित होता है वह कुछ यो है कि मानों वाहर से कुछ आ रहा है ।[1] लेकिन हिन्दी के इस आन्दोलन मे जो नयी प्रवृतिया

1—"A poet is said to be inspired when he is believed to function not in the same way as other workers, not depending on his own intellectual powers, but acted on by a superior force that determines the nature of his work"

Shipley Dictionary of World Literary Terms · 227

विकसित हुई उनका बीज रूप पहिले से ही विद्यमान था। स्वच्छल-काव्य के पुरस्कर्ताओ ने उसे परिष्कार दिया और चरमावस्था पर पहुँचाया। यह सभव है कि काल-क्रम से किसी साहित्य विशेष का आन्दोलन पहिले प्रारम्भ हो जाय और उससे समर्थन प्राप्त कर दूसरा साहित्य अपनी विकास प्रक्रिया मे अधिक जागरूक हो जाय। हिन्दी और बगला के स्वच्छल-काव्यो का सम्बन्ध मैं इसी दृष्टि से देखता हूँ। परिवर्त के इस अश मे हम यही देखने का प्रयास करते हैं कि जिस स्वच्छल-काव्य को ऐतिहासिक व्यक्तित्व देने मे निराला अग्रगण्य है, उसका विकास भी स्वाभाविक और क्रमिक गति से हुआ है। विकास की इस गति मे जो महत्व इस शीर्ष विन्दु का है उससे कम उस शीर्ष की प्राप्ति के पुरोधा का नही है।

उन्नीसवी शताब्दी का हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीनता से नवीनता की ओर सक्रमण और अनेक रूप विपयो की ओर दृष्टि-निक्षेप इस युग की महत्वपूर्ण विशेपता है। यह युग नवीन आदर्शों की प्रतिस्थापनाओ का है जब कि रुढियो और परम्पराओ का आवरण उतार कर फेंका जा रहा था। अतीत से विदा वेला का यह काल है। समाज और सस्कृति मे परिवर्तन के स्पष्ट सकेत आ रहे थे और पुनरुत्थान का श्रेय लेकर नवजागरण के वैतालिक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का आविर्भाव हुआ था। प्राचीन काव्य-परम्परा से मुक्ति की साधना लेकर भारतेन्दु ने समय का साथ दिया था और नवीन युग तथा साहित्य की सस्थापना की। स्वभावत ही काव्य के क्षेत्र मे व्यापकता आई और वह स्वच्छन्दता की ओर वढा। पाश्चात्य-शिक्षा और नव्य राजनीतिक, सामाजिक गतिविधियो के कारण नवीन विपयो के प्रति इस युग मे रुझान उत्पन्न हुई। यह एक ऐतिहासिक घटना-मात्र है कि पाश्चात्य सम्पर्क से हिन्दी मे नयी जागृति की स्फूर्ति आई। परम्परा से चली आती हुई मान्यताएँ नये सम्पर्क में आकर कुछ वदलेगी तो अवश्य ही, फिर यह सम्पर्क विजित और विजेता का भी वन चुका था। भारतेन्दु युग को सक्रान्तिकाल कहने[1] का तात्पर्य यही है कि प्राचीन के स्थान पर नवीनता की क्रान्ति का स्वागत किया गया। लेकिन इसकी कतिपय सीमाएं भी हैं जो विस्मृत नही की जा सकती। इस काल विशेप मे प्राचीनता का मोह एकदम नही छूट पाता और नवीनता के प्रति अनुराग होते हुए भी उसे आत्मसात् नही कर लिया जाता। ऐसी ही स्थिति भारतेन्दु-युग की है। नवीन विचारो का उदय तो हुआ लेकिन वह प्राचीनता को एकदम अपदस्थ नही कर सका। यह नवीनता और आधुनिकता भी केवल वैचारिक पक्ष की है। अन्यथा कविता मे तो प्राचीनता ही है। वस्तुत यह युग सम्मिश्रण और सामजस्य की आशसा लेकर चला था। राजनीतिक चेतना मे तत्काल शासन के प्रति भक्ति का भी स्वर मिलता है। तत्कालीन कविता मे राजभक्ति और शासन के प्रति कृतज्ञता के दर्शन होते

१—आधुनिक हिन्दी साहित्य—लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय पृ० ११

है।[1] वालमुकुन्द गुप्त, प्रेमघन, तत्कालीन आर्थिक अव्यवस्था से विक्षुब्ध हैं और अतीत के मोह का अच्छा उदाहरण अम्बिकादत्त व्यास की रचनाओ मे मिलता है। अतीत का यह राग ईश्वर-आराधन और प्राचीन ऐतिहासिक विरुदावली तक सीमित है। वस्तुत यह एक ऐसे समाज की वाणी है जो नये प्रकाश के प्रति आकर्षित तो है लेकिन अपनी स्थिति मे परिवर्तन नही करना चाहता। "अपरिवर्तनवादी कवियो की मनोदृष्टि ही इनको सुधारवादियो से पृथक करती है। ये कवि किसी प्रकार का परिवर्तन नही चाहते थे। परिवर्तनशील समाज पर ध्यान न देकर ये प्राचीन सामाजिक आदर्शों को ज्यो का त्यो स्थिर देखना चाहते थे, इसलिए ये उन विदेशी विचारो और साधनों का समावेश समाज मे नही करना चाहते थे जो अब नितान्त आवश्यक हो गए थे।"[2] जो कुछ सुधारवादी कवि थे भी भारतेन्दु और प्रेमघन, वे भी स्थूल सामजस्य तक ही रुके रहे। वस्तुत सुधारवादी भी अपनी वर्तमान स्थिति मे ही सुधार कर सन्तोष कर लेता है, पूर्णत बदलकर उसे अपदस्थ नही करना चाहता। सुधारवाद की प्रवृत्ति आदर्शवाद से परिचालित होती है। वह यथार्थवाद की तीव्रता को कुछ सस्कृत तत्वो का आवरण देकर भूल जाना चाहता है। इस युग के सुधारवादी भी आर्य समाज से सहमत होकर दयानन्द की प्रशस्तियो मे शेष हो गये। भारतेन्दु युग मे प्राचीन परम्परा से कोई स्पष्ट विद्रोह नही मिलता। इस युग की कविता मे भाषा, छद और शैली मे कोई परिवर्तन नही आया। छन्द वही परम्परागत, प्रतीक और कल्पना रीतिकालीन, अलकार और भावाभिव्यक्ति मे वही गतानुगतिकता। इमे हम नये युग की प्रत्यूष वेला कह सकते हैं और यह स्वीकार करना पडेगा कि 'कविता मे कोई गति उत्पन्न न हो सकी। इस काल मे नवीनता का जितना प्रभाव बगला पर पडा उतना हिन्दी पर नही।' भारतेन्दु युग की यह साहित्यिक जागृति सास्कृतिक जागरण के प्रथम-चरण के समकक्ष रखी जा सकती है, जिसके प्रयत्न राजा राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचन्द्र से कहे जाते हैं। इस युग ने सामयिकता की पूर्ति की। लेकिन नवीनता और राष्ट्रीय सस्कृति का आख्यान भारतेन्दु युग से ही शुरू होना है, इसे अस्वीकार नही किया जा सकता। यह सही है कि कुछ असगतियाँ वहाँ वर्ग की है। "उस काजल की कोठरी की स्याही है जिसमे भारतेन्दु का जन्म हुआ था। भारतेन्दु के साहित्य मे राजभक्ति का आधार जनता नहीं है। उसका आधार कुछ विद्वान् और रईस लोग थे। (भारतेन्दु ने) उत्तर भारत मे राष्ट्रीय सस्कृति की नीव डाली और उस नीव पर ही हमारी सस्कृति का निर्माण हो रहा है। इन सुधारो के लिए पश्चिम

१—भारतेन्दु रचित—'भारत भिक्षा' 'भारत वीरत्व' 'विजयवल्लरी' 'विजयनी', 'विजय-वैजयन्ती' मे,
प्रेमघन के—'आर्याभिनन्दन' 'भारत-बधाई' 'हार्दिक हर्षादर्श' 'स्वागत' मे
अम्बिकादत्त व्यास के—'देव पुरुष-दृश्य' आदि मे।
डा० केसरी नारायण शुक्ल—आधुनिक काव्यधारा पृ० २६

२—डा० केसरी नारायण शुक्ल—आधुनिक काव्यधारा पृ० ९८

का कृतज्ञ होने की जरूरत नही है",[1] जैसा कि डा० वार्ष्णेय ने अपने प्रबन्ध मे मान लिया है।[2] नवीनता और विद्रोह का प्रारम्भ तो भारतेन्दु ने ही किया।

द्विवेदी युग मे आकर हिन्दी का काव्य एक कदम और आगे बढा। १९०० मे सरस्वती निकली और उसी के साथ आधुनिकता का शखनाद द्विवेदी जी ने किया। उनका आदि महत्व व्रजभाषा के स्थान पर खडी बोली को ही कविता की भाषा बनाने मे था। जिसका आग्रह आगे चलकर पत ने पल्लव के प्रवेश मे भी किया है। भाषा के व्यवस्थापक, द्विवेदी जी थे और उसकी श्रीवृद्धि भी उन्होंने की। "विचारो के क्षेत्र मे भी नई और बहुमुखी सामग्री एकत्र करने का श्रेय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को है, जिन्होंने हिन्दी के लिए भाषा सबधी एक नया प्रतिमान भी प्रस्तुत किया है। नए विचार और नयी भाषा—नया शरीर और नई पोशाक—दोनो ही नई हिन्दी को द्विवेदी जी की देन है"[3] लेकिन विचार और भाषा ही, शरीर और पोशाक ही नई है आत्मा और कविता का सौन्दर्य नया नही कहा जा सकता। सौन्दर्य विहीन और एक हद तक नीरस कविता जिसमे कल्पना की साकेतिकता मद्धिम है, इस युग में हुई। नवीन भाषा के होते हुए भी अभिव्यजना की प्रणाली प्राचीन शैली की है। कल्पना का स्थान बौद्धिकता लेती है, जिसे सही-सही बौद्धिकता भी नहीं कहा जा सकता। यह सयमशील का युग है, आदर्श और नीति का युग है और कविता मे बाह्याविगामी प्रवृत्ति ही मुख्य है। "प्रिय-प्रवास मे सामयिकता से प्रेरित एक आदर्श के दर्शन होते हैं। प्रकृति के चित्रो मे नाम-गणन की सीमा तक ही कवि गया है। यह नही कि तत्कालीन कवियो मे प्रकृति के प्रति प्रेम नही है, या कि उनमे सवेदन की न्यूनता है—वरन् युग का जादू ही उनके सर पर चढ़कर बोल रहा था, अतः नैतिकता का पाठ, आदर्श का प्रचार और उपदेश की वृत्ति ही उस कविता को इतिवृत्तात्मक बनाती है। वर्णन और आख्यान से भारान्वित कविता मे कवित्व के अभाव का आभास प्राप्त होना आश्चर्य नही। बात यह है कि द्विवेदी युग के साहित्य पर नीति, बुद्धि और आदर्श का इतना भार आ पडा है कि विशुद्ध साहित्य की दृष्टि से वहा निराशा भी मिल सकती है। काव्य और कला की दृष्टि से यह उत्थान हिन्दी के लिए उतना अधिक गौरव-प्रद सिद्ध नही हुआ जितनी कि आशा की जाती थी। इसके कई कारण हैं। प्रथम यह कि यह आदर्शवादी उत्थान हिन्दी मे थोडे ही वर्ष रहा। द्वितीय यह कि इसको नवीन और अनगढ भाषा का परिष्कार करने मे भी शक्ति लगानी पडी। तृतीय यह कि परिस्थितिया और वातावरण (राजनीतिक पारतत्र्य, समाज-व्यापी अशिक्षा आदि) इसके अनुकूल न थे। चतुर्थ यह कि सयोगवश उच्चकोटि की काव्य-प्रतिभा वाले व्यक्ति थोडे थे।"[4] यही कारण

१—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—डा० रामविलास शर्मा पृ० ५०, ५१, ५६, ६०
२—डा० वार्ष्णेय—आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका
३—आधुनिक साहित्य—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी पृ० १३
४—हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी विज्ञप्ति पृ० ७, ८

है कि अभिव्यजना की कोई नयी प्रणाली अविष्कृत न हो पाई । पदावली, सस्कृत, समासो का वृहदाकार और इतिवृत्तात्मकता, परम्परागत यह अभिव्यजना भाषा के वास्तविक माधुर्य और काव्य की सगीतात्मकता के मार्ग मे अवरोधक बनी । छन्दो मे भी सस्कृत वृत्तो का अनुवाद ही हुआ— किसी नये वृत्त, नये छद का आविष्कार नही हो पाया । वस्तुत उसका कुछ महत्व है तो इतना ही कि नवीन भाषा का परिष्कार इस युग ने किया और आने वाले स्वच्छल-काव्य के लिए एक भूमि निश्चित कर दी । द्विवेदी जी का व्यक्तित्व मूलत सुधारक और प्रवर्त्तक का व्यक्तित्व है और यह आवश्यक नही कि "उच्च आदर्शो के प्रति आशक्ति दिखाना ही उच्च-साहित्य की सृष्टि हो" और सत्य तो यह है कि "ऊँचे से ऊंचे आदर्श भी महान् काव्य के निर्माण मे सब समय सहायक नही होते ।"[१]

द्विवेदी युग मे ही बगाल मे रवीन्द्रनाथ की ख्याति फैल चुकी थी और वे विश्व-कवि के रूप में आदृत हो चुके थे । इससे नये भावो की उत्तेजना की लहर हिन्दी काव्य मे भी आई, लेकिन हिन्दी के छायावादी काव्य पर रवीन्द्रनाथ के अनुकरण और बगला की छाया का जो अनुचित आरोप हुआ था वह सत्य नही कहा जा सकता । साहित्य के ऐतिहासिक आन्दोलन स्वप्रसूत और स्वत प्रेरित होते हैं, इसका निर्देश हम ऊपर कर चुके हैं, रही कालक्रम मे आगे पीछे और समर्थन प्राप्त करने की बात जो गौण है और वही श्रेय हिन्दी के विषय मे बगला को दिया जा सकता है । यही एक प्रमाण है कि 'काव्येर-उपेक्खिता नामक जो निबन्ध रवीन्द्र का प्रकाशित हुआ था उसके बाद ही द्विवेदी जी का 'कवियो की उर्मिला विषयक उदासीनता' निबन्ध प्रकाशित हुआ और मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' मे जिस उर्मिला को स्थान दिया, उसकी भाव-भूमि स्वच्छल-काव्य की नही कही जा सकती । एक आदर्श का सम्मोहन और परम्परागत धारणा का परिवहन वह करती है अन्यथा 'मेघनाथ-वध' सरीखा कोई विद्रोहात्मक काव्य नहीं रचा गया । मैथिलीशरण गुप्त की कुछ रुचि उनकी तृतीयावस्था[२] मे रहस्यात्मक प्रवृत्ति की ओर झुकी थी लेकिन वह रहस्यवाद उस कोटि का नही जिस कोटि का प्रसाद का या रवीन्द्रनाथ का था । उसके पीछे वह नया जीवन-दर्शन ही नही था जो विशाल और बहुमुखी जीवनानुभूति का स्वाभाविक परिणाम-रहस्यवाद[३] कहा जा सके । इन आरोपित नये परिवेश के प्राण भी द्विवेदी युगीन ही हैं । लेकिन द्विवेदी युग के अन्तिम वर्षो मे ही हिन्दी कविता मे एक युगान्तर उपस्थित हुआ । यहा आकर कविता का परिवेश और आत्मा बदलती है । नयी भाषा, नयी शैली, नये छद, नयी अभिव्यजना, नयी अनुभूति और नयी काव्यात्मक सब कुछ नया था । "छायावाद युग का एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व है । राष्ट्रीय साहित्य मे सुस्पष्ट प्रेरणाओ मे यह उत्पन्न हुआ और आवश्यकता की पूर्ति इसकी की"[४] है ।

१—हिन्दी साहित्य, बीसवीं शताब्दी—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेई पृ० ७, ८
२—डा० केसरी नारायण शुक्ल—आधुनिक काव्यधारा पृ० १४३
३—हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी विज्ञप्ति पृ० १०
४—वही पृ० १२

हिन्दी कविता का युगान्तर स्वच्छन्दतावादी काव्य के प्रारम्भ और प्रचलन से माना जाता है। स्थूलत: यह स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन तो उसी समय से प्रारम्भ हो गया था जब भारतेन्दु ने नवीनता की ओर प्रवृत्ति दिखाई थी, लेकिन द्विवेदी युग के अन्त तक उसकी स्पष्ट धारा मे क्राति और विद्रोह का सयोग नही हो पाया था। प्रसाद, निराला और पत के प्रवेश के साथ ही वह अपने पूर्णरूप से अभिव्यक्ति हो पाया। आचार्य वाजपेयी के मत मे[1] सन् १३ से २० तक का समय इस स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्ति से अधिक छायावाद की विशिष्ट काव्य-शैली के रूप मे परिवर्तित और परिरणत होने का समय कहा जा सकता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य-आन्दोलन अपने युग की समस्त विशेषताओ को समेट लेता है। यहाँ हम उस आन्दोलन पर विस्तार से विवेचन करना चाहेंगे, क्योकि निराला का सम्बन्ध इस आन्दोलन से अधिकाधिक है।

वस्तुत साहित्यिक स्वच्छन्दतावाद अपने यथातथ्य रूप मे न तो व्याख्या की वस्तु है न उसे उसके मूल परिवेश मे विवेचित किया जा सकता है, न ही उसे समय की सीमाओ मे बांधा जा सकता है। व्यापकता यह उन एकाधिक प्रवृतियो के समीकरण का शाब्दिक अनुबन्ध है जो १८ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध और १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के परिवर्तनो के परिणाम स्वरूप अवतरित हुई थीं। वे समय, स्थान, लेखक के अनुसार बदलती गई हैं और उनका आदि उद्देश्य प्राचीन परम्पराओ से हटकर विद्रोह में नये द्वार खोलना था। यूरोप का अठारहवी शताब्दी का साहित्य अपनी शास्त्रीय परम्पराओ के लिए प्रसिद्ध था। इसका प्रारम्भ पुरातन ग्रीस के साहित्य-अध्येताओ द्वारा हुआ था। जब यह पद्धति और परम्परा रूढ हो गयी तो उसके विरुद्ध क्राति का नाम रोमाटिक आन्दोलन दिया गया।[2] हिन्दी काव्य मे यह आन्दोलन उसी रूप मे नही आया जिस रूप मे पाश्चात्य-काव्य-जगत मे आया था। हिन्दी कविता के पीछे शास्त्रीय परम्परा का ह्रास (सस्कृत समीक्षा का ह्रास-काल) तो सत्रहवी शती के उत्तरार्द्ध से ही प्रारम्भ हो जाता है, क्योकि उसके बाद उसी परम्परा मे किसी नयी प्रवृति के लक्षण नही मिलते। (रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय विवेचन अधिकाशत सस्कृत-परम्परा की अनुवर्तिता मे ही है।) हिंदी मे यह विद्रोह और प्रतिक्रिया द्विवेदी युगीन स्थूल आदर्श और इतिवृत्तात्मक कविता के विरुद्ध है और भारतीय समाज की सामन्तवादी और साम्राज्यवादी दोनो प्रवृत्तियो के भी। आचार्य शुक्ल ने इस प्रवृत्ति

१—अवन्तिका— जनवरी १६५४ पृ० १६०–१६१

2—The early Part of 19 th Century is generally known as the Romantic Period, a period which opend actually in the year 1798 when Wordsworth end Coleridge published their LYRICAL BALLADS in which they mede a conscious and Successful attempt to break away both in Subject and Style from the tradition —ENCYCLOPAEDIA BRITANICA

को अति व्याप्ति दी है। वे इसका प्रयोग हिन्दी की समस्त उस कविता के लिए करते हैं जिसमे कवि की भावना स्वच्छन्द रूप से विषय, दृश्य या व्यक्ति का वर्णन करती है। उनकी दृष्टि में स्वच्छन्द प्रकृति वर्णन करने वाली प्रत्येक कविता स्वच्छन्दतावादी ठहरती है और श्रीधर पाठक से लेकर रामनरेश त्रिपाठी एव रूपनारायण पाण्डेय तक की कविताओं को उन्होने स्वच्छन्दतावादी कहा है, लेकिन स्वच्छन्दतावाद के मूल मे प्रकृति-वर्णन ही नही है, व्यक्तिगत सवेदन, व्यक्तिगत स्वातत्र्य की लालसा और नियम-बद्ध जीवन के विरुद्ध उद्दाम मुक्त अभिलाषा भी कार्य करती है। सामाजिक परम्पराओ के विरुद्ध विद्रोह का भाव भी स्वच्छन्दतावाद की गतिविधियो का एक प्रक्षेप है और यह रोमाटिक रि०हाइकल की उस परिस्थिति के समकक्ष भी रखा जा सकता है जिनसे कि Liberty, Eqvality और Fraternity के आदर्श प्रसूत हुए थे और Wordsworth का काव्य सृष्ट हुआ था। वस्तुत हिन्दी का स्वच्छन्दतावाद द्विवेदी-युग की स्थूल-चेतना के विरुद्ध सूक्ष्म-चेतना का विद्रोह था। यह विद्रोह शरीर के प्रति आत्मा का, पदार्थ के प्रति चेतना का, वाह्य के प्रति अन्तर का, और सक्षेप मे स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह था।[1] वह इस देश की प्रकृति के अधिक अनुकूल है और उसमे हमारी जलवायु का असर है।[2]

स्वच्छन्दतावाद की विशेषताओ का ही नाम छायावाद और रहस्यवाद है। डा० शम्भूनाथ सिंह मे तो यथार्थवाद, प्रगतिवाद, प्रतीकवादी और प्रयोगवाद तक को छायावाद का विकसित रूप मान लिया है।[3] इससे अति व्याप्ति दोप की सम्भावना है। छायावाद का विकास यदि इन्हे मान भी लिया जाय तो अपनी विकसित अवस्था मे वे मूल से इतने भिन्न पड जाते हैं कि दोनो का प्रस्थान भेद अत्यधिक हो जाता है। ऐसी ही कुछ भ्राति छायावाद को "असन्तोष, अतृप्ति और काम-केन्द्रित कुठाओ का परिणाम" मान लेने से होती है।[4] वस्तुत यह भ्राति वही से प्रारम्भ हो जाती है जब "इसे पूंजीवादी व्यक्तिवाद से सम्बद्ध" कर दिया जाता है।[5] यह सही है कि तत्कालीन राजनीतिक क्षेत्र मे औद्योगिक क्रान्ति के उत्तराधिकारी पूंजीवाद के अनेक प्रक्षेप—जैसे साम्राज्यवाद आदि—प्रवल रूप मे थे और पूंजीवादी व्यक्तिवाद अपनी चरम सीमा पर भी था। लेकिन इस पूंजीवादी व्यक्तिवाद की अनिष्टकारी शक्ति को विवेकानन्द के आध्यात्म और वेदान्ती अद्वैतवाद ने ही चुनौती दे दी थी और जिस व्यक्तिवाद तथा अह की अभिव्यक्ति छायावाद मे मिलती है वह आध्यात्मिक ओज की है। वह व्यक्तिवादी अह फायडीय न होकर वेदान्ती और अद्वैतवादी है। सर्वात्मवाद का

१—डा० नगेन्द्र

२—आधुनिक साहित्य—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी पृ० ३४४

३—छायावाद युग—शम्भूनाथ सिंह

४—डा० नगेन्द्र की मान्यता

५—छायावाद युग—डा० शम्भूनाथसिंह

व्यक्तिवाद वह है। छायावाद का व्यक्ति और अह समस्त सृष्टि, प्रकृति तथा चराचर मे अपने आत्मा का ही प्रक्षेप देखता है। स्वभावत ही वह सकीर्ण नही है। हम ऊपर आचार्य वाजपेयी जी की अधिकृति पर यह देख चुके हैं कि यह आन्दोलन पूर्णतः भारतीय है। अरविन्द, गाधी और रवीन्द्र के मानवतावाद मे उसे अपना समर्थन प्राप्त हुआ है। यह भी माना ही जाता है कि वह व्यक्तिवाद अपनी शक्ति मे अधिक प्रवल भी है क्योकि पूजीवाद को तो केवल सामन्तवाद से ही टक्कर लेनी पडी जब कि इस व्यक्तिवाद को साम्राज्यवाद से भी।[1] स्वभावत ही उसमें अधिक शक्ति की कल्पना भी की जा सकती है। सामाजिक विश्लेषण के पार्श्व मे काव्य अध्ययन की दृष्टि से उसे असफल सत्याग्रह और महायुद्ध के प्रभाव के रूप मे देखा जाता है। १९१४–१८ के महायुद्ध के कुछ परिणाम तो श्रेयष्कर हुए हैं और उनका स्वीकरण छायावाद मे भी है—जैसे, व्यक्ति स्वातंत्र्य के आदर्श का उदय, लेकिन सत्याग्रह की असफलता से किसी दूरगामी अनिष्ट प्रभाव की आशका न तो तत्कालीन राजनीतिक क्षेत्र मे आई थी न ही काव्य मे। उसका उत्साह तो विवेकानन्द का आत्म-विश्वास और गाधी का अनेकान्तवादी दृष्टिकोण वढा रहा था। इसीलिए उसके आत्मशोध और आध्यात्म को स्वप्निलता या पलायन नहीं कह सकते। एक निश्चित तथ्य तो यह है कि छायावाद की पृष्ठभूमि मे सास्कृतिक जागरण के आध्यात्मिक आन्दोलन थे। जिसे स्वप्निलता कहा जाता है यह दृष्टि-चेतना का विकास ही है। वह वर्तमान मे रहकर दूरागत भविष्य की कल्पना है और निराला का सा कर्मठ जीवन, सग्राम मे अविचल योद्धा का व्यक्तित्व और काव्य इसके पलायनवादी आरोप को मिटाने के लिए यथेष्ट है। जिसे हम 'आध्यात्मिक छाया का भान' या उदात्तीकरण कहते हैं, उसे अरविन्द के उर्ध्व-विकास से भी समझा जा सकता है। अद्वैतवादी विचारधारा और सर्वात्मवादी दर्शन ने छायावाद के कवि को प्रकृति पर चेतन के आरोप की ओर उन्मुख किया। सर्वात्मवादी प्रकृति के कण-कण मे आत्मा का कष्ट देखता है और कवि उसका मानवीकरण कर लेता है। अद्वैतवादी के अनुसार वह स्वय मे और परमात्मा के प्रक्षेप-प्रकृति मे कोइ अन्तर नहीं देखता, इसीलिए छायावाद की सौन्दर्य-भावना वस्तु से अधिक द्रष्टा मे है।

यह आध्यात्मिकता एक दृष्टिकोण है। उसमें साधना का योग नहीं है। "नई छायावादी काव्य धारा का एक अध्यात्मिक पक्ष है, परन्तु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सास्कृतिक है भारतीय परम्परागत आध्यात्मिक दर्शन की नव-प्रतिष्ठा का वर्तमान अनिश्चित परिस्थितियों मे यह एक सक्रिय प्रयत्न है।"[2] इसी आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण कतिपय समीक्षक उसे दोषी और पलायनवादी मान बैठे हैं। वह भौतिकवादी और जीवन की वैज्ञानिक दासता की आलोचना भी है

१—अवन्तिका—जनवरी १९५४ पृ० २०१
(डा० शम्भूनाथसिंह का ही निवन्ध)
२—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य पृ० ३१९

ग्रौर ग्रादर्शवाद तथा भौतिकवाद के सघर्ष मे ग्रादर्शवाद की विजय भी वह कही जा सकती है ।[1] ग्रन्यथा उसमे ग्रौर जीवन के वीच कोई खाई नही है। जीवन की परिस्थितियाँ ग्रौर उसकी भावात्मक ग्रनुभूतियो तथा पार्थिव ग्रनुभावो मे कोई ग्रसमानता नही है। उसमे मानव की व्यापक ग्रनुभूतियाँ हैं, चराचर के सौन्दर्य को ग्रात्मा के सौन्दर्य से एकाकार करने का प्रयत्न है ग्रौर इस ग्रोर उसकी भावनाग्रो मे ग्रव्याहत गति है । वह "प्रकृति की चेतन-सत्ता ग्रनुप्राणित होकर पुरुप या ग्रात्मा के ग्रधिष्ठान में परिणत होता है । उसकी गति प्रकृति से पुरुप की ग्रोर, दृश्य से भाव की ग्रोर होती है ग्रौर इस दार्शनिक ग्रनुभूति के ग्रनुरूप काव्य-वस्तु का चयन करते हैं। छायावादी कवियो ने प्रकृति के ग्रपार क्षेत्र से यथेष्ठ सामग्री ग्रहण की है।"[2] 'छायावादी कविता वास्तविक ग्रर्थों मे राष्ट्रीय ग्रौर सास्कृतिक कविता है उसे राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक ग्रभिव्यक्ति'[3] भी कहा जा सकता है। छायावाद का यह युग सन् २० के ग्रासपास ग्राया ग्रौर सन् ४० तक चलता रहा। इस छायावाद युग की एक विशेप धारा रहस्यवाद के नाम से ग्रभिहित होती है । दार्शनिक दृष्टि से छायावाद रहस्यवादी कवि भूमि का प्रारम्भिक सोपान है। छायावादी भावभूमि मे कवि प्रकृति के सौन्दर्य मे एक ग्राध्यात्मिक सत्ता का ग्राभास पाता है, उसे दिव्य सौन्दर्य की झाँकी मिलती है ग्रौर वह उसे कल्पना की शक्ति से ग्रभिव्यञ्जित करता है। इसके विपरीत जैसे-जैसे कवि पूरे दर्शन (Vision) को दृष्टिगत करता है ग्रौर उस दर्शन सत्य को ग्रधिक प्रगाढ़ करता है, उस सत्ता का प्रतीकात्मक काव्याभिव्यजन करता है वैसे-वैसे वह क्रमश छायावाद की भूमि छोडकर रहस्यवाद मे प्रवेश पाता जाता है। इस दार्शनिक भूमि पर ग्रज्ञात सत्ता को केन्द्र वनाकर उसके प्रतीकात्मक भाव-निवेदन की प्रणाली रहस्यवादी सीमा मे प्रवेश पाती है। रहस्यवाद में एक भावात्मक साधना का रूप भी मिलता है ग्रौर भाव-साधक कवि ग्रज्ञात परमसत्ता (Transcidental Reality) के प्रति ग्रपने ग्रनुभावो का ज्ञापन करता है। लेकिन छायावाद मे ऐसी किसी साधना का समावेश नही होता। रहस्यवाद तो एक दिव्य ग्रनुभूति है ग्रौर एक प्रकार का ग्राध्यात्मिक वातावरण है ।[4] ग्राचार्य शुक्ल ने रहस्यवाद के दो रूप माने हैं—एक साम्प्रदायिक दूसरा भावात्मक। ग्रज्ञात के प्रति लालसा या जिज्ञासा भावात्मक रहस्यवाद की सीमा है ग्रौर इस भूमि से उठकर रहस्यात्मक रूपको द्वारा इस ग्रज्ञात की प्राप्ति की विभिन्न साधना-प्रणालियो का कविता मे विज्ञापन साम्प्रदायिक रहस्यवाद कहलाता है। यह ग्रन्तर भावात्मक ग्रौर इतिवृतात्मक कविता के ग्रतर को स्पष्ट करने के लिए तो यथेष्ट है, किन्तु रहस्यवाद की जो सहज प्रक्रिया है वही वास्तविक रहस्यवाद नही कहा जा सकता। साधना रूप मे जव निराकार या साकार का वर्णन होता है

१—डा० नगेन्द्र

२—ग्राचार्य वाजपेयी—ग्राधुनिक साहित्य पृ० ३२३

३—नामवरसिंह—छायावाद पृ० १४

४—स्पर्जियन

श्रौर जब वह साधना का विषय बन जाता है तब वह वास्तविक रहस्यवाद से उठकर साधना प्रक्रिया-विशेष हो जाता है। आचार्य शुक्ल का मत है कि रहस्यवादी काव्य परम्परा भारतीय नही है, वह विदेशी है। यह भी कहा जाता है कि उसका उद्गम समेटिक धर्म-भावना है। ईसाइयो ने धर्म के क्षेत्र मे यह रहस्यवादी परम्परा चलाई श्रौर सूफियो ने इसका प्रचार श्रौर प्रसार फारस मे किया, लेकिन आचार्य शुक्ल का मत है कि यह सब धार्मिक क्षेत्र का है श्रौर काव्य की सीमा के लिए अग्राह्य है। क्योकि यह सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध है। यहाँ तक कि कबीर मे जो रहस्यवाद है वह भी उन्हें शिष्ट काव्य परम्परा के प्रतिकूल जान पडता है।[१] इसके विपरीत छायावाद युग के कृती विद्वान् श्री जयशकर प्रसाद रहस्यवाद को विशुद्ध भारतीय परम्परा का मानते हैं। "साहित्य में विश्वसुन्दरी प्रकृति मे चेतनता का आरोप सस्कृत वाड्मय मे प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद सौन्दर्य लहरी के 'शरीरत्व-शम्भो' का अनुकरण-मात्र है। वर्तमान हिन्दी मे इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यजना होने लगी है, वह साहित्य मे रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमे अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अह का इदम् से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है। वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी सम्पत्ति है, इसमें सन्देह नहीं।"[२] वैदिक परम्पराश्रो मे यह भावना मिलती है, छान्दोग्य उपनिषद मे श्रौर ुण्डकोपनिषद मे इसके काव्यात्मक वर्णन हैं। प्राचीन काल मे रहस्यवादी काव्य अधिकतर प्रेम श्रौर ज्ञान की भूमिकाश्रो पर रचा गया था। ज्ञानात्मक, प्रेममार्गी श्रौर सौन्दर्याश्रित रहस्यवाद के तीन आयाम हो सकते हैं जिसमे अन्तिम छायावाद के अधिक निकट पडता है। महादेवी का रहस्यवाद प्रेममार्गी है, उसमे प्रेमी-प्रेमिका के विभिन्न सम्बन्धो का प्रकाशन है। एक विरह-भावना से भी उनका काव्य सम्पन्न है लेकिन यह द्वैतवादी विचारधारा पर आश्रित है जब कि प्रसाद मे वह अद्वैतवादी चेतना से सम्वन्वित है। उनके नारी-वर्णन, सौन्दर्य भाव मे रहस्यशक्ति का आभास मिलता है। उनकी दृष्टि मे सौन्दर्य चरमसत्ता है श्रौर उसकी ही अनुभूति उन्हें होती है जो उनके आनन्दवाद से भी समर्थन प्राप्त करती है। निराला के काव्य में रहस्यवाद का आलेख माना जाता है। उनका रहस्यवाद ज्ञानात्मक कोटि का माना जायगा। वह पूर्णत बौद्धिक है श्रौर अपने परिवेश मे वह उनकी दार्शनिक अद्वैतवादी चेतना का ही परिणाम हो सकता है जिसका विवेचन हम प्रसगानुकूल करेंगे। अपनी विकसित अवस्था मे काव्य की ये धाराएँ ध्वन्यात्मकता लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति करती है।[3] ये अनुभूतियाँ प्रगीततत्व की प्रमुखता लिए हुए हैं श्रौर उसकी प्रधानता के कारण कवि की वैयत्तिक भावना श्रौर अनुभूति कल्पना के द्वारा श्रेष्ठ काव्य का सृजन करती है। जिसे हम स्वच्छन्दतावादी काव्य कहते हैं

१—काव्य मे रहस्यवाद—चिन्तामणि भाग २—पृ० ५०-१६२

२—काव्य श्रौर कला तथा अन्य निबन्ध—जयशकर प्रसाद पृ०६८-६९

3—काव्य श्रौर कला तथा अन्य निबन्ध—जयशंकर प्रसाद पृ० १२०

उसने द्विवेदी युगीन स्थूल आचार और नियमबद्धता के प्रति विद्रोह किया था, नयी भाव-भूमियो की शोध की थी और नये प्रनिमान आविष्कृत किए थे। शैली और छन्दो के क्षेत्र मे भी इसने क्रान्ति की थी और इस काव्य से अपेक्षाकृत अधिक सम्बद्ध, पुरोधा निराला ने मुक्त छन्द के द्वारा कविता की परिवेश और आत्मा मे स्वतन्त्रता और मुक्ति का आख्यान किया था, जिसका मूल्यांकन हमारे तृतीय परिवर्त का विवेच्य है।

छायावाद के उत्तरकाल मे ही उसके अन्तिम वर्षो मे मार्क्स के विचारो का आगमन हो चुका था। अन्तर्राष्ट्रीय प्रगतिशील सघ भी स्थापित हो चुका था और छाया-वादी कल्पना प्रधानता के विरुद्ध प्रगतिशीलता का आन्दोलन भारत में आरम्भ हो चुका था। सन् ३६ मे यहाँ प्रगतिशील साहित्य-सघ की स्थापना हुई और साहित्य मे, 'लघुता की ओर दृष्टिपात'[१] प्रारम्भ हुआ। लेकिन इसके पहिले साहित्य मे प्रगतिवादी विचार-धारा नहीं थी यह मानना भी भ्रामक होगा। व्यापकत: प्रगति की विशेष अवस्थाएँ प्रत्येक साहित्य मे प्रत्येक युग के साथ आती हैं और छायावाद युग मे ही निराला ने इस सामाजिक यथार्थ के दृष्टिकोण को अपनाया था और इस रूप मे इस आन्दोलन के पुर-स्कर्ता भी वही माने जाने चाहिए। साहित्य के प्रगतिवादी दृष्टिकोण को मार्क्स की प्रतिपत्तियो के अनुरूप वर्ग-वैषम्य और वर्ग-सघर्ष से सम्बद्ध भी किया। वे ही कवि-ताएँ प्रगतिवादी कही गईं जो साम्यवाद की विचारधारा के अनुकूल अभिव्यक्तियाँ देती थी। साहित्य एक सामूहिक चेतना माना गया और उसके मूल्य जनहित मे समा-हित हुए। मार्क्स और डार्विन के विकासवाद पर आश्रित विचार-प्रणाली जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखती है। वह व्यक्ति का सामाजीकरण चाहती है और कलाकार को समाज-हित से बाँध देती है। आर्थिक प्रतिपत्तियो पर जीवन की व्याख्या और उसका दर्शन सीमित होता है। प्रच्छन्नत साहित्य एक विशिष्ट राजनीतिक धारा का अस्त्र मान लिया गया। प्रगति-वादी समीक्षक तो साहित्य की आर्थिक व्याख्या भी करते हैं और साहित्य का उत्पादन व्यवस्था से सम्बन्ध स्थापित करते हैं। लेकिन काव्य का यह वादी और वर्गीय दृष्टिकोण निराला के प्रगतिशील काव्य का अग नही है। वह प्रगतिशीलता काव्य-भूमि की ही है उसे किसी इतर लक्ष्य का अस्त्र नही कहा जा सकता। साहित्य के तत्कालीन प्रगतिवादी आन्दोलन ने जिस साहित्य को समाज-वादी विचारधारा का अस्त्र बनाया था और उसकी चेतना को सामूहिक मान लिया था, वैसा एकागी दृष्टिकोण निराला के काव्य मे नही। वह साम्यवादी और समाजवादी के स्थान पर मानववादी भूमि पर ही प्रगतिवादी है। साहित्य की चेतना सदैव व्यक्ति-गत हो सकती है और उसके मूल्य सामयिकता से परिसीमित नही किए जा सकते। प्रगतिवादी आन्दोलन का जो देय है वह यही कि लोक व्यवहार की अधिक समीपीय भाषा और काव्य की आशसा लेकर वह चला गया था। भाषा मे पूर्वेतर असाधारणता के बदले साधारणता और लौकिकता काव्य मे आई थी। उसकी दृष्टि उपेक्षित और शोषित के प्रति गई और लघुता को प्रश्रय मिला। एक नवीन सामाजिक यथार्थ की

१—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध—जयशंकर प्रसाद पृ० १२०

चेतना का प्रवेश हुआ जिसने व्यंगात्मक शैली का परिष्कार किया। प्रगतिवादी आन्दोलन का यह विशुद्ध काव्यात्मक रूप निराला के कुकुरकुत्ता, नये पत्ते, वेला आदि में मिलता है। प्रगतिवाद के साथ ही कुछ कालान्तर से हिन्दी काव्य मे एकाधिक नई प्रवृत्तियो का आगमन भी हुआ जिनकी गति अभी सुनिश्चित नही है, वे केवल प्रयोग तक ही सीमित हैं और कितनी दूरगामी यह होगी—यह नही कहा जा सकता। इन प्रवृत्तियो की पृष्ठभूमि मे जीवन को विशृ खल, अव्यवस्थित और मूल्य-अराजकता की दृष्टि से देखा जाता है। प्रयोगवाद की एकागी अन्तर्मुखता तो छायावाद के आरोपित अन्तर्मुखी दृष्टिकोण से भी कई अशो मे आगे बढी हुई है। कविताएँ मनोवैज्ञानिक प्रतिपत्तियो तक भी कभी-कभी सीमित हो जाती हैं। कविता भावानुभूति या आत्मानुभूति के स्थान पर विशुद्ध बौद्धिकता से अधिक सम्बन्वित है और भाषा मे प्रगतिवादी साधारणता और व्यवहारिकता का भी लोप होकर एकातिक वैयक्तिता वढ़ गई है। प्रकृतिवाद का जो आन्दोलन फ्रांस मे उठा था उसका प्रभाव ग्रहण कर विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण तक ही सीमित होकर हिन्दी कविता मे जो एक और आन्दोलन आया वह मनुष्य की स्वाभाविक क्रिया और मूल प्रवृत्तियो को ही महत्व देता है। इसी कारण चित्रकला की प्रतिपत्तियो से प्रेरित होकर अतियथार्थवादी कविताएँ स्वच्छन्द भाव-सयोग और अतिशयता का आग्रह करती हैं। वे तथ्य की अपेक्षा भाव को अधिक महत्व देती हैं, वे भाव भी अधिकतर मूर्छावस्था और अवास्तविकता के आधार होते हैं। उन धाराओं में अभी अभ्यास और प्रयोग ही चल रहे हैं। अत निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। कुछ समीक्षको की दृष्टि मे प्रयोगवादी धारा का प्रारम्भ निराला के 'कुकुरमुत्ता' और 'नये-पत्ते' से माना जाता है।[१] और उनके परवर्ती काव्य मे अतियथार्थवादी कला का भी आग्रह किया जाता है।[२] इसका विचार काव्य-परिशीलन मे प्रसगानुकूल किया गया है।

सास्कृतिक जागरण और साहित्यिक पृष्ठभूमि के इस रेखाचित्र मे निराला का सम्बन्ध उस अवस्था से है जो सस्कृति मे रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानन्द एव साहित्य मे स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्ति से सम्बद्ध है। स्वच्छन्दतावादी काव्य सास्कृतिक जागरण की स्फूर्ति चेतना को अभिव्यक्त करता है और काव्य-जगत मे एक नये आन्दोलन का पुरस्कर्ता है। निराला के प्रवेश तक छायावादी विद्रोह का सूत्रपात प्रच्छन्नत हो चुका था तथा प्रसाद और पत के आरम्भिक प्रयास भी हो चुके थे। सन् १९११, १२ में ही रवीन्द्र की ख्याति हिन्दी साहित्य को प्रभावित कर चुकी थी और जयशकर प्रसाद ने नये अभियान की निश्चित स्थापना के पूर्व ही "चित्राधार,"

१—डा० प्रेमनारायण शुक्ल—हिन्दी साहित्य विविधवाद पृ० ३४७

२—प्रभाकर माचवे—साहित्य (त्रैमासिक) जनवरी १९५१

"कानन कुसुम" आदि मे ऐसी एकाधिक कविताएँ दी थो जो अनिवार्यत: नये युग का सन्देश देती हैं। "चित्राधार" में ही प्रकृति-प्रेम की उनकी कविताएँ दार्शनिक अभिरुचि को ज्ञापित करती हैं। प्रसाद की आरम्भिक कविताओ मे भी छायावाद का बीज देखा जा सकता है, लेकिन नये युग का वास्तविक अभ्युदय सन् १९२० से माना जाता है।[1] यद्यपि जुही की कली सन् १६ मे ही रची गई थी। यह पत के उच्छ्वास की प्रकाशन तिथि है। उच्छ्वास के पहिले भी "समन्वय" "मतवाला" और "नारायण" मे निराला की रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं। बौद्धिकता या दार्शनिकता प्रधान उनकी 'तुम और मैं' तथा 'अधिवास' सन् १६ मे 'मतवाला' में पहले ही निकल चुकी थी और 'जुही की कली' भी सरस्वती से सन् १६ मे ही वापस हुई थी। प्रकाशन और प्रसार की बात सुविधा और अवसर पर निर्भर करती है। स्पष्टत हमारा विनम्र मत है कि स्वच्छन्दतावाद के पुरस्कर्ता निराला ही हैं क्योंकि 'मुक्त छन्द' ही नही मुक्त आत्मा का काव्याख्यान निराला ने सर्वप्रथम किया। यदि इस विवाद को छोड भी दिया जाय कि छायावाद का आरम्भकर्ता कौन था ? तो प्रसाद, निराला, पत की यह वृहत्रयी सम्मिलित रूप से हिन्दी कविता के युगान्तर के लिए ऐतिहासिक महत्व की है। इस वृहत्रयी में निराला का महत्व मुक्त-छन्द और विशुद्ध दार्शनिक भावनाओ तथा कलाकार की तटस्थता के आख्यान मे है। जितनी विविध और एकाधिक भावभूमि की कविताएँ छायावाद काल मे ही निराला ने दी, उतनी अपेक्षाकत किसी ने नही। प्रश्न केवल छायावाद की स्थापना और आरम्भ का ही नही, वरन् उसके पूर्ण परिष्कार और विकास का भी है, जिसमे निराला ने अपना अप्रतिम योग दिया है। छायावाद काल मे ही निराला ने प्रगतिवादी कविताओ का द्वार खोल दिया था और 'भिक्षुक' तथा 'विधवा' मे इनका प्रारम्भिक रूप मिल जाता है। स्वभावत. निराला हिन्दी काव्य की एकाधिक प्रवृत्तियो का नेतृत्व करते है। आरम्भकर्ता और प्रतिष्ठता से आगे बढ़कर उनका महत्व परिष्कर्ता और समृद्ध विकास देने वाले पुरोधा के रूप मे भी है। सास्कृतिक जागरण की चेतना का जितना काव्याभिव्यजन निराला ने किया है उतना सम्भवत: प्रसाद के अपवाद सहित किसी मे नही है। स्वच्छल-काव्य के अग्रदूत के साथ ही वे सास्कृतिक कलाकार के उत्तरदायित्व का भी समुचित निर्वहन करते हैं और हिन्दी काव्य के ऐतिहासिक व्यक्तित्व प्राप्त काव्यान्दोलन मे उनका महत्व ऐतिहासिक है।

१—अवन्तिका जनवरी १९५४। छायावाद का आरम्भ कब हुआ ?
परिसवाद . आचार्य वाजपेयी पृष्ठ ९०-९१

परिवर्त—दो

व्यक्तित्व-विश्लेषण

१ प्रयोजन

काव्य और व्यक्तित्व, काव्य-अध्ययन में व्यक्तित्व विश्लेषण की सम्भावनाएँ, निराला के काव्य-अध्ययन में उसकी अनिवार्यता।

२ व्यक्तित्व की अवधारणा

व्यक्तित्व की परिभाषा, फ्रायड . व्यक्तित्व के तीन क्रम, उनका स्पष्टीकरण, व्यक्तित्व का केन्द्र 'अह', युग . व्यक्तित्व के दो प्रकार—अन्तर्मुख और बहिर्मुख

क्रेटश्मर शारीरिक रचना और व्यक्तित्व,

व्यक्तित्व का विकास।

३ निराला का व्यक्तित्व

माता-पिता परिवार और समाज एव व्यक्तित्व निर्माण। वैसवाडा-परिक्षेत्र, वगाल और महिषादल का व्यक्तित्व में योग।

व्यक्तित्व का विरोधाभास, रामकृष्ण मिशन और विवेकानन्द का प्रभाव, विवेकानन्द और निराला, निराला का 'अह', क्रेटश्मर की धारणा और निराला

४ निराला की वर्तमान अवस्था

विवृत्ति, उन्माद या विक्षिप्तावस्था की धारणा, बर्नार्ड हार्ट और उन्माद, निराला के सम्बन्ध मे सम्भावनाएँ

५ निष्कर्ष

साहित्य के सन्दर्भ मे व्यक्तित्व

निराला का व्यक्तित्व और काव्य

व्यक्तित्व का प्रकाशन

कलाकार और व्यक्तित्व-निस्सगता

साहित्य का प्रयोजन आत्मानुभूति है।[1] उसकी प्रेरणा भी अनुभूति ही है। अनुभूति वही है जो काव्य या कलाओ के रूप मे अभिव्यक्त होती है। जीवन का प्रत्येक अनुभव स्पष्टत अनुभूति नही लाता। अनेकानेक अनुभवो के बाद अनुभूति आती है। गहरे अनुभवो का व्यक्तित्व से निकट सम्पर्क और जीवन के इतिहास मे, उपक्रम ने, जो घनिष्ठतम अनुभव होते हैं उन्हें ही अनुभूति की सज्ञा दी जा सकती है। काव्य का मूल भी आत्मानुभूति और आत्माभिव्यक्ति है। अनिवार्यत यह आत्माभिव्यक्ति अनुभूति का ही द्वितीय सोपान या उससे समरस भी हो सकती है, क्योकि क्रोचे ने कहा है कि अनुभूति ही अभिव्यक्ति भी है। जब यह कहा जाता है कि कोई कृति उत्तम है क्योकि वह व्यक्तित्व का पूर्ण-प्रकाशन है, तब उसका यही अर्थ होता है कि वह व्यक्ति-चेतना का ही प्रक्षेप है। यह चेतना आत्मा से सम्बन्धित होती है जो द्रष्टा और चेतन है। आत्मा और इसी चेतन की अनुभूतियो का समवाय ही काव्य-व्यक्तित्व का निर्माण करता है। तो मूलत साहित्य आत्माभिव्यक्ति है और व्यक्तित्व का प्रक्षेप है। यह अपने प्रकाशन मे जो माध्यम चुनता है उसमे भी आत्मानुभूति का ही प्रमुख स्थान है। कवि के पास एक माध्यम होता है—और यह माध्यम ही होता है स्वय व्यक्तित्व नही—[2] जिसमे अनुभूतियाँ और प्रभाव अपना एक निश्चित स्थान रखती हैं। यह माध्यम काव्य है। इस माध्यम को ही व्यक्तित्व नही कहा जा सकता क्योकि स्वय काव्य, व्यक्तित्व नहीं है। वह व्यक्तित्व का प्रकाशन मात्र है। इस माध्यम मे विभिन्नता भी हो सकती है, (और होती है) क्योकि इसका निर्वाचन भी व्यक्ति ही करता है जो उसके व्यक्तित्व पर निभर पर करता है। माध्यम की विभिन्नता व्यक्तित्व की विभिन्नता होती है। जो अनुभूतियाँ और प्रभाव, एक विशिष्ट प्रकार का व्यक्तित्व ग्रहण करता है, यह आवश्यक नहीं कि वे ही अनुभूतियाँ और प्रभाव, एक दूसरे प्रकार का व्यक्तित्व भी ग्रहण करें। अब काव्य का सम्प्रेषण भी इस व्यक्तित्व पर ही आधारित है। केवल यही सत्य नही है कि काव्य अथवा कला आत्मानुभूति है, वरन् अनुभूति के साथ-साथ वह सम्प्रेषण भी

१—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य—पृ० ४१२।
2—T. S ELIOT : Selected-Essays—P. 19-20

है। यदि वह केवल अनुभूति ही रहे तो एक ऐन्द्रिय प्रक्रिया ही हो जायगी। सम्प्रेषण की यह प्रक्रिया व्यक्तित्व के प्रकार पर ही आधारित है। बुद्धिवादी और भावात्मक काव्य के प्रभेद मूलत व्यक्तित्व की विकसित अवस्थाओ पर भी आधारित किए जा सकते हैं। व्यक्तित्व के विशुद्ध अह की अवस्थाओ का क्रम तीन सोपानो मे निर्धारित किया गया है।[1] पहले मे वह सवेदनाओ को ग्रहण करने वाला, वितृष्णाओ का अनुभव करने वाला होता है। दूसरे में वह कल्पना और इच्छा करने वाला होता है। तीसरे मे वह विचार और सकल्प करता है। व्यक्ति-चेतना की वह अवस्था जिसमे उसका आत्म-विचार और सकल्प करता है बौद्धिक-काव्य का स्रष्टा होगा। जो अवस्था कल्पना और इच्छा के स्तर की होगी वह भावात्मक काव्य की जननी होगी।

अत काव्य का केन्द्र व्यक्तित्व है। उसका उत्तम मध्यम होना व्यक्तित्व के उत्तम मध्यम होने से सवधित है। व्यक्तित्व की चरम अवस्था वह है जब वह सर्जन करता है। सर्जनात्मक प्रतिभा में ही उसकी पूर्णता है। काव्य का उत्स अन्तर की गहराइयो मे है और कहा भी जाता है कि कला का जन्म अन्तश्चेतना से होता है। उसकी गति भी अन्त प्रेरणा है। काव्य-अध्ययन की पूर्णता की दिशा मे, व्यक्तित्व के अध्ययन और विश्लेषण का भी महत्व है। जब तक व्यक्तित्व का परिचय पूर्ण नही हो जाता, काव्य का अध्ययन पूर्णता का अधिकारी कठिनता से कहा जायगा। निराला के काव्य के अध्ययन के लिए यह और भी आवश्यक हो जाता है, क्योकि जिस छायावाद का ऐतिहासिक व्यक्तित्व माना जाता है उसकी एक बडी देन यह भी है, कि साहित्य को ही ऐतिहासिक व्यक्तित्व उससे नही मिला, वरन् कवियो को भी ऐसे व्यक्तित्व का देय उससे मिला है। यह भी कहा जा सकता है कि कवियो का ही वह व्यक्तित्व था जिसने छायावाद को भी एक ऐतिहासिक स्थान दिया। छायावाद का जो भी देय है वह उन व्यक्तियो की ही देन है जो उसके पुरोधा पुरस्कर्ता थे। छायावाद मे जो नये मार्गो का निर्वाचन है, जो मौलिकता उसमे है, वह उन व्यक्तित्वो की ही देन है जिनके अभाव मे उसका कौन सा रूप होता—कल्पना की ही वस्तु है। निराला के व्यक्तित्व के अध्ययन से उनके काव्य के स्पष्टीकरण की दिशा में सहजता ही नही आयगी, वरन् उस समाज, उस साहित्य और उस आन्दोलन की विशेषताएँ भी समझ मे आ जायगी, जिसके वे अग्रदूत हैं। काव्य-समीक्षा की पूर्णता इसी मे नहीं है कि वह केवल काव्य-कृतियो के अध्ययन तक सीमित रहे। उसका सम्बन्ध उस प्रक्रिया से भी है जो सृष्टि करती है। प्रेरणा की उस मानसिक अवस्था से भी उसका सम्बन्ध है। काव्य समीक्षा अपनी पूर्णता की दिशा मे कवित्व के साथ-साथ कृति और उसके व्यक्तित्व का भी अध्ययन करती है। अत इस परिवर्त का उद्देश्य निराला के व्यक्तित्व का भी अध्ययन, विश्लेषण है। इसमे भी व्यक्तित्व के उन्ही आयामो और प्रक्षेपो का अध्ययन मुख्य है जो उनके काव्य को समझने मे सहायक है। जिन्हे उनके काव्य मे भी देखा जा सकता है। कवि के काव्य से अधिक कठिन उसके व्यक्तित्व का विश्लेषण

1 —Ward

है, और फिर निराला के व्यक्तित्व के सम्वन्ध मे तो यह कठिनाई और वढ जाती है। उनका व्यक्तित्व उनके काव्य से कम निराला नही है। वह अत्यन्त जटिल और वहुत से विरोधो का सामजस्य है,[१] लेकिन हम शुद्ध समीक्षा की आशसा से आगे वढते हैं और इसके लिए आवश्यक है कि उस अवधारणा से परिचित हो लें जिसे हम व्यक्तित्व कहते हैं।

◇ ◇ ◇

व्यक्तित्व गुणो और प्रवृत्तियो की सगठित एकता है। यह लक्षणो की समष्टि है और व्यवहारो का दिशा-निर्देश है। व्यक्ति का परिचय उसके वैयक्तिक लक्षणो की सश्लिष्ट एकता मे मिलता है। एक व्यक्ति की सामाजिक परिवेश मे प्रतिक्रिया करने की अपनी निजी शैली होती है और उसे ही व्यक्तित्व कहा जाता है। वह उसके व्यवहार का समवाय है। वह एक "सयोजन, सम्मिलन, विलयन और सगठित पूर्णता है जिसमे विशिष्ट क्रियाएँ अपनी अन्विति को एक सम्पूर्ण प्रतिमा मे मुक्त करती हैं।"[२] व्यक्ति की वाह्य रचना, व्यवहार की चित्तवृत्तियाँ, रुचियाँ, धारणाओ, शक्तियो, योग्यताओ और कुशलताओ का सर्वाधिक लाक्षणिक समायोजन व्यक्तित्व की परिभाषा हो सकती है।[३] म्यूरहैड व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि, वह व्यक्ति के गुण, रुचि के प्रकारो, अभिवृत्तियो, व्यवहार, क्षमताओ योग्यताओ और प्रवणताओ का सवसे निराला सगठन है। यह व्यक्तित्व एक चारित्रिक समवाय है, क्योंकि अन्य व्यक्तियो से पृथक् रखने वाला तत्व यही है। यह चारित्रिक समवाय भी, व्यक्ति और उसके व्यवहार का वही अश है जो स्थायी है, जो व्यक्तित्व का निर्माण करता है। व्यक्ति की चारित्रिक प्रवृत्ति उसके विचार, भावना, और क्रिया की स्थायी वृत्ति है। यह व्यवहार की वह प्रक्रिया है जिसकी विशेषता अपेक्षाकृत अधिक दृढता और स्थायित्व है। यह व्यक्ति के द्वारा समान रूप से निरतर प्रकाशित होती रहती है। पुन यह व्यक्तित्व उन चारित्रिक विशेषताओ का यात्रिक समवाय नही है। वह उन वृत्तियो का वृत्यात्मक समवाय है। व्यक्तित्व कोई यान्त्रिक पूर्णता भी नही है जिसमे विभिन्न तत्वो का निवास भर रहता हो। वह एक सयुक्त, सम्मिलित, और यौगिक पूर्ण है जिसमें विभिन्न तत्त्व एक दूसरे को प्रभावित करते हैं जिससे उनकी विशिष्ट एकता निर्मित होती है। विचार और स्वाभाविक क्रियाओ का, अन्य व्यक्तियो और परिस्थितियो के वीच व्यवस्थापन और भावात्मक व्यवहारो का वृत्यात्मक समवाय ही व्यक्तित्व है।

फ्रायड के अनुसार सम्पूर्ण व्यक्तित्व के तीन प्रमुख क्रम हैं जिन्हे "इड" "इगो" और "सुपर इगो" कहा जाता है। सामान्य मानसिक स्वस्थ व्यक्ति मे इन तीनो का

१—महादेवी · जो रेखाएँ न कह सकीं, पृ० १२,
गगाप्रसाद पाडेय · महाप्राण निराला पृ० ३२५

2—Norman L munn : Psychology : P 569

३—उपरोक्त

एकीकृत और सगत-सगठन का रूप होता है। सहयोग से कार्य करते हुए ये तीनो क्रम, व्यक्ति को उसके परिवेश मे सतोषप्रद और कुशल आचरण करने के लिए वाध्य करते हैं।[1] "इड" का तात्पर्य उन अस्त-व्यस्त और स्वप्रेरित प्रवृत्तियों के वशानुक्रमिक सचयन से है जो एक दूसरे से एक स्वरित नही हो पायी हैं अथवा वाह्य सत्ता के यथार्थों से जिनकी सगति नही हो पाई है। "इगो" अथवा "अह" व्यक्तित्व का वह सयोजित अश है जो "इद" की प्रवृत्तियो मे सुधार, चयन, नियमन और उचित सम्बन्ध-स्थापन करता है, एव उन प्रवृत्तियो को या तो वहिष्कृत ही कर देता है या सुधार लेता है जो वाह्य-यथार्थ के विरोध में होती है। अतिम, "सुपर इगो" मन का अभिनव विकास है जो सामाजिक सहिता का समावेश करता है।[2] यह व्यक्तित्व की नैतिक या न्यायात्मिक शाखा है जो यथार्थ की अपेक्षा आदर्श का प्रतिनिधित्व करती है और पूर्णता की ओर इसका लक्ष्य होता है।[3] सामान्यत व्यवस्थित व्यक्तित्व मे व्यक्तित्व की कार्यकारिणी शक्ति "अह" (इगो) ही होती है जो 'इड' और 'सुपर इगो' को शासित और नियमित करती है। यह शक्ति सम्पूर्ण व्यक्तित्व के लिए तथा उसकी आवश्यकताओ के लिए वाह्य जगत से सम्बन्ध-व्यापार भी करती रहती है। जब यह शक्ति अपने कायो का उचित सम्पादन करती है तब व्यवस्था और सगति व्यक्तित्व मे वर्तमान रहती है।[4] दृढ और पूर्ण विकसित व्यक्तित्व वह है जिसमे मानसिक कार्यो के सम्पादन के लिए मानसिक शक्ति न्यूनाधिकत स्थायी और निरतर, स्वप्रसार का मार्ग प्राप्त करती रहती है।[5] व्यक्तित्व के तीनो क्रमो मे पारस्परिक सहभाव-सम्बन्ध वना रहा है और अपने कार्यक्षेत्र मे वे उचित कार्य सम्पादन करते हैं।

इस चर्चा को हम यही छोडते हैं क्योकि इसकी मूलभूत प्रतिपत्ति से ही हमारा सम्वन्ध है जो यह मानती है कि व्यक्तित्व का मूल उसका अह है। फ्रायड इसे व्यक्ति की मानसिक प्रक्रिया को सगत सगठन कहने के ही साथ व्यक्तित्व की प्रारम्भिक परि-भाषा का कार्य-सम्पादन भी मानता है। वह अह हमारे विचारो के सचेत प्रवाह का और जो प्रभाव हम ग्रहण करते है उनका एव साथ ही जिन भावनाओ की हम अनु-भूति करते हैं उनका भी तत्सम है। हमारा मूल सम्बन्ध इसी 'अह' से है अन्यथा इसके आगे की चर्चा विशुद्ध मनोविश्लेषण का क्षेत्र हो जाता है जिससे हम सम्वन्वित नही हैं। इसकी दूरगामी चर्चा से एक खतरा भी है। फ्रायड की प्रतिपत्तियो के आधार पर हम यह मान भी लें कि कला की प्रवृत्ति, काम-वृत्ति मे उत्पन्न हुई है तो भी इस

1—Calvin S. Hall . A Primer of Freudian Psychology : P. 15

2—Franz Alexander Fundamentals of Psychoanalysis P. 82.

3—Calvin S. Hall · ibid · P. 25

4— „ ibid P 22

5— „ ibid P. 129

वशानुक्रम और वातावरण—वशानुक्रम का तात्पर्य उस धारणा से है जो व्यक्ति को पैतृक सम्पत्ति के रूप मे कुछ गुणो, विशेषताओ का अवदान देती है और वातावरण सामान्यतः व्यक्ति के आसपास ।। परिवेश, उसका परिवार और उसकी सामाजिक स्थिति कहलाती है ।

निराला के वशानुक्रम से सम्बन्धित समुचित सामग्री अनुपलब्ध रही है, जिसके परिणामस्वरूप उनके व्यक्तित्व का इस परिपार्श्व मे अध्ययन समीचीन नही हो सकता । अत उनके वातावरण, उनके परिवार और सामाजिक परिवेश से ही उनके व्यक्तित्व का अध्ययन आरम्भ हो सकता है ।

निराला का जन्म भरे-पूरे परिवार मे हुआ था लेकिन जन्म के तीन वर्ष बाद ही उनकी माता का स्वर्गवास हो गया । माँ की ममता और स्नेह दुलार से वचित निराला, वेदना और सघर्ष के लिए पूर्ण तैयारी कर चुके थे । शैशवावस्था में ही माँ के निधन से जो एक अभाव व्यक्ति के जीवन मे आ जाता है, वह व्यक्तित्व के विकास को एक दूसरी ही दिशा प्रदान करता है । सामान्यत व्यक्ति अन्तर्मुख हो जाता है, जिज्ञासाएँ आत्म-केन्द्रित हो जाती हैं । इतनी छोटी उम्र मे ही माता के अभाव से वालक निराला भी आत्म-निर्भरता की ओर बढ़ने लगे थे । इससे नारी के प्रति निराला के दृष्टिकोण मे भी परिवर्तन आया । नारी के प्रति अस्खलित, स्वस्थ और सूक्ष्म दृष्टिकोण का आधार यह अभाव माना जा सकता है । माता के अभाव को निराला करुणा, अपनी सर्व व्यापी करुणा, से पूरा करते रहे । स्वभावत ही उनका विकास भी आत्म-विश्वास और दुर्दम सघर्षो मे अडिग रहने की ओर होता गया । इसके साथ ही निराला पर अपने पिता का प्रभाव भी कम नही पड़ा । निराला के पिता ताड़न-क्रिया मे तन्मय हो जाया करते थे । पिता स्वभाव से ही कठोर थे और थे भी तो वे सौ सिपाहियो के ऊपर जमादार, जिसमे अधिकार और उद्धत स्वभाव प्रकृत होता है । बालक निराला को भी उनकी असह्य मार सहनी पडी थी । "मारते वक्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हे भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाये हुए एकलौते पुत्र को मार रहे थे । मैं भी स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था । चार-पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था, और प्रहार की हद भी मालूम हो गयी थी ।"[१] यह हद ऐसी थी कि "जब वालक बेसुध हो गया, तभी ताडन-क्रिया बन्द हुई ।"[२] एक तो माता के स्नेह-दुलार से यो ही वचित निराला और दूसरे पिता का यह स्वभाव । कहते हैं कि घर से बाहर भी उनका जीवन सुखी नही था । परिणामत निराला को अपने पिता के स्वभाव की उद्धतता भी मिली और वे सहनशील भी बने और कठिन परिस्थितियो के प्रहारो मे भी एक निर्भीकता उनके व्यक्तित्व का स्थायी गुण हो गया, जो उनके भावी जीवन मे भी कभी नही छूटी ।

१—डा० रामविलास शर्मा निराला पृ० ६ पर उद्धृत्
२—वही ।

वशानुक्रम और वातावरण—वशानुक्रम का तात्पर्य उस धारणा से है जो व्यक्ति को पैतृक सम्पत्ति के रूप मे कुछ गुणो, विशेषताओ का अवदान देती है और वातावरण सामान्यतः व्यक्ति के आसपास का परिवेश, उसका परिवार और उसकी सामाजिक स्थिति कहलाती है।

◇ ◇ ◇

निराला के वशानुक्रम से सम्बन्धित समुचित सामग्री अनुपलब्ध रही है, जिसके परिणामस्वरूप उनके व्यक्तित्व का इस परिपार्श्व मे अध्ययन समीचीन नही हो सकता। अत उनके वातावरण, उनके परिवार और सामाजिक परिवेश से ही उनके व्यक्तित्व का अध्ययन आरम्भ हो सकता है।

निराला का जन्म भरे-पूरे परिवार में हुआ था लेकिन जन्म के तीन वर्ष बाद ही उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। माँ की ममता और स्नेह दुलार से वचित निराला, वेदना और सघर्ष के लिए पूर्ण तैयारी कर चुके थे। शैशवावस्था में ही माँ के निधन से जो एक अभाव व्यक्ति के जीवन मे आ जाता है, वह व्यक्तित्व के विकास को एक दूसरी ही दिशा प्रदान करता है। सामान्यत व्यक्ति अन्तर्मुख हो जाता है, जिज्ञासाएँ आत्म-केन्द्रित हो जाती हैं। इतनी छोटी उम्र मे ही माता के अभाव से बालक निराला भी आत्म-निर्भरता की ओर बढने लगे थे। इससे नारी के प्रति निराला क दृष्टिकोण मे भी परिवर्तन आया। नारी के प्रति अस्खलित, स्वस्थ और सूक्ष्म दृष्टिकोण का आधार यह अभाव माना जा सकता है। माता के अभाव को निराला करुणा, अपनी सर्व व्यापी करुणा, से पूरा करते रहे। स्वभावत ही उनका विकास भी आत्म-विश्वास और दुर्दम सघर्षो मे अडिग रहने की ओर होता गया। इसके साथ ही निराला पर अपने पिता का प्रभाव भी कम नही पडा। निराला के पिता ताडन-क्रिया मे तन्मय हो जाया करते थे। पिता स्वभाव से ही कठोर थे और थे भी तो वे सौ सिपाहियो के ऊपर जमादार, जिसमे अधिकार और उद्धत स्वभाव प्रकृत होता है। बालक निराला को भी उनकी असह्य मार सहनी पडी थी। "मारते वक्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाये हुए एकलौते पुत्र को मार रहे थे। मैं भी स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था। चार-पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था, और प्रहार की हद भी मालूम हो गयी थी।"[1] यह हद ऐसी थी कि "जब बालक बेसुध हो गया, तभी ताडन-क्रिया बन्द हुई।"[2] एक तो माता के स्नेह-दुलार से यो ही वचित निराला और दूसरे पिता का यह स्वभाव। कहते हैं कि घर से बाहर भी उनका जीवन सुखी नही था। परिणामत निराला को अपने पिता के स्वभाव की उद्धतता भी मिली और वे सहनशील भी बने और कठिन परिस्थितियों के प्रहारो मे भी एक निर्भीकता उनके व्यक्तित्व का स्थायी गुण हो गया, जो उनके भावी जीवन मे भी कभी नही छूटी।

१—डा० रामविलास शर्मा निराला पृ० ६ पर उद्धृत
२—वही।

वैसवाडे के छोटे से गाँव, गढाकोला मे एक अत्यन्त सामान्य परिवार से निराला का सम्बन्ध है। यह परिवार निम्न कान्यकुब्ज ब्राह्मण समाज मे एक सामान्य जाति से सम्बन्धित है। कान्यकुब्जो मे भी तीन स्तर होते हैं—पटकुल, पचादर और धाकर। धाकर का सम्बन्ध निम्न कान्यकुब्ज स्तर से है। निराला को लोग धाकर कहते थे और वे यही समझे जाते थे।[1] उस क्षेत्र मे अपने परिवार और समाज की यह स्थिति और उस समाज मे अपनी यह स्थिति, निराला के लिए असतोष उत्पन्न करने को यथेष्ट थी। वे इस स्थिति से विद्रोह कर बैठे। यहाँ तक कि 'ये कान्यकुब्ज कुलागार'[2] कह बैठे और जीवन भर उनके प्रति विद्रोह किया। उनके व्यक्तित्व की मौलिक विद्रोहात्मकता का मूल यही है। कान्यकुब्ज समाज की किसी भी परम्परा और रूढि का उन्होंने पालन नही किया। पुत्री-सरोज के विवाह मे वैवाहिक परम्पराओ के प्रति विद्रोह से लेकर उस समाज के खान पान आदि की मान्यताओ से भी उन्होंने विद्रोह किया।

निराला ने समाज की किसी भी रूढ मान्यता और परम्परा के आगे अपने को नही झुकाया। यह 'अप्सरा' की भूमिका से भी प्रमाणित है। परम्परागत रूढियो और मान्यताओ के बन्धन के प्रति निराला का यह विरोध और उनकी स्वच्छन्द वृत्ति उनके काव्य की मुक्त-साधना की भी भूमि है। वे कहते भी थे "हिन्दी मे समझ वाला युग अभी नही आया। इसलिए नये साहित्य का विरोध होता है। रूढ़ियो से अभी जन-मस्तिष्क पूर्ववत् जकडा हुआ है। रूढियो पर बार-बार प्रहार द्वारा इसकी शृ खला तोड देनी हैं।"[3] यौवन का प्रकृत जोश और स्वच्छन्द गति की तीव्रता निराला के व्यक्तित्व और काव्य मे समान रूप से मिलती है। व्यक्तित्व और स्वभाव की यह नवीनता उनकी भाषा, भाव, छद की नवीनता के रूप मे काव्य और व्यवहार तथा वेश-भूषा आदि के द्वारा जीवन मे सम गति की है। भाग्य और नियति से विद्रोह[4] करने का दृढ भी निराला का स्वभावगत है।

बैसवाडे का जीवन[5] निराला के सस्कारो को प्रवर्द्धित करने के लिए भी महत्वपूर्ण है। बैसवाडे की भूमि ने हिन्दी साहित्य को अप्रतिम व्यक्ति दिए हैं—प्रतापनारायण मिश्र सरीखे निबन्धकार, महावीरप्रसाद द्विवेदी सरीखे युग-प्रवर्तक साहित्य-आचार्य और पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी सरीखे समीक्षक इसी बैसवाडे की देन हैं। बैसवाडे का महत्व यही है कि सामान्य वर्ग मे भी वहाँ साहित्य की परम्परा विद्यमान है। कवित्त-श्रवण से लेकर नौटकी और लोकगीतो का विस्तृत भण्डार निराला के सस्कारो मे काव्यतत्त्व का बीज बोने के लिए यथेष्ट था। इसके साथ ही

१—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी से प्राप्त सूचना के आधार पर
२—'सरोज-स्मृति'
३—निराला अभिनन्दन ग्रन्थ वरुआ · ५८ वाँ सस्मरण पृ० १४०
४—सरोज-स्मृति 'स्वण्डित करने को भाग्य अक'
५—[illegible]

बैसवाड़ा के किसान आर्थिक स्थिति से संघर्ष करते हुए दलबन्दी के प्रति एक सीमा तक आसक्ति भी रखते हैं। लम्बी-लम्बी लाठियों की सहायता से अपनी युद्ध की प्रवृत्ति को भी जाग्रत रखते हैं। एक ओर कवित्त रस का कोमल-स्रोत, जो वहाँ की नारियों के दैनन्दिन जीवन का अंग है और किसानों की दुर्धर्ष युद्धवृत्ति, दोनों ने निराला के व्यक्तित्व को अपनी-अपनी देन दी है। एक ओर शिशु की-सी स्वाभाविक सरलता और दूसरी ओर पौरुष का प्रलयंकर स्वाभिमान दोनों निराला के व्यक्तित्व की विशेषताएँ हैं। एक ओर गीत-रचना और काव्य-प्रणयन की सुकोमल कवि-वृत्ति, दूसरी ओर श्रम-साधना और आर्थिक संघर्षों में युद्ध-रत रहने की वृत्ति, दोनों निराला के व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं।

व्यक्तित्व के निर्माण में वातावरण का महत्वपूर्ण देय माना जाता है। यह प्रक्रिया दो रूपों में होती है। एक तो उसकी आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं। दूसरे स्वयं व्यक्ति अपने वातावरण को या तो अपने अनुकूल बनाता है अथवा स्वयं उसके अनुकूल अपने को ढाल लेता है। मेदिनीपुर परिक्षेत्र में महिषादल में बंगाल की शस्य श्यामला भूमि में, ऋतुराज वसंत के आगमन पर निराला का जन्म हुआ था। शैशव का वह काल, जब कि व्यक्ति के मन पर कोई भी प्रभाव बड़ी शीघ्रता और गहनता से पड़ता है, बंगाल में ही बीता। परिवार उनका बैसवाड़े का था। उत्तर-प्रदेश के बैसवाड़ा क्षेत्र की ग्राम्य-जीवन की सादगी, श्रम-साधना, शक्ति का दुर्धर्ष आख्यान और पौरुषमय शरीर, कृषक जीवन की ईमानदारी—यह निराला को बैसवाड़ा की देन है। बैसवाड़ी किसानों का भोलापन और उनकी स्वाभाविक विनोद-वृत्ति भी निराला को प्राप्त हुई है। निराला विनोद में भी दक्ष हैं। विकट आर्थिक संघर्षों में भी "कहकहों और हँसी के फव्वारों की सृष्टि भी वे मौलिक रूप से करते हैं।[1] ग्रामीण जनता में अतिथि सत्कार की जो महत्ता है वह निराला के लिए भी कभी कम नहीं हुई। "भोजन बनाने से लेकर जूठे बर्तन मांजने तक का काम वे अपने अतिथि देवता के लिए सहर्ष करते हैं—ऐसे युग में आतिथ्य की दृष्टि से निराला जी में वही पुरातन संस्कार है जो इस देश के ग्रामीण किसान में मिलता है।"[2] उनका यह आतिथ्य सत्कार कई घटनाओं से प्रमाणित है।[3] बंगाली समाज की जातीय भावुकता और राष्ट्रीयता भी निराला को महिषादल के वातावरण से मिली। देश के अन्य भागों की अपेक्षा बंगाल नई रोशनी और नई संस्कृति से अधिक शीघ्र परिचित हुआ। आधुनिक राष्ट्रीय-चेतना का प्रथम उन्मेष भी वहीं से हुआ है। आश्चर्य नहीं कि निराला भी यहाँ रहकर नवीन सभ्यता की विशेषताओं से परिचित हो गए हों।" उनके व्यक्तित्व की भाँति ही उनकी कृतियों में

१—अभिनन्दन ग्रन्थ संस्मरण २५ और २८ पृ० १० और ६७
२—महादेवी वर्मा जो रेखाएँ न कह सकेंगी महाप्राण निराला पृ० ४
३—डा० शिव मंगलसिंह 'सुमन' का पत्र डा० रामविलास शर्मा को २४ जुलाई ४५ (हंस जुलाई १९४९ में प्रकाशित)

भी बगाल की उदारता और आकर्षण की छाप स्पष्ट दिखलाई पडेगी।" 'जुही की कली', और 'ज्योत्स्ना' ही से नहीं, 'कुल्लीभाट' 'पछताता पथ पर आता' वाली उनकी कविता मे जो भिखारी का चित्रण हुआ है तथा अन्य अधिकाश कृतियो मे बगाल का रस, आकर्षण भावना और प्रभाव मिलेगा।[१] बगला का प्रभाव उनके शब्द-चयन और भाषा पर भी देखा जा सकता है।

महिषादल के राजपरिवार मे निराला का प्रवेश निर्बन्ध रहा है। राज-परिवार के इस प्रवेश और उच्च-सहवास के परिणामस्वरूप उनके मनोभावो मे एक राजसी बानगी आई है, उनकी उदारता का पहलू प्रकाशित हुआ। एक ओर पारिवारिक आर्थिक-विपन्नावस्था और सघर्ष तथा दूसरी ओर उच्च सहवास का परिणाम उदारता। यह निराला के जीवन का दूसरा विरोधाभास है। पहला तो उनके व्यक्तित्व की दुर्दमनीय पौरुष कठोरता और स्वभाव की शिशु सुलभ कोमलता एव हार्दिक करुणा है ही। एक ओर निराला की आर्थिक विपन्नता इतना कि भोजन के लाले भी पड जायें और दूसरी ओर इतनी उदारता कि सम्मिलित भोज दिए जा रहे हैं। कभी तो न भोजन न अच्छे वस्त्र और जीवन-यापन की न्यूनतम सुविधाओं का भी अभाव। स्थिति यह रही है कि नौकरी के लिए, अर्थ-प्राप्ति के लिए जहाँ-तहाँ काम ढूंढते रहे। सुधा मे उनसे योग्यता पूछी गयी।[२] रवीन्द्र की रचनाओ का अनुवाद कार्य भी न मिल सका।[३] माधुरी मे प्रूफरीडिंग के लिए अभ्यास और कम से कम वेतन लेने की माँग हुई।[४] आर्थिक विपन्नता इतनी थी कि परिवार के खर्च के लिए बाग का चारा बेचा गया।[५] और स्थिति यहाँ तक आई कि बर्तन बेचने तक का आदेश अपने भतीजे को निराला ने दिया था।[६] इस आर्थिक विपन्नता के परिणामस्वरूप उन्हे कई उपवास तक करने पडे हैं और चने चबाकर दिन बिताने पडे है। इससे एक तथ्य तो यह भी प्रमाणित होता है कि निराला के व्यक्तित्व ने समझौता करना कभी नही सीखा। आर्थिक सघर्षो से पराजित होकर झुके वे कभी नही। यह उनके ऊर्जस्वी 'अह' का भी [illegible]चायक है। इसी स्थिति के विपरीत उनकी उदारता की भी सीमा नही रही। अस्त-[illegible] जीवन में कभी जब उन्हे तीन सौ रुपयो की प्राप्ति हो गयी और जो महादेवी [illegible]प से तीसरे ही दिन इसलिए खर्च हो गए कि किसी विद्यार्थी का परीक्षा-शुल्क [illegible]है, किसी साहित्यिक मित्र की आवश्यकता पूर्ति करनी है और किसी ताँगे [illegible] मनीआर्डर करना है तथा किसी मित्र की भतीजी के विवाह के लिए

[illegible]न्दन ग्रन्थ कलकत्ता मे श्री निराला जी पृ० १४-१५

[illegible]यण पाण्डेय का पत्र २५ अगस्त १९२६

[illegible]तप्रिय द्विवेदी का १२ मई, १९२८ का पत्र

—माधुरी सम्पादक का ३ जनवरी २८ का पत्र (हस जुलाई १९४९)

५—३ जनवरी २६ की मनीआर्डर की रसीद

६—मई २९ का पत्र (दोनों हस जुलाई १९४९ मे डा० रामविलास शर्मा द्वारा उद्धृत)

के, फैजाबाद साहित्य सम्मेलन, ओरछा नरेश से उनकी भेंट, और हिन्दी साहित्य तथा साहित्यकार की जाति का पक्ष लेकर लडने वाले चित्रो से समता करते हैं तो आश्चर्य होता है। जिस ऐतिहासिक बोध, जातीय-विशेषता और हिन्दुत्व का उद्घोष युग-प्रवर्तक विवेकानन्द ने किया था उसकी प्रतिध्वनि, मूलध्वनि बनकर निराला के "शिवाजी के पत्र, जागो फिर एक बार, दिल्ली, यमुना", आदि कविताओं मे मिलती है। 'उत्तिष्ठत् जाग्रत् प्राप्य वरान्निबोधत्' के ही वे स्वर हैं। यह सोई हुई हिन्दू जाति को आत्म-चेतना देने के स्वर हैं। वीरता की प्रतिष्ठा के लिए स्वामी विवेकानन्द ने बगाल मे महावीर की पूजा प्रचलित कराई थी और निराला प्रारम्भ से ही हनुमान के भक्त रहे हैं। स्वामी जी ने कहा था, "ख्याल, टप्पा बन्द करके लोगों को ध्रुपद गान सुनाने का अभ्यास कराना होगा। वैदिक छन्दो की गुरु-गम्भीर ध्वनि से देश मे प्राण का सचार करना होगा। डमरू सिंग बजाना होगा। नगारे के ब्रह्म रुद्र ताल का दुदुभी नाद उठाना होगा।"[१] निराला ने उसे जीवन और काव्य के क्षेत्र मे उतारा। कोमल शब्दों और भावो की साधना के स्थान पर उनकी बादल राग की कविताएँ, 'जागो फिर एक बार' का उद्बोधन आदि कवितायें इस ओर की प्रमाण है—मुक्त छन्द मे ही मानो वैदिक छन्दो का गुरुगम्भीर स्वर मुखर हो उठा है। कदाचित् इसीलिए निराला को स्वामी विवेकानन्द का साहित्यिक प्रतिनिधि कहा गया हैं।[२] जहाँ तक व्यक्तित्व का प्रश्न है स्वामी विवेकानन्द और निराला के व्यक्तित्व मे मुझे आश्चर्यजनक समता मिलती है। यह अलग बात है कि स्वामी जी का कार्य धार्मिक नेता का, दार्शनिक प्रचारक का था (यद्यपि यह भी सही है कि निराला भी साहित्यिक नेता ही है) और निराला का क्षेत्र काव्य, साहित्य रहा। इस समता का कारण कदाचित् यह भी हो कि जहाँ राजा राममोहनराय से प्रारम्भ होने वाले आन्दोलन—सामाजिक और सास्कृतिक—के शीर्ष बिन्दु रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानन्द हैं, वहाँ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से प्रारम्भ होने वाले हिन्दी साहित्य के नवजागरण के शीर्ष बिन्दु भी प्रसाद और निराला हैं। दोनों शीर्ष बिन्दु भारतीय सस्कृति के आख्यान को लेकर भी चले थे। जहाँ प्रसाद के काव्य की भूमि औपनिषदिक और आनन्दवादी विचारधारा है, वहाँ निराला के काव्य की वेदान्ती और अद्वैतवादी। स्वामी विवेकानन्द और निराला के व्यक्तित्व की इस समता के साथ विषमताएँ भी एकाधिक होगी और हैं भी, लेकिन मेरा विनम्र मत है कि समता कहीं अधिक आकर्षक है।

स्वामी विवेकानन्दके वेदान्तके दोनो स्वरूप निराला के व्यक्तित्वमे घटित होते हैं—शक्ति-साधना और करुणा। निराला के जीवन मे पौरुष की छटा और कोमलतम वृत्तियो का अद्भुत सामजस्य है। "निराला स्वय अपने मे और विवेकानन्द मे गहरी समता देखते हैं। आज भी वे कहते हैं, "जब मैं इस प्रकार बोलता हूँ, तो यह मत समझो

१— विवेकानन्द चरित श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार, (हिन्दी-द्वितीय सस्करण) पृ० ४४२

२—अभिनन्दन ग्रन्थ सस्मरण २७ पृ० ९३

कि निराला बोल रहा है। तब समझो, मेरे भीतर से विवेकानन्द बोल रहे हैं। यह तो तुम जानते ही हो कि मैंने विवेकानन्द का सारा वर्क हजम कर लिया है। जब इस प्रकार की बात मेरे अन्दर से निकलती है, तो समझो, यह विवेकानन्द बोल रहे हैं।'[1] निराला की वाणी ही नही जीवन भी वेदान्ती सत का जाग्रत उदाहरण है। आध्यात्मिकता के प्रति निराला की सस्कारात्मक आस्था है। उनकी बुद्धि प्रधान वृत्ति भी श्रद्धा और आस्था का सम्मिलित रूप है। सचेष्ट दार्शनिक और सबल बुद्धिवादी निराला का दार्शनिक आधार भी विवेकानन्द का व्यवहारिक वेदान्त है, जिसकी विवेचना हम पहिले अध्याय मे कर आए हैं। जीवन की गहन तथा रहस्यमय आध्यात्मिक प्रवृत्तियो के साथ यथार्थ के प्रति भी जागरूकता और शक्ति, साहस, ओज और पौरुष के गायक की आत्मनिष्ठ आध्यात्मक तन्मयता ने निराला को पूरा वेदान्तिक अद्वैतवादी बनाया है। अद्वैतवादी की विवेकानन्दीय पौरुषमय व्याख्या के ही अनुरूप निराला के काव्य मे कोमल कल्पना और हृदय-स्पर्शी मार्मिक कोमल अनुभूतियो के साथ विचार और दर्शन का प्रतिपादन तथा ओजमय वीर रस की वाणी मिलती है। स्वामी रामकृष्ण परमहस मे आकर धर्म अनुभूति का विषय बन जाता है। उनका निर्देश भी यही है। निराला का दर्शन और वैचारिक पार्श्व भी आत्मिक अनुभूति बनकर ही नि सृत हुआ है। स्वामी रामकृष्ण ने ज्ञान के वितडावाद को अधिक प्रश्रय नही दिया। वे जीवन मे अनुभूति और भावात्मक साधना को ही अधिक मूल्यवान् समझे थे। निराला मे दर्शन बौद्धिक विलास नही है। निराला ने रामकृष्ण-वचनामृत का अनुवाद किया है, विवेकानन्द का पूरा वर्क वे हजम कर चुके हैं और कवि विवेकानन्द से भी उनका घनिष्ट परिचय है। साधारणत व्यक्ति के लिए इतनी साधना ही उसे आत्मसात् करने के लिए यथेष्ट है, फिर निराला की तो स्वाभाविक वृत्ति की दिशा ही यही है। परमहस की तरह निराला की भाव-साधना की तल्लीनता के भी एकाधिक उल्लेख मिलते हैं। अवश्य यह धार्मिक भावना नहीं थी। 'मतवाला' काल मे ही वे अहर्निश इतने चिन्तनशील रहते थे कि उन्हें अपने शरीर और वस्त्रो की सुध नही रहती थी। वे स्वभावत. बाह्य-ज्ञान-शून्य रहा करते थे। ऋषितुल्य चिन्तना का जीवन निराला का रहा है। "व्यवहार जगत मे निराला की उपस्थिति अत्यन्त ही अल्प रहती है। वस्तुत उनकी स्थिति भाव-जगत मे अधिक होती है। आचार्य शिवपूजन सहाय ने बताया है कि मतवाला मे काम करते समय भी निराला एक गहरी डुबकी मे डूबे हुए से रहते थे।"[2] उनके जीवन का अधिकाश अश भावनाओ की रहस्यात्मक सध्या के नीरव वातावरण से आच्छादित रहा है। एकात मे प्राय निराला का स्वगतालाप अथवा अचानक हँसी का अट्टहास जो उनके जीवन के प्रारम्भकाल से ही प्राप्त हैं) उन भावावेश की दशा की स्थितियां हैं जो कई अर्थों मे रामकृष्ण परमहस की भाव-समाधियो के निकट रखी जा सकती हैं।

१—अभिनन्दन ग्रन्थ : २९वा सस्मरण पृ० ११४

यह स्थति उनकी सन् २३,२४ से ही रही है। और कलकत्ता प्रवास के अधिकाश सस्मरणो से यह प्रमाणित है। ऐसी ही तल्लीनता उनकी गाने और लिखने मे भी मिलती है।[1] उनकी यह अन्तर्मुखता और वाह्यज्ञान शून्यता उनके समझने मे भ्रम भी उत्पन्न करती रही हो तो आश्चर्य नहीं।

रामकृष्ण मिशन के परिचय और स्वामी विवेकानन्द के कार्यों से अभिज्ञता ने निराला को एक दार्शनिक आधार दिया है जो उनके काव्य को समझने मे हमारी सहायता करता है। उनकी एकाधिक कविताएँ इस दर्शन की काव्यात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। परमहस की भाव-तल्लीनता की सी स्थिति उनके गीतो मे भी मिलती है, जिसमें एकाधिक भावनाओं की तन्मयावस्था ज्ञापित होती है। निराला मे जो स्वाभाविक दृढता और औदार्य था उसे यहाँ दार्शनिक आधार मिलता है। यह उनके व्यक्तित्व को जहाँ अप्रतिम बनाता है वहीं उनके काव्य को भी मौलिक व्यापकता का अवदान और बौद्धिक आधार देता है। वेदान्तिक अद्वैत की वहुल अभिव्यक्तियाँ उनके काव्य मे दर्शनीय है, साथ ही शक्ति-साधना की समता पर अव्यक्त सत्ता को जननी और माँ के सवोधन भी मिलते हैं। महादेवी ने कहा है कि "उनकी दृष्टि मे दर्प और विश्वास की धूपछांही आभा है। इस दर्प का सम्बन्ध किसी हल्की मनोवृत्ति से नही और न उसे अह का सस्ता प्रकाशन माना जा सकता है।"[2] अपने विश्वास का उपयोग उन्होंने अपनी परिस्थितियो की प्रतिकूलता से वीरतापूर्वक सघर्ष करने में किया है। यह उनके विचार और भावो को निर्भीक और स्वच्छन्द अभिव्यक्ति देने में भी सहायक हुआ है। उनका 'मैं' प्रतिपद सघर्ष करता हुआ भी अप्रतिहत गति से वढता गया है और अपने लक्ष्य पर पहुँचा है। सघर्षों और दुखो की उनकी आत्मिक अनुभूतियाँ उनके गीतो और कविताओ मे अभिव्यक्त हुई हैं। उनके काव्य की पृष्ठभूमि मे उनका यह औदार्य और विश्वास सर्वत्र स्पन्दित है। निराला अहकारी नहीं है, हाँ, वह आत्म-चेता अवश्य है। अपनी दार्शनिक मनोवृत्ति के कारण ससार से अलगाव की जो एक आस्था है वही निराला मे अहकार सी जान पडती है।[3]

० ० ०

यहाँ हम निराला के 'अह' का रुककर विश्लेपण कर लेना चाहेंगे। यह सही है कि निराला वेदान्तिक अद्वैतवादी हैं और अद्वैतवादी समस्त चराचर में एक ही तत्व की प्रधानता देखता है। उसी के आधार पर वह समस्त प्रकृति को अपनी आत्मा का ही प्रक्षेप मानता है। उसका 'अह' भौतिक अह नहीं है, न ही उसे मनोविज्ञान की शव्दावली का अह कह सकते हैं, यद्यपि मनोविज्ञान की शव्दावली का अह भी व्यक्तित्व का केन्द्र-विन्दु है और यहाँ भी, लेकिन यहाँ वह अह न होकर आत्म कहलाता है।

१—डा० रामविलास शर्मा पृ० ३६
२—महाप्राण निराला पृ०७
३—महाप्राण निराला . पृ० ३३३

दर्शन के क्षेत्र मे और विशेषत अद्वैतवादी दर्शन के क्षेत्र मे इस अह का तात्पर्य, 'अह ब्रह्मास्मि' और 'सोऽह' होता है। अपनी दार्शनिक मनोवृत्ति के कारण निराला भी 'अहं' को आध्यात्मिक कोटि मे ले जा सके हैं। इस अह को न किसी का भय होता है न कोई भौतिक सीमा उसे बांध सकती है। निराला, विवेकानन्द की उसी वाणी मे विश्वास करते हैं जो मानती है कि 'भय—मुझे किसका भय है। मैं प्रकृति के नियमो की पर्वाह नही करता। अद्वैतवाद हमे तेजस्वी, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ सोचने को कहता है।'[1] इसी आधार पर निराला इतने आस्थावान हैं। यह 'अह' अद्वैत का वह सोपान है जिसकी प्राप्ति रामकृष्ण परमहस और विवेकानन्द ने भी की थी। उसके मूल्याकन की पृष्ठभूमि मे इसी दार्शनिक विश्वास को ध्यान मे रखना होगा। इस भाव को हम हीनभाव का परिपूरक (Compensation for the feeling of inferiority) अथवा स्वीकरण का उद्यम (Striving for recognition) और उच्च-भाव ग्रन्थि (Superiority complex) से भी सम्बद्ध न कर सकेंगे। इसका कारण यही है कि निराला में हीनता का भाव दार्शनिक भूमि पर नहीं मिलता। अलफ्रेड एडलर कहते हैं कि, 'व्यापकत शिशु की हीन-भावना की व्याख्या क्रमश. रूपान्तरित होती जाती है—जब तक कि यह परिपुष्टि नही हो जाती और एक निश्चयात्मक आत्माभिमान (Self Estimation) मे अभिव्यक्ति नही हो जाती। अन्ततः यह एक स्थिर स्वमूल्याकन (Self-evaluation) का रूप धारण करती है, जो बालक अपने व्यवहारो में अधिकृत करता रहता है। इस उच्चभाव का लक्ष्य गुप्त होता है। सामाजिक भाव की अवस्थिति उसके स्वतत्र विकास मे बाधा होती है। वह गुप्त रूप से ही विकसित होता है और मित्रता का आवरण उसे गुप्त रखने के लिए आवश्यक है।[2] लेकिन जहां तक निराला के उच्चभाव का प्रश्न है, 'अह' का प्रश्न है, उसे किसी मित्रता के आवरण मे प्रच्छन्न रखने की आवश्यकता नहीं पडी है और न ही उसका कोई गुप्त लक्ष्य है। कम से कम उनके जीवन की सामान्य गतिविधि मे तो यह प्रतीत नही होता। सामान्यत इतने सघर्षो और विरोधो के बाद भी अपना निश्चित स्थान बना लेने के बाद व्यक्ति मे एक उच्चभावना का आ जाना स्वाभाविक है जिसे हम आक्षेप्य नही कह सकते। साधारण जीवन मे सामान्य व्यक्ति मे थोडी सी उपलब्धि के बाद उच्चता की भावना आ जाती है। फिर निराला जी की तो एक ऐतिहासिक उपलब्धि है। यदि वे इस उपलब्धि को अनुभूत करते हैं और उससे यदि उनमें एक उच्चभाव आता है तो उसे हीन-भाव का परिपूरक क्यो कहा जाय? यह उनके विशुद्ध अह या आत्म का ही प्रकाश है। ऊपर हम क्रेटश्मर सरीखे विद्वानों की अधिकृति पर शारीरिक निर्माण और व्यक्तित्व के विभाजन का प्रासगिक उल्लेख कर चुके हैं। जहाँ तक निराला के शारीरिक गठन का प्रश्न है, वह इस ऊर्जस्वी

१—परिवर्त एक·
2—Alfred Adler : Understanding Human Nature
P. 74—75 165

पराकाष्ठा पर पहुँची प्रतीत होती है। कवीन्द्र रवीन्द्र से वे स्वगत वार्तालाप करते हैं, नेहरू से भी वे सहसा बात करने लग जाते हैं, आई० सी० सी० मे स्पीच देने का उल्लेख करते हैं और अपने इग्लैंड-प्रवास का विवरण देते हैं। अपने आपको देश का प्रथम डी० लिट० बताते हैं। स्वामी विवेकानन्द उनसे बात करते हैं और वे हँस पडते हैं। स्व-मूल्याकन का यह हाल है कि अपनी दाढी को लेकर ही वे रवीन्द्र के समान अपने को मानते हैं और अरविन्द से बढकर अपने को बताते हैं। वे उन दिनो की याद करते हैं जब वे ईरान मे घोडे दौडाते थे और लोग उनकी तिजारत को आते थे। उनका व्यवहार इसी प्रकार की अनेक असम्बद्ध बातों से भरा होता है जिनका कोई प्रत्यक्ष सूत्र और सामजस्य नही मिलता। कभी अपना दस-पाँच हजार का हिसाब बताते हैं तो कभी अपने को राज्य का कैदी।

व्यक्ति मे उन्माद या विक्षेप की अवस्था उसके व्यक्तित्व के विघटन का प्रतीक है। यह विघटन और विच्छेद मूलतः सावेदनिक, विचारात्मक या गत्यात्मक होता है।[1] फ्रायड जिसे स्नायु-विकृति कहते हैं उसका कारण दबी हुई कामवृत्ति बताई गई है।[2] एडलर इसका कारण हीन-भाव बताते हैं और युग जीवन से समायोजन करने का वर्तमान अपर्याप्त प्रयत्न बताते हैं। लेकिन हमे पहले इसी की परीक्षा करनी होगी कि क्या निराला किसी स्नायु विकृति के शिकार हैं, क्या उनकी अवस्था उन्माद या विक्षेप की है ? उन्माद के विषय ने बर्नार्ड हार्ट का कथन है कि "वह कोई निर्णीत अन्विति नही है, वरन् उसका उपयोग उन विपर्यय-ग्रस्त व्यवहारों (Phenomenon) के समुदाय को निर्दिष्ट करने के लिए होता है, जिनकी सामान्यत कोई सगति नही होती। अधिकतर उसकी सीमाएँ युग की प्रधान धारणाओ के अनुसार परिवर्तित होती गई हैं।[3] हार्ट महोदय ने अपने ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में यह बताया है जो व्यक्ति मध्ययुग मे उच्च स्थिति और सम्मान के अधिकारी थे, सम्भव है वे बिना किसी सकोच के आज मानसिक रुग्णालय भेज दिए जायँ। उन्मादी व्यक्ति का व्यवहार सामान्यत असामाजिक होता है और इसी सामाजिक सहिता के विधान के आधार पर वे दूसरो के लिए घातक सिद्ध किए जाते हैं। यह व्यवहार भी असामाजिक इन्ही अर्थों मे होता है कि वे सामाजिक प्रक्रिया मे तत्परता से भाग लेने के अयोग्य समझे जाते हैं। ऐसे व्यक्तियो को अबौद्धिकता (Irrationality) का शिकार माना जाता है। उन्मादी की इस अबौद्धिकता पर विचार करते हुए हार्ट का कथन है कि "The origin of the abnormal mental Process is not to be fonnd in any disturbance of the reasoning Powers Per se, but in the material which is Presented to those Powers."[4]

१—ऐंजिल मनोविज्ञान पृ० ४५०

2—A General introduction to Psycho-analysis · Sigmund Freud · 16th Lecture and on wards.

3—Bernard Hart : The Psychology of Insanity : P. 139

4—" " ibid : P. 128-129

निराला जब स्वामी विवेकानन्द से वार्तालाप अथवा रवीन्द्र से स्वगत् भाषण करते हैं तो उसका कारण यह नहीं है कि उनकी तार्किक शक्ति या बौद्धिक प्रज्ञा नष्ट हो गई है, वरन् यह कि "वह धारणा मस्तिष्क मे ऐसे प्रकाश से प्रस्तुत होती है जो उसे ही एकमात्र सत्याभास और सम्भावित बौद्धिक निष्कर्ष मानता है।"[1] वे देखने मे ही अबौद्धिक प्रतीत होंगे क्योंकि दर्शक उस मानसिक प्रक्रिया से परिचित तो नही होना जिसका परिणाम वह धारणा है। वह तो केवल परिणाम-धारणा को देखता है जिसे ही वह बिना किसी प्रत्यक्ष आधार अथवा औचित्य के मान लेता है। श्री रमण अपनी एक भेंट का विवरण देते हुए कहते हैं कि, "यह सही है कि बीच-बीच मे कुछ ऐसी बातें भी बोलते रहते हैं जो अनावश्यक कही जा सकती हैं अथवा जिनका सामजस्य स्थिर नहीं किया जा सकता, किन्तु इसका कारण लगता है उनके अन्तर की अनेक प्रतिक्रियाएँ हैं जो एक साथ प्रवाहित होती रहती हैं।"[2] श्री गगाप्रसाद पाण्डेय का भी कहना है कि उनकी "स्वगतोक्तियाँ भी संगतिपूर्ण होती हैं। वे जब किसी व्यक्ति के विषय मे सोचते हैं तब मानो वह व्यक्ति उनके सामने उपस्थित हो जाता है।"[3] उनकी बातो को अबौद्धिक या विक्षिप्त का प्रलाप कहकर ही उपस्थापित नहीं किया जा सकता, न ही उनकी तर्क-प्रणाली सामान्य मनुष्य की तार्कित शक्ति से पृथक है। यह सही है कि उनकी मानसिक प्रक्रिया के कुछ अबौद्धिक उत्स हैं और विशुद्ध भावावेग की वे स्थितियां हैं लेकिन यह भी सही है कि मतों और विश्वासो का अधिकाश भाग, साधारण मनुष्यो मे भी उसी उत्स से आता है।[4] अत हम उन्हें इसी आधार पर उन्मादी की विशेष अबौद्धिकता का शिकार नही मान सकते।

फ्रायड के अनुसार दबी हुई काम वृत्ति से उत्पन्न स्नायुविकृति को लेकर कुछ लोग उनकी विस्तृत काम-पिपासामय अवधि का उल्लेख भी कर सकते हैं, जो २१ वर्ष के बाद ही प्रारम्भ हो गई मानी जा सकती है। इसके सावयविक कारण भी लोग दे सकते हैं। कहते हैं कि कलकत्ता मे उन्हें किसी भयकर रोग का सामना करना पडा था जिसकी परिचर्या बनारस मे रहकर हुई थी।[5] इसका परिणाम ही वर्तमान दशा है, यह कहना किसी मनोविश्लेषणक और चिकित्सक का ही कार्य है। स्नायु-विकृति के कौन से लक्षण निराला मे हैं यह भी निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। जिसे युग जीवन के समायोजन करने का वर्तमान अपर्याप्त प्रयत्न बताते हैं वैसी किसी समस्या का सामना निराला को करना पडा होगा—नही कहा जा सकता। साधारणत प्राप्त सस्मरणों से प्राप्त सूचनाओ के आधार पर, निराला को किसी

1—Bernard Hart : Ibid . P. 128, 129

२—२८ मार्च १९५५ की उनकी निराला से भेंट (अवन्तिका मे प्रकाशित)

३—महाप्राण निराला : पृ० ३६९

4—Bernard Hart : Ibid P. 138

५—आचार्य वाजपेयी से प्राप्त सूचना

वाह्यजीवन से समायोजन करने की आवश्यकता पडी हो, प्रमाणित नही होता। फिर पर्याप्त और अपर्याप्त प्रयत्न का प्रश्न ही नही उठता। एडलर द्वारा कथित हीन-भाव का परिणाम तो वह माना भी नही जा सकता। प्रतीत यही होता है कि जीवन की निरन्तर विषमता और सघर्ष से उनके मस्तिष्क मे कदाचित् मलिनता आ गई है जो क्रमश तीव्र होती गई है। जहाँ तक उनके भावावेगो का प्रश्न है ऐसे आवेग उनमें आरम्भ से ही स्वस्थ काल मे भी विद्यमान रहे हैं। सम्भवत वह स्थिति अब अधिक स्थायी रहने लगी हो। अन्तर्मुख निराला प्रारम्भ से ही रहे हैं—इसके भी एकाधिक उल्लेख मिलते हैं। जीवन की विषम गतियो और सघर्षों के परिणाम-स्वरूप उनकी मानसिक मालिन्य की स्थिति को विशुद्ध आर्थिक प्रतिपत्ति न मानकर प्रतिभा की व्याधि मात्र कह देना [1] सम्भवत सगत न हो, पर केवल आर्थिक कारणो को प्रमुखता देना भी पूर्ण सगत नही है।[2] माना कि प्रतिभा की व्याधियाँ होती हैं और वे आर्थिक क्लेशो से उत्पन्न नही होती, [3] लेकिन उनसे प्रभावित वे अवश्य होती हैं। इस आर्थिक विषमता और सघर्ष जन्य वर्तमान अवस्था का उत्तरदायित्व डा० राम-विलास शर्मा पूजीवाद समाज और हिन्दी की प्रकाशन व्यवस्था को देते है। [4] यह उत्तरदायित्व जिस किसी पर हो इतना निश्चित है कि उनके अन्तर मे अनेक प्रक्रियाएँ हैं, अनेक अपूर्ण इच्छाएँ हैं, जिनको वे कल्पना मे ही पूर्ण करते हैं। यह तो सही है कि जैसी ख्याति और कीर्ति रवीन्द्र को मिली, वैसी ख्याति और स्थान निराला को नहीं मिल पाया, यद्यपि हिन्दी के लिए निराला रवीन्द्र से कम नही हैं। रवीन्द्र विश्व-भ्रमण कर सके, राष्ट्र-सम्मान पा सके, आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न रहे, पारिवारिक सौख्य भी मिला। उसी के स्थान पर निराला को निरन्तर विरोध मिला, शासन से तो सही ही अपने सहकर्मियों से भी। जीवन भर वे आर्थिक विपन्नता मे रहे और पारिवारिक सुख का अस्तित्व जीवन में अनुभूत न कर पाए। ये प्रतिक्रियाओ मे है, जो उनके अन्तर मे चलती रहती है। 'सरोज' की असामयिक मृत्यु और उनकी विवशता तथा जीवन की अन्य अनेक विषमताओ ने उनकी व्यथा और वेदना को और प्रगाढ कर दिया है, अन्यथा आज भी वे सगीत की साधना पूर्ण कर लेते हैं। स्मृति उनकी अब भी तीव्र है और अध्ययन मे अब भी कुशल हैं। मिल्टन और शेक्सपियर उन्हे कठस्थ हो गए है।[5] कुल मिलाकर लगता है वे भावावेश की स्थिति मे रहते हैं जिसे पूर्ण उन्माद या विक्षिप्तता नही कहा जा सकता। धारा प्रवाह वे अग्रेजी बोलते हैं और निर्बाध एक विषय से दूसरे विषय पर पहुँच जाते हैं। इस आवेश की स्थिति मे विचारो की निश्चित सगत धारा मे प्रवाहित होना उनके लिए असम्भव-सा है और उनका ध्यान छोटी-मोटी

m

१—अज्ञेय—सगम निराला अङ्क पृ० २०

१—

—डा० रामविलास शर्मा हस जुलाई १९४९

2—A

Sig-अज्ञेय : वही

3—Beriस जुलाई १९४९

4—" न्तिका जून १९५५

नही मिलता। वस्तुत. जिसे टी० एस० इलियट [1] ने रासायनिक-प्रक्रिया के माध्यम से और जार्ज व्हेली ने [2] विद्युत-शक्ति-प्रक्रिया की क्वान्टस पद्धति से कवि व्यक्तित्व की तटस्थता और निस्संगता का आख्यान कहा है वह निराला के काव्य मे भी मिलती है। कीट्स [3] द्वारा अपने पत्रो मे प्रतिपादित व्यक्तित्व का अस्वीकरण (Negation of Personality) का जो सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है, वह निराला मे भी पूर्ण रूप मे मिलता है और इस ओर उनकी बौद्धिक चिन्तना की प्रवृत्ति सहायक हुई है। भोक्ता और सर्जक प्रतिभा का प्रथक्करण, जो उत्कृष्ट कलाकार की विशेषता है, उनके काव्य मे भी मिलती है। यह हम काव्य-अध्ययन की अवधि मे देखेंगे। सब मिलाकर निराला का व्यक्तित्व चिर विद्रोही और दार्शनिक भूमि के कारण असाधारण है तथा काव्य उसी के अनुरूप मुक्त, स्वच्छन्द और प्रशात। हिन्दी के लिए निराला का व्यक्तित्व एक ऐतिहासिक उपलब्धि है और उनका काव्य उसी के अनुरूप युगान्तरकारी, युग की महान प्राप्ति।

1—T. S. Eliot Selected Essays : P. 18
2—George Whalley . Poetic Process : P. 89
3—'Negative Capability' (कीट्स के पत्रो मे प्रयुक्त शब्द)
28th December 1817 का पत्र (Letters : oxford 1930 P. 77)

परिवर्त—तीन

काव्य-दृष्टि

१ प्रयोजन

कवि का सकल्प,

काव्य-परिशीलन में काव्य-दृष्टि के परिचय की सम्भावनाए

२ छायावादी काव्य-दृष्टि

३ कला, साहित्य और निराला

४ कवि, कविता और निराला

५ काव्य-प्रक्रिया

के सन्दर्भ मे निराला के वक्तव्य,

प्रेरणा, व्यक्तित्व, कल्पना, सौन्दर्य

६. छन्द, लय, और सगीत के सम्बन्ध मे निराला

७ शब्द, काव्यगत कठिनता का प्रश्न, भाषा

८ निष्कर्ष

हम यह मानकर चले हैं कि स्वच्छन्दतावादी काव्य ने हिन्दी कविता मे युगान्तर उपस्थित किया और उसका अपना एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व है। (तो) यह पूर्व निर्धारित हो जाता है कि उसकी काव्य-दृष्टि भी चली आती हुई काव्य-परम्परा से कुछ भिन्नता अवश्य रखती है। किसी कवि विशेष (अथवा युग विशेष के भी) काव्य के सर्वांगीण अध्ययन के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पहले उसकी स्थापनाओ, पूर्वेतर काव्य से उसके प्रस्थान-भेदो से परिचित हो लिया जाय, क्योंकि कवि अपनी सृष्टि अपने व्यक्तित्व तथा दृष्टि के अनुकूल करता है। वह उसका स्वीय आधार लेकर चलता है। उसके काव्यात्मक मूल भी उसके अपने होते हैं। किसी पूर्वाग्रह के स्थान पर युग-सापेक्ष और कवि-सापेक्ष काव्य का अध्ययन हमारी आधुनिक समीक्षा का महत्वपूर्ण दिशा-निर्देश है। कवि अपनी कला के आधार क्या मानता है? वह कला के किस पक्ष को महत्व देता है? उसकी दृष्टि मे काव्य क्या है? उसकी रचना कैसे होती है? आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो आरोपित समीक्षा के निराकरण के लिए, काव्य-अध्ययन के पूर्व समझे जाने चाहिए। ये प्रश्न इसलिए भी आवश्यक हैं और उनका उत्तर पाना अनिवार्य है, कि वे काव्य शास्त्रीय दृष्टि से एक प्रस्थान-भेद और नये मूल्य, प्रत्येक महान् कवि और युग के साथ उपस्थित करते हैं। इनके उत्तर के अभाव मे किसी काव्य का अध्ययन पूर्ण और समीक्षा निष्पक्ष हो सकेगी, इसमे सन्देह है। ये प्रश्न काव्य-परिशीलन से भिन्न भी नही पड़ते, क्योंकि इनका सम्बन्ध व्याख्या से और आत्मिक होता है। एक महत्वपू ' तथ्य यहाँ (और विशेषत निराला के सम्बन्ध मे) यह भी है कि किसी सुस्पष्ट, तथ्यात्मक निष्कर्षो मे उनका उत्तर नही मिलता। उनकी व्याख्या ही की जा सकती है।

विचारों के क्षेत्र मे नये मूल्यो और अपनी स्वत की धारणाओ का प्रत्येक कवि धनी होता है, अत वह क्या कहना चाहता है और कैसे कहता है के साथ-साथ क्यो चाहता है का प्रश्न भी मूलभूत है। स्वय निराला का कथन है कि "कवि के महत्व को जानने की आवश्यकता भी है? वह क्या चाहता है? उसका उद्देश्य क्या है? वह अपने जीवन का प्रवाह किस ओर वहा ले जाना चाहता है, उसकी भावनाओं मे किसी खास भावना की अधिकता क्यो हुई?"[1] जीवन-प्रवाह हम न कहे, हम उसे काव्य-प्रवाह भी कह सकते हैं। फिर निराला युग-प्रवर्तक कवि माने गए हैं। हिन्दी

१—रवीन्द्र-कविता-कानन . पृ० ७०

की परम्परा को नया प्रवाह उन्होने दिया है। कहा गया है कि कवि और आलोचक दोनो व्यक्तियो का आदर्श समन्वय निराला जी मे है और वे आधुनिक हिन्दी कविता के आदि गुरु हैं।[१] नये काव्य के पुरोधा के साथ उन्होने आलोचना के क्षेत्र में भी अपनी यथेष्ट गति प्रमाणित की है। जब आलोचक कवि कविता की आत्मा और उसके रूप के प्रश्नो पर विचार करता है तब वह अपनी स्थापनाओ मे अनजाने ही अपनी रचनाओ का प्रमाण देता चलता है। सिद्धान्त और कृतित्व का समन्वय होता चलता है। यही निराला के विषय मे भी है। इस (परिवर्त) मे हमे यह देखना है कि उनके सिद्धान्त क्या हैं? उनकी काव्य-दृष्टि क्या है?

कवि के वैयक्तिक परिवेश के साथ ही उसका युगीन परिवेश भी कम महत्व-पूर्ण नही है, वरन् कहना तो यही चाहिए कि युगीन परिवेश मे ही उसका महत्व और उसकी सज्जा है। युग से पृथक व्यक्ति का परिवेश परिकल्पित नही हो सकता। इसे यो ही कहा जा सकता है कि क्रान्तिकारी और युगान्तरकारी व्यक्ति अपने युग को नया परिवेश देते हैं। निराला ने व्यक्तित्व के साथ ही युग भी दिया है अथवा युग ने ही व्यक्ति दिया है। अत इस (परिवर्त) का उद्देश्य यह भी है कि स्वच्छन्दतावादी युग (जिससे निराला सम्बद्ध है) की काव्य-दृष्टि से हम परिचित हो लें। यह भी देख लें कि युग के परिपार्श्व मे निराला की काव्य-दृष्टि का देय और ग्राह्य क्या है?

◇ ◇ ◇

उस युग की कविता की वास्तविक भाव भूमि को लेकर मतभेद उठे हैं। कोई उसकी भावभूमि को लौकिक मानता है, कोई अलौकिक। इसका विचार इसलिए परिचय के लिए आवश्यक है कि जिस युग का प्रतिनिधि और अग्रदूत निराला है वह कविता मे किस वृत्ति को महत्व देता है? उसकी भावभूमि क्या है? क्योकि उसी भावभूमि पर कवि की काव्य-दृष्टि का भी निर्माण हुआ है और प्रकारान्तर से भाव-भूमि का प्रश्न काव्य-दृष्टि का ही है।

◇ ◇ ◇

उपनिषदो से चली आती हुई काव्य-परम्परा से छायावाद का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। वह ऐतिहासिक आवश्यकता और दार्शनिक अभ्युत्थान माना गया है तथा जयशकर प्रसाद उसके शैली-पक्ष के महत्व के साथ ही उसे प्राचीन काव्य से सम्बद्ध करते हैं।[२] उसका नवीन दर्शन रहस्यवाद माना गया है जिसे सर्वात्मवाद कहा गया है। यह रहस्यवाद आत्मा के गुण के साथ ही साथ काव्य का गुण भी है।[३] प्रसाद और महादेवी मे दार्शनिक दृष्टि से कुछ अन्तर भी है। जहाँ प्रसाद आनन्दवादी दार्श-निक है वहा महादेवी दुःखवादी। यद्यपि विश्व सुन्दरी प्रकृति मे चेतनता का आरोप दोनो के काव्य मे है। स्वय निराला भी वेदान्तिक अद्वैतवादी हैं। छायावाद का

१—निराला अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ६६ और ११२

२—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध जयशकर प्रसाद पृ० १२३-१२८

३— महादेवी वर्मा का विवेचनात्मक गद्य पृ० ६०-६१, १०७-१११ और १४०

ूलाधार इस तरह दार्शनिक ही प्रतीत होता है और आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का अपना विचार यह है कि "छायावाद काव्य के मूल मे स्थित आध्यात्मिक दर्शन के ही कारण नए भौतिक विज्ञानवादी इसमे दोष ही दोष देखते है।"[१] अन्यत्र वे छायावाद की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि "मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य मे आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।"[२] इस आध्यात्मिकता का प्रतिवाद पत, डा० नगेन्द्र और शिवदान सिंह चौहान ने किया है। पत के छायावादी आध्यात्मिकता के प्रतिवाद के बाद भी उनकी छायावादी कविताओ—पल्लव आदि—मे छाया का भान अवश्य मिल जाता है। डा० नगेन्द्र ने उसका जन्म व्यक्तित्व कुठाओ, जो प्राय काम-केन्द्रित रहती है, से माना है।[३] और शिवदान सिंह चौहान उसकी प्रेरणा असतोष की भावना मानते हैं। इस तरह उसकी भावभूमि के दो विरोधी मत हैं। एक उसे लौकिक मानता है दूसरा अलौकिक-आध्यात्मिक। लेकिन जितना बडा विरोध इन दोनो का माना गया है, वस्तुत उतना विरोध है नही। सुविधा के लिए हम ऊपर की व्याख्या ले सकते हैं। आचार्य वाजपेयी का विचार है कि छायावाद के काव्य के मूल मे आध्यात्मिक दर्शन है। इसका तात्पर्य यह नही कि वही काव्य भी है। काव्य और दर्शन दो अलग अन्वितिया है। काव्य के मूल मे दर्शन हो सकता है, लेकिन वही दर्शन काव्य नही होता। फिर व्याख्या मे जब यह कहा गया है कि मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य मे आध्यात्मिक छाया का भान छायावाद है, तब आध्यात्मिकता के स्थान पर मानव और प्रकृति के सौन्दर्य को ही काव्य मे प्रमुख स्थान दिया गया है। उसमे आध्यात्मिक छाया तो केवल भासित है। उसका केवल भान होता है। अत मानव और प्रकृति ही प्रमुख है क्योंकि काव्य का लक्ष्य वही है। अवश्य दृष्टि मे आध्यात्मिक छाया का भान आ जाता है। आधार मानव और प्रकृति का सूक्ष्म व्यक्त सौन्दर्य ही है, उस पर आध्यात्मिकता केवल आरोपित हो जाती है। इसका निष्कर्ष यह भी नही कि आध्यात्मिकता की छाया ही काव्य भी है। कवि अपने आधार को उदात्तीकृत कर (और यह उदात्तीकरण फ्रायडीय न होकर आध्यात्मिकता का आग्रह है) ही वह काव्य की सृष्टि करता है। 'आसू' की विवेचना मे उसका आधार मानवीय ही बताया गया है।[४] प्रसाद का काव्य मूलत मानवीय है, यद्यपि उनकी दृष्टि मे यह मानव सत्ता वास्तव मे आध्यात्म का अग ही है। वहा मानवीय प्रेम अपने उत्कर्ष मे एक अलौकिक आध्यात्मिक छाया से सम्पन्न हो उठा है।[५] जहा तक पन्त के प्रतिवाद का प्रश्न है वह छायावाद की शैली मे ही अधिक सम्बद्ध है, पर जहा उसके भाव-पक्ष की विवृत्ति हुई है—जैसे

१—आधुनिक साहित्य नन्ददुलारे वाजपेयी . पृ० ३४३
२—हिन्दी साहित्य · बीसवीं शताब्दी पृ० १६२
३—आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ · डा० नगेन्द्र पृ० १०
४—जयशकर प्रसाद नन्ददुलारे वाजपेयी पृ० ६०-६२
५—वही

परिवर्तन मे—वहा मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य मे आध्यात्मिक छाया-भान उन्हे भी होता है। यह सही है कि छायावादी कवियो की प्रेरणा असतोष और प्रतिरोधो से आई है, लेकिन अपने आध्यात्मिक दर्शन के कारण वह उसे आध्यात्मिक स्तरो पर भी ले गए हैं। मूलत वह कविता मानवीय ही है। यह अलग बात है उनका मानव आध्यात्मिक परासत्ता का अग है।

इस छायावादी मानवीय कविता का, जिस पर आध्यात्मिक रग चढा हुआ है, मूल व्यक्ति है और यह व्यक्ति भी अद्वैतवाद का आत्म ही है। इस काव्य की आत्म-परक दृष्टि ही उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थापना और प्रस्थान-भेद हैं। अपने पूर्ववर्ती काव्य की इतिवृत्तात्मकता और अवैयक्तिकता के स्थान पर उसने व्यक्तित्व के अह का ऊर्ज स्वर काव्य मे घोषित किया है, आत्म-परक कविताओ का सृजन किया है। लेकिन यह अह परिवर्तित न हो पाया, क्योकि उसकी पृष्ठभूमि मे प्राचीन साहित्य की आध्यात्मिकता थी और लगभग प्रत्येक कवि के पीछे आनन्दवाद सर्वात्मवाद अथवा अद्वैतवाद की एक स्पष्ट दार्शनिक चिन्ताधारा भी वर्तमान है। इसी आत्म और अध्यात्म अह के कारण आत्म-परक और परात्मक नामक काव्य-भेद यहाँ नही है,[1] (अग्रेजी समीक्षको के द्वारा किये गये भेद की भाँति) क्योकि अपने दार्शनिक आकार के अनुरूप वे वाह्य को भी अन्तर का प्रकाश मानते हैं। छायावाद, काव्य की आत्म-परक व्याख्या करता है। वह काव्य को आत्म की अभिव्यक्ति और उसी का प्रकाशन मानता है। उस आत्म की जिसमे वाह्य और अन्तर का भेद नही रहता। काव्य के रूप और विषय को लेकर भी छायावाद का स्पष्ट निर्देश भावाश्रित ही है। अभिव्यजना वाह्य-आकृति है और उसका कोई स्पष्ट दिशा-निर्देश इसलिए भी कठिन है कि प्रत्येक कवि के अनुरूप ही उसमें भेद होता है। भाषा को पन्त भावानुरूपिणी मानते हैं, निराला अनुगामिनी। महादेवी का 'प्रतीक' की ओर विशेष आग्रह रहा है। वस्तुत छायावादी काव्य मे अन्त प्रेरणा और अभिव्यक्ति का सम्बन्ध घनिष्ट माना गया है। छन्द के प्रति सामान्य विद्रोह के वाद भी छायावादी कविता मे लय का विरोध नही है, उसका स्थान स्वच्छन्द छन्द में भी है। छायावादी कविता मूलत अन्तर्वाह्य अनुभूति से सम्बद्ध है और जिस प्रकार अंग्रेजी रोमाटिक धारा के कवियो ने कविता की प्राचीन मान्यताओ को अमान्य घोषित किया, उसे नये रूप मे प्रतिष्ठान दिया उसी प्रकार छायावादी कवियो ने भी कविता को नयी दृष्टि दी। द्विवेदीयुगीन काव्य शास्त्रीय आचारवादिता, व्यवहारिक नीति-निष्ठा और उपयोगिता-परक मूल्यो के स्थान पर उसके स्वत के नये मूल्य हैं। द्विवेदीयुगीन रुद्ध कल्पना और सीमित भावुकता की मर्यादा एव अनुशासन के विरोध में एक मुक्ति का भाव सहज-भावमूलकता को छायावादी कविता ने अपना आधार वनाया। अपनी काव्य-दृष्टि मे वह मानवीय मूल्यों और मानव के मूलगत् सवेगो को अधिक महत्त्वपूर्ण समझती है। इसी परिपार्श्व मे निराला की काव्य-दृष्टि का महत्व है। जो

१—आलोचना विनय मोहन शर्मा का निबन्ध
छायावादी कवियों का आलोचनात्मक दृष्टिकोण

महत्व रोमांटिक काव्यधारा मे 'लिरिकल बैलेड्स' की भूमिका और कालिरिज आदि का है वह हिन्दी मे निराला को दिया जाना चाहिए। छायावादी कवियो मे सुस्पष्ट और बौद्धिक चिन्तन से युक्त निराला के विचार परिमल और गीतिका की भूमिकाओ, प्रबन्ध-पद्य, प्रबन्धप्रतिभा और चाबुक तथा चयन के निबन्धो मे मिलते हैं।

निराला ने साहित्य-सृजन के साथ सास्कृतिक पुनरुत्थान की साधना भी की थी और एक नये काव्यान्दोलन का प्रारम्भ उन्होंने किया था। काव्य के अन्त और बाह्य दोनो पक्षो को लेकर निराला को सघर्ष करना पडा था। साहित्य उनका आदि कर्म-क्षेत्र था और उसमे उन्होने निरन्तर प्रयोग किये हैं। नयी भूमियो की शोध की है। निराला ने काव्य-सृजन के साथ ही कवि-कर्म का सचेत आकलन भी किया है और नये मूल्यो की प्रति-स्थापना। अत उनकी काव्य दृष्टि का छायावादी कविता के लिए एकान्तिक महत्व है।

कला के मूल सत्य मानव मन के सौन्दर्य और उसकी रसात्मकता के प्रति निराला की सहमति है। रवीन्द्र-कविता-कानन मे एक कविता की व्याख्या करते हुए कला की एक उत्कृष्ट विभूति के विषय मे निराला कहते है " कला वह है जिसमे मनुष्य के मन का चित्र दिखलाया है"।[१] कला की निष्कलुषता के साथ वे उसके मूल मे एक नित्य, अपरिवर्तनीय रहस्य का अस्तित्व भी मानते हैं। वे कहते हैं—"नया जन्म जिस तरह एक युग की सचित अनुभूतियाँ अपने भीतर से रूप और भाव पैदा करता है वही युगान्तरकारी कला है।" कला की चिर-नवीनता के साथ युग की अभिव्यक्ति मानते हुए निराला उसके वर्गीकरण मे विश्वास नही करते। उनका कहना है कि, "कला का प्रकारण भेद वैसा ही है जैसा व्याकरण का जल, जड हुआ, जड जल, ऐसा ही दर्शन-शास्त्र मे है।—महत्व सिर्फ सामयिक है।"[२] एक सत्य सौन्दर्य है जो कला मे विभिन्न रूप से अभिव्यक्त होता है। यह अविभाज्य है, पर अभिव्यक्त रूप में उसके नाना रूप हो सकते हैं। क्रोचे भी इसी आधार पर कला की श्रेणियाँ नही मानते, जो हीगेल से स्पष्ट मत-विरोध है। कला का जीवन के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध है और वह जीवन से पृथक नही की जा सकती। क्योकि निराला का कथन है कि कलाकार की कल्पना जिस भाव को सौन्दर्य के माध्यम से ग्रहण करती है वही सत्य है और अनुभूति की सचाई तो सब दिन सुन्दर होती है।[३] युग की यथार्थ परिस्थितियो की गहरी से गहरी अनुभूतियो की सजग आकुल चेतना निराला के काव्य मे बराबर मिलती जाती है।

निराला साहित्य को अपने जीवन का उद्देश्य मानते हैं। साहित्य के प्रति अपनी आस्था को प्रकट करते हुए वे कहते हैं—"हम—साहित्य मे अपनी बहुत दिनो की भूली

१—रवीन्द्र कविता कानन पृ० ८२

२—प्रबन्ध पद्म—पृ० १५६

३ - महाप्राण निराला - पृ० १०७

हुई उस शक्ति को आमन्त्रित करना चाहते हैं जो अव्यक्त रूप से सब मे व्यक्त अपनी ही आँखो से विश्व को देखती हुई अपने ही भीतर से उसे ढाले हुए है। पानी की तरह सहस्र ज्ञान-धाराओ मे बहती हुई स्वतन्त्र, किरणों की तरह सब पर पडती हुई मधुर, उज्ज्वल, अम्लान , मृत्यु की तरह नवीन जन्मदात्री, सर्वशाखाओ की तरह अगणित प्रसार से फैली हुई, प्रत्येक मूर्ति मे चिर कमनीय है।"[1] साहित्य की स्वतन्त्रता, उसकी चिर नवीनता के वे समर्थक हैं, इसीलिए कहते है कि यथार्थ साहित्य किसी भी उद्देश्य की पुष्टि के लिए नही आता, वह स्वय सृष्टि है। इसीलिए उसका फैलाव इतना है जो किसी सीमा मे नही आता। ऐसे ही साहित्य से राष्ट्र का यथार्थ कल्याण हुआ है।— वृहत् साहित्य यानी ऊँचे भावो से भरा हुआ साहित्य कभी देश, काल या सख्या मे नही रहा और उसी से देश, काल और सख्या का अब तक कल्याण हुआ है।"[2] कहना न होगा कि यह साहित्य मे उच्च भावो की मान्यता के साथ उसकी स्वतत्रता, असीमता का आख्यान है। किसी स्थूल उद्देश्य या उपयोगिता की पूर्ति वह नही करता, लेकिन वह निरुद्देश्य भी नही है। साहित्य के विषय मे उनकी मान्यताओ मे शास्त्रीय दृष्टिकोण का आग्रह भी मिलता है। साहित्य के भाव से समन्वित साहित्य की व्याख्या मे ही उनका विश्वास है। यह सहित का भाव लोक, प्रान्त, देशादिक सीमाओ का अतिक्रमण करता है और लोकोत्तरानन्द उसका उद्देश्य है। लोकोत्तर का अर्थ निराला के लिए "लोक मे जो कुछ दे पडता है उससे दूर तक पहुँचा हुआ" है। वह साहित्य मनुष्य-मात्र का साहित्य है। वे कहते हैं—"मेरा उद्देश्य था और है—स्वतत्रता बहुमुखी है और साहित्य का मतलब है—वह सबको साथ लिए रहे"। उनके लिए साहित्य मे एक ही सत्य का प्रकाश है और यह है मानवीय सत्य जो कि सीमातीत है। अपनी आत्मा पर विश्वास रखने का साहित्य उपदेश देता है और मानव धर्म का स्वातन्त्र्य ही उसका लक्ष्य है जो स्मृति तथा नीति की सीमा मे पडकर अपने मूलकारण को अमरवेलि की तरह खो बैठा है।"[3] उनका विश्वास है कि साहित्य का प्रतिफलन "प्रत्येक व्यक्ति के इच्छित विकास को निर्बन्ध कर उसकी बहुमुखी उच्चाभिलाषाओ को पूर्णता तक ले चलते हुए समष्टिगत पूर्णता वाह्य स्वातत्र्य सिद्ध करने मे है।"[4] उसका उद्देश्य सार्वभौमिक है और अनेक दृष्टियो का उसमे एक साथ रहना आवश्यक है। इस साहित्य में सभ्यता, धर्म और सस्कृति को अमर रखने की शक्ति है। साहित्य मे व्यक्ति के विकास के साथ समाज का भी स्थान है और वह महत्वपूर्ण है, अत निराला कहते हैं, "मेरे सामने कविता लिखते समय व्यक्ति नही आता, मैं तो पूरे समाज को देखता हूँ।"[5] अपने युग मे साहित्य की स्वतत्रता के वे प्रबल समर्थक रहे हैं और इसी

१—प्रबन्ध पद्म पृ० २०
२—वही पृ० २४
३—वही पृ० ५९-६०
४—वही पृ० १०७
५—महाप्राण निराला पृ० १४६

कारण राजनीतिक नेताओ से उन्हे विरोध भी करना पड़ा है। उन्होंने कहा है, "यथार्थ साहित्य नेताओ मे दिमाग के नपे-तुले विचारो की तरह आय-व्यय की संख्या की तरह प्रकोष्ठो मे बन्द होकर नहीं निकलता।" साहित्य को किसी राजनीतिक दल का मुखापेक्षी रखना वे नही चाहते, क्योकि वे जानते हैं कि जब साहित्य किसी दल से सम्बन्धित हो जायगा तो उसकी स्वतन्त्र अन्विति का अन्त हो जायगा। उसकी स्वतन्त्र आत्मा और निष्कलुष मस्तिष्क का भी अन्त हो जायगा। उसके विचार और भावों पर दल की प्रतिक्रिया ही हावी होगी और साहित्य की सीमातीत व्यापकता रुद्ध हो जायगी। गाधी के विरोध मे रवीन्द्र की नीति का इसीलिए उन्होंने समर्थन किया, क्योकि वह एक साहित्यिक की नीति थी। उन्होंने कहा है, "साहित्यकार दलबन्दी मे आकर एक खास वस्तु विषय को सत्य नही कह सकता। उसका क्षेत्र तो व्यापक और विस्तृत[1] होना ही चाहिए। सन् ३८ के फैजाबाद सम्मेलन मे जब निराला ने श्री सम्पूर्णानन्द को प्रत्युत्तर देते हुए कहा था कि "हिन्दी के कवि राजनीतिज्ञो से और आगे हैं'[2] तब उसी स्वतन्त्रता का अभियान उन्होने किया था। समसामयिक साहित्य की वादीय-आक्रातता में निराला के विचार आज भी दिशा-निर्देशक हैं और साहित्यकार के वैयक्तिक स्वातत्र्य और सामाजिक दायित्व के प्रस्तुत प्रश्नो मे[3] उनका मत आज भी समन्वयवादी और निर्णायक है, महत्वपूर्ण है।

निराला ने कवि को संस्कृति का अग्रदूत और भावनाओ का गायक कहा है। उसमे एक उत्तेजना होती है जो मनुष्य मे सद्भाव का जागरण करती है। उसके शब्द सोते हुओ को जगाते हैं। वह अपने भाव उसमे भरकर उन्हे जागृति की प्रेरणा देता है। वह जागरण का मन्त्र फूंकता है और आनन्द के स्वर का गान ही उसका कर्तव्य होता है। आनन्द प्राप्त और प्रदान करने की यह कवि-वृत्ति भारतीय काव्य-शास्त्र की वह चिर-परिचित शाश्वत और स्थायी व्याख्या है जो काव्य को ब्रह्मानन्द सहोदर मानती है। कवि के स्वर के पीछे निराला प्रतिभा की पुकार को ही महत्व देते हैं।[4] जो देव-शक्ति की अभ्युत्थान ध्वनि है और इसी के आविर्भाव से कवि का हृदय उद्भासित होता है। काव्य का सृजन होता है। कवि की उत्तेजना आत्मा की वह ध्वनि है जो 'स्व' मे 'पर' का प्रतिबिम्ब अवलोकित करती है। यह भी सीमातीत है। विश्व के लिए निस्सीम है। व्यापकता के साथ ही वे उसकी विचित्रता और अनूठेपन के भी समर्थक हैं। कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भू से सहमत होकर वे कवि को ब्रह्म ही सिद्ध करते हैं।[5] कविता मे एक प्रकार की दैवी शक्ति का वे आभास करते हैं और भारतीय कविता का विशेष आग्रह 'रस पुष्टि' के प्रति मानते है, जिससे कविता में प्राण-

---

१—महाप्राण निराला पृ० १८८

२—वही पृ० ८०

३—आलोचना परिमल (प्रयाग) द्वारा आयोजित आलेख के सन्दर्भ में

४—रवीन्द्र कविता-कानन पृ० ४८

५—'पंत जी और पल्लव'

सचार की शक्ति आती है । किन्तु उनकी यह भी मान्यता है कि रसदृष्टि स्वच्छन्दतावादी काव्य की व्याख्या के लिए पर्याप्त नही है । रसवादी दृष्टि या रसदृष्टि काव्य मे जीवन की अभिव्यजना पर एक प्रकार की सीमा बाँध देती है, क्योकि जीवनानुभूति से भी महत्वपूर्ण रस निष्पत्ति वहाँ हो जाती है । नयी कविता मे जीवन की अभिव्यजना को अव्याहत रूप मे स्वीकार किया गया है । रसदृष्टि मे जो वर्जित हो सकता है वह भी यहाँ वर्जित नही है । स्वच्छन्दतावाद मे व्यक्तित्व और आत्मानुभूति की भी प्रधानता है । इसलिए जीवनाभिव्यक्ति का अर्थ यहाँ उस जीवन की अभिव्यक्ति से है जो कवि की अनुभूति की वस्तु बन सका है । यह कविता ही कवि की प्रेयसी और अभीष्ट देवी है ।[1] वे कहते हैं, 'मनुष्य-मन की श्रेष्ठ रचना काव्य है । विचार की ऊँची दृष्टि से उसकी निष्कलुषता तक पहुँचकर शब्द ब्रह्म से उसका सयोग प्रत्यक्ष करने के पश्चात् यहाँ के लोगों ने उसे ब्राह्मी स्थिति करार दिया ।'[2] काव्य और व्यक्तित्व के सम्बन्ध के विषय मे निराला का कथन है कि "काव्य मे यदि कोई कवि अपने व्यक्तितत्व पर खास तौर से जोर देता है तो इसे उसका अक्षम्य अहकार न समझ मेरे विचार से उसकी विशाल व्याप्ति का साधन समझना निरुपद्रव होगा । कारण अहकार को घटाकर मिटा देना जिस तरह पूर्ण व्याप्ति है—जैसा भक्त कवियो ने किया—उसी तरह बढाकर भूमा मे परिणत कर देना भी पूर्ण व्याप्ति है—जैसा ज्ञानियो ने किया ।"[3] यह छायावादी कविता मे कवि के स्वतत्र और निजी व्यक्तित्व की शोध या आख्यान था । इसी के अनुरूप छायावादी कविताओ को व्यक्तित्व का विस्फोट माना गया । भक्तो और ज्ञानियो का उल्लेख सोद्देश्य—आध्यात्मिक, आत्मिक—है । व्यक्तित्व के इसी आख्यान के अनुरूप निराला ने लिखा है—

'मैंने 'मैं' शैली अपनाई
देखा एक निजी दुख भाई
दुख की छाया पडी हृदय मे
झर उमड वेदना आई ।'

यहाँ निराला कविता के मूल मे निहित सवेदना का महत्व भी स्वीकार करते हैं । वे भी उसके मूल मे वेदना को स्थापित करते है । 'परिमल' की प्रार्थना[4] मे वे कविता को कोमल-पद-गामिनी कहते हैं । और उससे नूतन-जीवन-भरने तथा 'जग को ज्योतिर्मय' करने की प्रार्थना करते है। अन्यत्र जब कवि कहता है[5] 'तुम चलो, बुलाया है उसने जल्दी तुम को उस पार' तब उनका निर्देश कविता के लोकोत्तरानन्द को ध्वनित करना ही है । 'निश्च्छल' और 'अविकार' कविता का वास प्रकृति के मुक्त

१—प्रबन्ध पद्म . पृष्ठ १३३
२—चयन पृष्ठ ४६
३— वही पृष्ठ ५०
४—परिमल पृष्ठ २३
५—वही पृष्ठ १३१

सौन्दर्य मे पृथ्वी से आकाश तक फैला है। गीतिका मे वे 'कुलुप-भेदो के तम और प्रकाश में भरने तथा अज्ञान के बन्धनो को काटकर ज्योतिर्मय ज्ञान का निर्भर वहाने की बात कहते है।'[1] कविता मानस की कुसुमित वाणी है, और 'कल्पना के कानन की रानी'[2] है। उसे 'मधुमय-जीवन की कमल-कामिनी' कहा गया और जीवन की सरस-साधना वह है।[3] असत्य वर्णो, चरणो, वन्दो, और छन्दो मे उसी का आख्यान होता है। वह सत्य और सुन्दर साथ-साथ है। विश्व के सुख का आख्यान उसी मे है।[4] कवि जग का मुक्त प्राण है। उर्ध्व-ध्यान के मध्वनित गान का आलाप ही कवि कर्म है।[5] यह कवि अपनी मानस-तरगो मे ही नोचा करता है—जिसका लक्ष्य तिमिर को पार कर, अज्ञान को हटाकर सत्य का मिहिर द्वारा देखना है। कवि का यह कर्म सस्कारो से जाग्रत होता है। उसकी एक अनल प्रतिभा होती है, जिसे प्रेरणा कहा जा सकता है। इस प्रक्रिया मे लौकिक ज्ञान छूटता जाता है। भावाकुल शब्दोच्छल जाग उठते हैं और कविता की लहरें कल-कल बज उठती हैं। कवि जड और चेतन का दुर्द्धर्ष समर देखता है और उसके अघुना प्राणो मे उसकी साधना जाग्रत होती है। कविता, भव-अर्णव की तरणी है[6] और गहन सवेदना की अपेक्षा उसे है। वह हृदय-निकेतन को स्वरमय करने का साधन है[7] जिससे करुणा जागत होती है। जब तक चरण स्वच्छन्द नही रहते तब तक नुपूर के स्वर मद रहते हैं।[8] थोडे मे यह काव्य मुक्ति का आख्यान है।

जहाँ कवि के द्रष्टा होने, कविता के द्वारा सत्य का मिहिर द्वार देखने और उर्ध्व ध्यान द्वारा उस पार जाने मे भारतीय काव्य शास्त्री से सहमति है, वही प्रकृति के मुक्त सौन्दर्य मे कविता का वास, वेदना और सवेदना मे उसका हास, कल्पना के कानन का राजत्व और मानस-तरग, मानस की कुसुमित वाणी, भावाकुल शब्दोच्छल मे अग्रेजी रोमांटिक काव्य-धारा से भी विलक्षण समानता है। भावाकुल शब्दोच्छल को हम वर्डसवर्थ की कविता की उस परिभाषा के निकट रख सकते हैं जो उसे शक्तिमान भावो का अपने आप निकलने वाला स्रोत मानती है। कल्पना के कानन का राजत्व शैली के निकट है। (जिसकी विस्तार से विवेचना आगे की गई है।) वर्डसवर्थ मे जहाँ भावना, अनुभूति पर जोर है वहाँ निराला मे भी कविता भव-अर्णव की तरणी, मानस-तरग, उसकी कुसुमित वाणी है। अतिव्याप्ति का जो दोष वर्डसवर्थ की

१—गीतिका पृष्ठ ३,
२—गीतिका पृष्ठ २६
३—अनामिका पृष्ठ ४२
४—वनवेला
५—तुलसीदास पृ० ६० (११६)
६—अर्चना . गीत १—२
७—आराधना . गीत—१
८—परिमा पृ० ८

परिभाषा मे देखा गया था निराला मे भी देखा जा सकता है, लेकिन वर्ड्सवर्थ की ही तरह निराला ने भी उसके साथ कुछ शर्तें रख दी हैं। वर्डसवर्थ की परिभाषा की यह परिणति हो सकती है कि कवि का कोई भी भाव अभिव्यक्त होकर कविता हो जाय। निराला की मानस-तरग की सभव है कोई सीमा न हो और कुसुमित वाणी के कितने ही प्रक्षेप, हो सकते है। लेकिन जहाँ वर्डसवर्थ ने काव्य के उपयुक्त मूल्यवान और सार्थक भावो को ही काव्य में अभिहित किया वहाँ निराला ने भी उनके द्वारा करुणा जाग्रत करने और ज्ञान प्रसारित करने, उर्ध्व-ध्यान और सवेदना प्रेषण की शर्त लगा दी। निराला ने काव्य-माध्यम के साथ जो प्रयोग किए, उसे जो अनेक प्रकार से परखा, उससे सिद्ध होता है कि वे उस तथ्य से परिचित थे जिसे गेटे के माध्यम का अवरोधक गुण (Resistent quality of Medium) कहा है। इसलिये भाव तरग का आशय कवि-कर्म की अतिसरलता या अभाव से नही लेना चाहिए। वस्तुत. इस प्रकार तीन ऐसी विशेषताएं सामने आ जाती है जिन्हे सदा एक साथ ही देखना चाहिए। प्रथमत वास्तविक भावोन्मेष के अभाव मे काव्य की सृजन-प्रक्रिया प्रारम्भ नहीं हो सकती। द्वितीयत कवि को प्रयत्नपूर्वक अपने माध्यम पर अधिकार प्राप्त करना पडता है, उसके अवरोधक गुण पर विजय प्राप्त करनी पडती है। तृतीयत इस प्रकार की अभिव्यजना मे भाव-सवेदन या भाव-विनियोग की क्षमता होनी चाहिए। यही नही, काव्य की जिस देवी-प्रेरणा और म्यूज़ के प्रभाव को प्लेटो ने काव्य शास्त्र के प्रारम्भिक चरण मे व्यक्त किया था, वह निराला मे भी दैवी-शक्ति के अम्युत्थान से गर्भित है। जिसे वर्ड्सवर्थ ने प्रशात मनोदशा कहा उसे निराला ने लौकिक ज्ञान से दूर तक आत्मतल्लीनता की दशा कहा है। यहाँ नीरव-शान्ति के उच्चतम-सौध मे, अपने मे ही मस्त कवि की साधना होती है। शेली ने काव्य का मूल्य अन्तर्जगत के मूल्यो पर आधारित किया था। निराला भी काव्य का उत्स वैयक्तिक प्रतिभा तथा आत्मप्रकाश मानते हैं और सस्कार, प्रतिभा तथा प्रेरणा का वहाँ प्राथमिक महत्व है।

काव्य-प्रक्रिया के सन्दर्भ मे कवियों ने अपने वक्तव्य दिए हैं, जिनके आधार पर विश्लेषण किया जाय तो काफी रोचक तथ्य प्राप्त किए जा सकते हैं। सामान्यत किसी अव्यक्त, अज्ञात शक्ति के वशीभूत होकर—(इसे प्रेरणा के क्षण भी कह सकते हैं)—कविता की रचना होती है अथवा निश्चय कर किसी विषय पर भी कविता की सृष्टि हो सकती है। लेकिन यह दूसरी स्वय अकाव्यात्मक-सी है और सम्भवत इसीलिए रोमाटिक-धारा मे प्रेरणा और अव्यक्त-शक्ति का ही आख्यान है। शिलर लिखते हैं कि एक सगीतात्मक भाव सर्वप्रथम उनके अन्तर मे जाग्रत होता है तत्पश्चात् काव्यात्मक भाव का उदय होता है। पॉल वेलरी अपनी एक कविता[1] के विषय मे कहते हैं कि वह एक लय के रूप मे लिखी गई थी और उन्हे यह भी ज्ञात न था कि वह विषय-वस्तु कौन सी है जो काव्य-रूप ले रही है। शनैः-शनैः शब्द

1—"Le Cimitiere Marin"

तैरते हुए आए और कविता बनते गए। सीगफ्राइड सेसून अपनी कविताओं के रचना-काल और प्रक्रिया के विषय मे कहते हैं कि, एक भावात्मक मुक्ति के अर्थ से वे कविताएँ लिखी गई थी और तत्पश्चात् वे सशोधित और परिष्कृत हुई। एक नये काव्यान्दोलन, अति-यथार्थवाद के पुरोधा कवि और आलोचक हरबर्ट रीड ने लिखा है, "मैं दृढता से कह सकता हूँ कि समस्त काव्य जो मैंने रचा है और जिसे मैं आज भी प्रमाणित और सत्य मानता हूँ—वह एक मूर्च्छा और अचेत अवस्था की परिस्थिति मे ःमी क्षण शीघ्रता से लिखा गया"[१] फेजर अपनी एक कविता[२] के विषय मे वक्तव्य ते हैं कि वह कविता उन्हे वस्तुत लिखाई गई थी। इस प्रकार काव्य-सृजन की काधिक प्रक्रियाएँ मिलती हैं और सबके मूल मे हम एक प्रेरणा का स्फुरण पाते ही हैं। हम सबके कुछ प्रेरणा के क्षण होते हैं और सम्भवत उसमे भिन्नता भी होती है (जैसे कि एक साधारण व्यक्ति और प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति में) जो केवल तीव्रता के परिमाण मे ही भिन्न है। कवियो ने बहुधा अपने रचनात्मक अनुभवो की विवृत्ति नही दी है।[3] लेकिन निराला मे कुछ अप्रत्यक्ष सकेत मिलते हैं। अपनी काव्य-प्रक्रिया मे वे दैवी-प्रेरणा का सयोग ही मानते हैं। ब्लेक जहाँ अपनी काव्य-प्रक्रिया को परलोक-गत भाई के निर्देश से सम्बद्ध करता है, वहाँ कीट्स का कथन है कि उन्हे शेक्सपीयर की आत्मा से अनुप्रेरणा मिलती है। वे अवचेतन की क्रियाशीलता मे विश्वास करते हैं। रवीन्द्र ने लिखा है—

एक की कौतुक नित्य नूतन, आगो कौतुकमयी,
अमि जाहा किछु चाहि बोलिवारे, बोलिते दितेछ कर'ई ?
अतर माझे बोलि अहरह
मुख हते तुमि भाषा केढ़े लह
मोर कथा लये तुमि कथा कह
मिशा ये आपन सुरे।[४]

अन्यत्र[५] वे अपनी अनुप्रेरणा को अन्तर्यामी या जीवन-देवता से अभिहित करते हैं और उसे रहस्यमय कहते हैं। निराला ने भी लिखा है—

"तुम्हीं गाती हो अपना गान
व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान"
"भावना रग दी तुमने, प्राण,
छन्द-बन्दों मे निज आह्वान"[६]

1—Collected Essays in Literary Criticism Herbert Read P. 110
2—'Autumn Elegy'
.—Form in Modern Poetry : Herbert Read.
४—चित्रा : रवीन्द्र
५—जीवन-देवता
६—गीतिका : पृ० ४९ और ७६

इस प्रेरणा और दैवी प्रभाव के साथ ही निराला साधना का उल्लेख भी करते है। वे जब कुछ लिखने बैठते है तब सरस्वती से उनका पूरा द्वन्द्व सा चलता है तब कही कुछ लिख पाते हैं।[१] इसका तात्पर्य यह नही कि उनकी कविता सहज-प्रेरणा का परिणाम नही या वह अनुप्रेरित नही, वाह्य प्रेरित है, श्रमसाध्य है, वरन् उसका निर्देश इतना ही है कि काव्य-सृजन मे साधना का भी उतना ही महत्व है जितना सहज-प्रेरणा का। सरस्वती से द्वन्द्व भी तो एक प्रेरणा का ही परिणाम होता है। फिर सहज क्रिया तो उनके अनुसार कवि का स्वभाव भी है। वे कहते हैं—"कवियो का हृदय स्वभावत बडा कोमल होता है। वे दूसरो के साथ सहानुभूति करते-करते इतने कोमल हो जाते हैं कि किसी भी चित्र की छाया उनके हृदय मे ज्यो की त्यो पड जाती है। उन्हे इसके लिए कोई विशेष प्रयत्न नही करना पडता। यह उनका स्वाभाविक धर्म बन जाता है।[२] कदाचित् इसी कारण "विधवा" लिखने के लिए निराला को "विधवा" नही बनना पडा। उस चित्र की छाया को ही हृदयगत कर उन्होंने हार्दिक सवेदन शीलता से ग्रहण कर लिया। कवि ने वहाँ एक निर्लिप्त फोटोग्राफर न रहकर उस चित्र के सुख और दुःख से अपनी हृदय-वीणा को इस तरह मिला दिया हैं कि वह चित्र अपनी सम्पूर्ण समवेदना गाकर सुनाता है। वे कहते हैं सत्य या ईश्वर का ही वह रग है जो रस के रूप मे कृतिकार की आत्मा के भावो की तरग को पाठक की आत्मा से मिला देता है। अनेक प्राणो मे एक ही प्रकार की सहानुभूति, एक ही मधुर राग बज उठता।[३]

कवि का व्यक्तित्व ही वह माध्यम है जिसके द्वारा कविता निःसृत होती है। आवश्यक यह है कि कवि की अनुभूति शक्ति व्यापक हो, सवेदना तीव्रतम हो। जो नित्य उसीसे सम्बद्ध रहे और वही जिये भी। काव्य और विषय को एकाकार कर ले। यह निराला के काव्य व्यक्तित्व का निर्देश है और जिसे हम काव्य-दृष्टि से सम्बद्ध करते हैं। परिमल की एक कविता का भी यही निर्देश है।[४] कल्पना की एक प्रखर किरण नीरस मन पर पडी और कविता अँगडाई लेकर खडी हो जाती है।[५] निराला कहते हैं—"महामनीषा जब किसी व्यक्ति-विशेष के भीतर जाग्रत होती है तब उसके अनेक कारण जागरण के उपादान के रूप मे उपस्थित करते हैं। उन्ही से सीमा अछोर असीम मे स्थिति पाती है और प्रकट-शक्ति अप्रकट के वर्ण गध से हवा के हिल्लोलो पर कँपते हुए कल्पना के कमल को चूमती है।" स्पष्ट है कि निराला काव्य-रचना मे कल्पना का बहुत बडा भाग मानते हैं। शैली ने कहा था कि काव्य की

१—निराला अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ४४
२—रवीन्द्र-कविता-कानन पृ० ५२
३—चयन पृ० ५४
४—परिमल पृ० ५०६
५—अणिमा पृ० २५

निर्माण प्रक्रिया, कल्पना की प्रक्रिया है। निराला का कथन है, "कलाकार की कल्पना जिस भाव को सौन्दर्य के माध्यम से ग्रहण करती है वह सत्य है और अनुभूति की सचाई तो सब दिन सुन्दर होती है।" यहाँ निराला का निर्देश यही है कि कलाकार सौन्दर्य के माध्यम से भाव का ग्रहण कल्पना द्वारा ही करता है। निराला के अनेक प्राणो मे एक ही प्रकार की सहानुभूति, एक ही मधुर राग और अप्रकट वर्ण-गंध से प्रकट करने वाली विलक्षण शक्ति-कल्पना को कालिरिज की कल्पना की उस परिभाषा के निकट रख सकते हैं जिसे वे वायोग्राफिया लिटरेरिया मे यो व्यक्त करते हैं—"(The Poet) diffuses a tone and spirit oᶜ unity, that blends, fuses each into each by that sythetic and magical power to which, I would exclusivly appropriate the name of Imagination[1]" यह कल्पना सृष्टि-कर्त्री है, अन्तर से विकसित एक गत्यात्मक प्रक्रिया है। अन्तर यही है कि निराला ने प्राथमिक और सहकारी कल्पना का कोई उल्लेख नही किया, अन्यथा निराला की कल्पना भी समस्त वस्तुओ मे एकत्व ढालने वाली ठहरती है। जो कालिरिज की कल्पना है।[2] वर्ड् सवर्थ की प्रशात मनोदशा मे पुनर्संचित भावो का, कालिरिज की कल्पना द्वारा ही कविता मे, मूर्तिविधायन होता है। प्रशात मनोदशा मे भावो का पुनर्संचयन निराला की 'स्मृति'[3] कविता मे मिलता है। स्मृति मे भी भावनाओ अथवा भावो का पुनर्संचयन ही होता है। यही स्मृति मूर्तिविधायन का केन्द्रीय तत्व है जिसके विना कोई भी काव्य-सृष्टि नही हो सकती।[4] निराला की 'स्मृति' अतीत के सुप्त गान सुनाकर ध्यान हर लेती है। सतत् द्रुत गतिर्माय वह पुन उमड उठती है। निहित अतीत मे वन्द ताल, लय, गति और छन्द वह है, जो चुम्बन की प्रथम हिलोर के स्वप्न सी ही दूर है, जिसकी तान अश्रुत भाषा की है, जो वेणु-ध्वनि सी शरीराधीन है। स्मृति के द्वारा ही कवि भावनाओ भावों को पुनर्संचित करता है और काव्य का सृजन होता है। इन भावनाओ और भावो का कविता मे आदि-महत्व है। कला अधिकाश मे भावनाओ की स्व-उत्स अभिव्यक्ति ही है और प्रत्येक दार्शनिक या समीक्षक यह स्वीकार करता है कि कला मे भावनाओ की ही अभिव्यक्ति होती है। यह पृथक वात है कि कही वास्तविक भावनाओ की और कही भावनाओ के विचार (idea) की अभिव्यक्ति होती है।[5] निराला मानते हैं कि भावनाएँ ही शब्द-रचना द्वारा एक विशिष्ट अर्थ तथा चित्र द्वारा परिपुष्ट होती हैं।[6] कविता मे भावनाओ की मौलिकता पर निराला का प्रवल आग्रह है। वे कविता में भाव सौन्दर्य को ही प्रमुख मानते हैं, इसीलिए 'पत जी और पल्लव' मे पत के रवीन्द्र

१—**Poetic Process : George whalley : P. 51** पर उद्धृत
२—**Esemplastic Imagination**
३—परिमल पृ० १०८
४—**Poetic Process : George whalley : P. 76**
५—**Feeling and Form : Susanne K Langer P. 25 40,58,59**
६—प्रवन्ध पद्य पृ० १५

से शब्द साम्य स्थापित कर लेने के वाद भी भाव-सौन्दर्य की उस ऊँचाई तक न पहुँच पाने के कारण उनकी तीव्र आलोचना वे करते हैं। निराला दूसरे के भावो को लेने में कोई अक्षम्य अपराध नही मानते, लेकिन उस भाव पर विजय प्राप्त कर उससे बढा-कर अपना कोई विशेष चमत्कार दिखाने का ही उनका लक्ष्य है। कविता की अन्विति के लिए भाव-निर्वाह के प्रति निराला का तीव्र आग्रह है, क्योंकि भावो की लडी जब टूट जाती है तब कविता का प्रकाशन-क्रम नष्ट हो जाता है।[1] कविता मे भावो की सगठित एकता समा ही जानी चाहिए।[2] इन भावों की शाश्वत व्यापकता और एकता का अनुवन्ध निराला ने व्यापक साहित्य और मानवीय स्वर की एकता के आधार पर किया है।[3] इन भावो की भी शर्त यह है कि पदो पर छलकें तो वे अवश्य, पर हलके न हों, नश्वर न हो। उनमें चित्त को चिर-निर्मल करने और देह-मन को शीतल करने की शक्ति हो।[4] इनकी धारा पद-पद पर प्रवाहित हो और शब्द ध्वनिमय साकार हो। यही वर्ण-चमत्कार है।[5] अनुराग की वृष्टि और छन्दों की वाढ मे भावों का झाग फेनिल हो उठे।[6] भावनाएँ और भाव समानार्थी तो नहीं है, पर उनमे पार्थक्य भी दूर तक नही है। सामान्यत इनका अन्तर व्यक्ति और और व्यक्तित्व का माना जा सकता है। भाव अनिवार्यत व्यक्तित्व से सम्बद्ध है और इस व्यक्तित्व में 'आत्म' का मूर्धन्य स्थान होता है। भावनाएँ भी व्यक्तिगत हैं, इसलिए कि उनका उत्स वह है। भावो को हम भावनाओं का सग्रथित रूप कहते हैं जो व्यक्तित्व का पोषण करती है।

भावो के सौन्दर्य पर निराला का प्रबल आग्रह है। काव्य मे सौन्दर्य की पृथक महत्ता, सत्ता और अन्विति भी है। यह सौन्दर्य वस्तु-परक और व्यक्ति-परक भी होता है। जहाँ तक निराला का सम्बन्ध है वह आत्मस्थ है। आत्मा ही सौन्दर्य का वह मूल है जो प्रकृति मे प्रतिबिम्बित होता है और काव्य-सहानुभूति को जाग्रत करता है। इस सौन्दर्य की सूक्ष्म किन्तु व्यक्त कला पर ही निराला का विश्वास है। पत जी मे सौन्दर्य के मनोहर रूपो की अवस्थिति ने ही निराला को उनकी प्रशसा के लिए वाध्य किया है।[7] स्थूल और वस्तुगत सौन्दर्य की अपेक्षा निराला सूक्ष्म और आत्मगत सौन्दर्य के समर्थक हैं। यह छायावाद की आत्म-परकता के भी अनुरूप है। यह सौन्दर्य एक सामजस्य ही है।[8]

१—प्रवन्ध पद्म पृ० ८५
२—रवीन्द्र-कविता-कानन पृ० ८०
३—चयन पृ०६० और १०३
४—अणिमा पृ०१५
५—गीतिका पृ०८७
६—वही पृ०८५
७—प्रवन्ध पद्म पृ०१३६
८—Feeling and Form Susanne K. Langer. P. 5.

काव्यात्मक परिवेश में इसका अर्थ काव्य की विलक्षण श्रेष्ठता का होता है।[1] इस सौन्दर्य के आत्मगत और परगत विभाजन मे दार्शनिक दृष्टिकोण से मुझे कोई विशेष तत्व दिखाई नही देता, क्योकि अद्वैतवादी आध्यात्मिकता का जो योग निराला में है वह वस्तु और पदार्थ तथा जड को भी आत्म और चेतन का ही प्रक्षेप मानता है और छायावादी कविता मे प्रकृति का उपयोग चेतना आरोपित या मानवीकृत ही हुआ है। निराला मे प्रकृति के साथ एक आनुभूतिक तल्लीनता भी मिलती है। 'तुलसीदास' मे चित्रकूट की प्रकृति छटा से कवि-सस्कार का उदय होता है। लेकिन निराला को प्रकृति का कवि उन अर्थो मे नही कहा जा सकता, जिसमे वर्ड्सवर्थ या शेली या किसी सीमा तक पत भी कहे जाते हैं। प्रकृति की छटाओं मे एक दार्शनिक सम्मोहन को निराला नही छोड पाए हैं और इसके लिए उनका आध्यात्मिक दृष्टिकोण उत्तर-दायी है, एव आत्मस्थ है सौन्दर्य की धारणा भी।

पाश्चात्य रोमाटिक काव्य-दृष्टि का महत्व परम्परागत और शास्त्रीय रुढि-बद्ध मान्यताओ से प्रस्थान-भेद का है। वह काव्य की स्वतन्त्रता और उसकी स्वच्छन्द अन्वितियो का आख्यान लेकर चला था। प्लेटो और अरस्तू की काव्यगत मान्यताओ और नव्य-शास्त्रवाद से उसका विरोध था। वर्ड्सवर्थ ने अरस्तू की दृष्टि से भेद प्रकट किया था और काव्य की स्वतन्त्र प्रक्रिया और कल्पना के महत्व को कालिरिज ने प्रतिष्ठित किया था। निराला मे काव्य की मुक्ति का तीव्र राग है। निराला मानते हैं कि 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है।'[2] काव्य की यह मुक्ति केवल छन्दो के अनुशासन से मुक्ति मे नही, वरन् उसकी प्रक्रिया और विषय को लेकर भी निराला ने मुक्ति का सन्देश दिया है। काव्य की इस मुक्ति का हिन्दी स्वच्छ-न्दतावादी आन्दोलन मे सर्वाधिक महत्व है। यह आन्दोलन वस्तुत समस्त सीमाओ नियमों, रुढियों से मुक्त होने का प्राण-प्रयत्न था। इस ओर निराला काव्य की प्रकृत भूमियो का प्रतिस्थापन लेकर चले। निराला का, लेकिन, अपेक्षाकृत अधिक महत्व काव्य-रूप की मुक्ति मे माना जाता है। छन्दोमुक्ति के तो पुरोधा वे हैं ही।

परिमल की भूमिका मे निराला ने कहा है, "मनुष्यो की मुक्ति कर्मों के बधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दो के शासन से अलग हो जाना। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नही करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं—फिर भी स्वतन्त्र। इसी तरह कविता का भी हाल है। मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नही होता है, प्रत्युत उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।"[3] काव्य में इसी स्वाधीन-चेतना का स्फुरण निराला के लिए महत्वपूर्ण है। हिन्दी मे मुक्त छन्द के वे 'जन्मदाता और त्राता' दोनो ही हैं। इस स्वच्छन्द छन्द की महत्ता का आलेख यों है—

१—Theory of Beauty : Osborne : P. 201

२—परिमल : भूमिका—पृ० १२

३—परिमल : भूमिका पृ० १६

"नूपुर के स्वर मन्द रहे
जब न चरण स्वच्छन्द रहें" [१]

निराला ने इस मुक्ति को ब्रह्म के स्वभाव और वेदो के उदाहरणो से प्रमाणित किया है। उनका निर्देश है कि काव्यानुशासन जाति की मानसिक स्थिति का परिचायक है। 'साहित्य की मुक्ति काव्य मे देख पडती है।'[२] निराला के पहले छन्दो-मुक्ति मे कुछ प्रयत्न मिलते तो हैं, लेकिन 'भिन्न तुकात या अतुकात' के वे प्रयत्न भी कतिपय सीमाओ, नियमो से आबद्ध हैं। रूपनारायण पाडेय का 'भिन्न तुकात' फिर भी मात्रिक छन्द है। 'इस तरह की कविता अतुकात काव्य का गौरव पद भले ही अधिकृत करती हो, वह मुक्त-काव्य या स्वच्छन्द छन्द कदापि नही है, क्योकि 'जहाँ मुक्ति रहती है वहाँ बन्धन नहीं रहते' और पूर्वेतर प्रयत्नो मे कुछ न कुछ बन्धन स्वीकृत अवश्य हुए हैं। 'मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि मे रह कर भी मुक्त है। उसमे कोई नियम नही। उसका समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम-साहित्य है उसकी मुक्ति।'[३] अन्यत्र वे कहते हैं कि 'मुक्त काव्य मे वाह्य समता दृष्टिगोचर नही हो सकती, बाहर केवल पाठ से उसके प्रवाह मे जो सुख मिलता है, उच्चारण से मुक्ति की जो अबाध धारा प्राणों को सुख-प्रवाह सिक्त निर्मल किया करती है वही इसका प्रमाण है।'[४] इस मुक्त छन्द का आधार कवित्त छन्द है और वहाँ सगीत की कला नहीं पठन की कला महत्वपूर्ण है। वह व्यजना-प्रधान है। निराला के मुक्त छन्द के साथ वाल्ट ह्विटमैन की अपेक्षा हॉपकिन्स का नाम अधिक न्यायसगत रूप से लिया जा सकता है। हॉपकिन्स भी विद्रोही थे और उनके मूल्य साम्प्रतिक व्यवहारों के सिद्धान्ततः विरोधी थे। अपनी कविता के विषय मे वे कहते हैं, श्वास लीजिए और श्रुति से उसे पढिए, जैसा कि मैं सदैव चाहता हूँ—और मेरी कविता ठीक हो जाती है।'[५] हॉपकिन्स ने भी पुरोधात्मक रूप से कविता के आधुनिक विकासों का आलेख किया था। उनकी कविताओ के विषय मे कहा जाता है कि वे 'शुद्धता से पढ़ी जाने के लिए लिखी गई हैं।'[६] निराला की कविताओ मे भी पढने की कला और उच्चारण का आनन्द है, लेकिन निराला ने मुक्त और स्वछन्द की व्यवस्था मे अव्यवस्था और अराजकता को प्रश्रय नही दिया जैसा कि उसके मुक्त और स्वछन्द विशेषणो से भ्रात गर्भितार्थ लिया जा सकता है। पहले ही उन्होंने उसका आधार हिन्दी के चिर परिचित कवित्त छन्द को बनाया और प्रवाह को उसका मूल। छन्दो मे लय की एक निश्चित

१—अणिमा पृ० ६
२—परिमल : भूमिका पृ० १५
३—परिमल पृ० १६
४—पत और पल्लव
५—Form in Modern Poetry : Herbert Read P. 53 पर उद्धृत
६—James Reeves : The Critical Sence : P 102

गति अवश्य होनी चाहिए और निराला का प्रवाह इसी 'लय' का स्थानापन्न है। कतिपय कविता की शक्ति और प्रभाव उसकी अभिव्यक्ति मे न होकर उनकी लयात्मक भाषा मे होता है।[1] उसकी ध्वनिलयता भी अनुभूति का एक भाग होती है। इस लय से ही काव्य मे एक अर्थपूर्ण और साभिप्राय रीति और रूप का समावेश होता है जो प्रत्येक कला का सत्व बताया गया है।[2] यह लय काव्य की सगीतात्मकता का भी आधार होता है। "नवीन प्रगीत काव्य के प्रतिनिधि कवियो-प्रसाद, निराला और पत में निराला के प्रगीत सगीतात्मक विशिष्टता से सर्वाधिक समन्वित हैं।"[3] इसका कारण कदाचित यह भी हो कि तीनो मे निराला सगीत के सिद्धान्त और व्यवहार मे सर्वाधिक दक्ष भी हैं। परिमल के तीसरे भाग की रचनाओ और गीतिका, अर्चना, आराधना के गीतो की सगीतात्मकता से निराला के छन्द और सगीत पर अवाध अधिकार का प्रमाण मिलता है। गीत-रचना के लिए सगीत का मर्मज्ञ होना भी उतना ही आवश्यक है जितना कविता के लिए पिंगल का ज्ञान। स्वच्छन्द या मुक्त छन्द पिंगल-अज्ञान व अशवित का परिचायक नही है, वरन् मुक्ति की अनिवार्य भावना का आग्रह है। निराला ने गीत की महत्ता के विषय मे कहा है कि "गीत-सृष्टि शाश्वत है। समस्त शब्दों का मूल कारण ध्वनिमय ओंकार है। इसी अशब्द सगीत से स्वर-सप्तको की भी सृष्टि हुई है। समस्त विश्व-स्वर का ही पुजीभूत रूप है, अलग-अलग व्यष्टि में स्वर-विशेष-व्यक्ति या मौन। स्वर सगीत स्वय आनन्द है। आनन्द ही उसकी उत्पत्ति, स्थिति और परिसमाप्ति है। जहाँ आनन्द को लोकोत्तर कहकर विज्ञो ने निर्विषयत्व की व्यजना की है—ससार से वाहर, ऊँचे रहने वाले किसी की ओर इगित किया है—आनन्द की अमिश्र सत्ता प्रतिपादित की है, वहाँ सगीत का यथार्थ रूपी अच्छी तरह समझ मे आ जाता है।"[4] इस क्षेत्र मे भी निराला का मुक्ति-राग नही छूटा है। छन्द और भाव के साथ वे शब्द और स्वर को भी मुक्त मानते हैं। सगीत और काव्य का सम्बन्ध हिन्दी मे तब तक केवल श्रुति तक ही सीमित था। निराला ने व्यवहार से उसे प्रमाणित भी किया। सगीत मे काव्य के अभाव का परिहार निराला ने गीतिका मे किया। कोमल, मधुर और उच्च भाव, तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से सगीत की सफलता वहाँ प्रमाणित है। यहाँ सगीत मे, जिसका आधार लय है, काव्य की अविच्छिन्नता की भी रक्षा हुई है और यान्त्रिक एक रसता का परिहार। वालेरी के शब्दो में कहे तो वह पूर्णतः सगीतात्मक है, म्यूजीकलाइज्ड है। निराला का प्रवाह (अथवा लय) कविता में विचारों और भावनाओ की एकतानता का पुरस्कर्ता है। उसका सत्व भी मौलिकता एव समानता है। छन्द इसी लय का मूर्त रूप है और यह लय काव्य से अविभाज्य है।

१—जैसे जान डान की कविता Expiration में ibid, P. 98

2—Feeling and Form : Susanne K Langer. P. 24

३—आधुनिक साहित्य नन्ददुलारे वाजपेयी . भूमिका पृ० २७

४—गीतिका भूमिका पृ० १

सगीत का सम्बन्ध काव्य की भावनाओ से और उसका कार्य भावनाओ की उत्तेजना के साथ ही उनकी अभिव्यक्ति से भी है। यह भी काव्य का एक सुन्दर रूप है।

○ ○ ○

मलार्मे ने जब कहा था कि कविता शब्दो से निर्मित होती है,[1] तब उसका निर्देश कदाचित काव्य मे शब्दो के महत्व का प्रतिपादन ही रहा है। शब्दों का महत्व काव्य की अभिव्यजना शक्ति और कवि के व्यक्तित्व पर आधारित है। शब्दो की ध्वनि और अर्थ काव्य का निर्माण करते हैं। काव्य का सगीत भी शब्द की इसी ध्वनि-विशेषता पर आधारित है। भाषा की ध्वनि-विशेषता प्रत्येक श्रेष्ठ कवि का ध्यान आकर्षित करती है। शब्दो की यह ध्वनि तथा लय भी अनुभूति का अग है और उसका अनिवार्य महत्व स्वीकार किया गया है। सस्कृत समीक्षा मे वक्रोक्ति सम्प्रदाय मे वक्र-व्यजना का महत्व और शब्दों का असाधारण उपयोग कवि की वैयक्तिक सम्पत्ति मानी गई है।" शब्द, उनकी ध्वनि और यहाँ तक कि उनका वाह्य परिवेश वस्तुत कवि के लिए सब कुछ है। शब्दों का अर्थ ही कविता का भी अर्थ है।'[2] हॉपकिन्स की कविताओ की विशेषताओ का उल्लेख करते हुए रीड महोदय उसकी शब्द-शक्ति को उसकी प्रमुख विशेषता बताते हैं। उनका कथन है कि कविता की नव्यता शब्दो के मौलिक अर्थों की खोज पर ही आधारित है।[3] शब्दो का निराला के लिए उतना ही महत्व है जितना भावना, अनुभ्ति या कल्पना अथवा प्रेरणा का। वे तो प्रत्येक शब्द को अनादि मानते हैं। शब्द ही काव्य मे व्यक्त क्रिया का निर्देश करते हैं। निराला का कथन है कि 'एक ही शब्द के पर्यायवाची अनेक शब्द होते हैं। उनमे किस शब्द का प्रयोग उचित होगा, किस शब्द से कविता मे भाव की व्यजना अधिक होगी इसका ध्यान कवियो को रखना पडता है——भाव के वाहक शब्द होते हैं और शब्दो मे अर्थ और ध्वनि।'[४] वर्ण का चमत्कार भी यही है कि एक शब्द मे ध्वनियम साकार बंध जाता है। शब्द की महत्ता सगीत के लिए भी आवश्यक है और गीत-रचना की वृत्ति के लिए सतर्क और सार्थक प्रयोगो की आवश्यकता है। निराला कहते हैं कि 'प्राचीन गवैयो की शब्दावली सगीत की सगति की रक्षा के लिए किसी तरह जोड दी जाती थी इसलिए उसमे काव्य का एकान्त अभाव रहता था। आज तक उनका यह दोष प्रदर्शित होता है। मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से मुखर करने की भी कोशिश की है।'[५] यह नही कहा जा सकता कि यह कोशिश अप्रतिम सफलता की धनी नही है। वस्तुत परुष और कोमल भावो की व्यजना के लिए वैसे ही शब्दो का चयन कविता का शृ गार ही नही, प्राथमिक आवश्यकता है। निराला शब्दो के वैयक्तिक प्रयोग और उनके भाव-वहन की क्षमता का आग्रह करते

1—Lytton Strachey : Literary Essays : P. 17
2—Form in Modern Poetry : H Read . P 45
3— · ibid P. 56-57

४—रवीन्द्र-कविता-कानन . पृ० ११८

५—गीतिका भूमिका पृ० ६

हुए कविता मे शब्दो की महत्ता स्वीकार करते हैं। ये शब्द, वे साधन हैं जिनसे हमारे विचार और भावो की अभिव्यजना होती है और जब तक यथातथ्य शब्दो का प्रयोग नही होता विचार और भावो का सम्प्रेषण नही हो सकता।

निराला के काव्य की कठिनता के कतिपय उल्लेख हुए हैं। उन्हे मैं आक्षेप ही कह सकता हूं, जिनका आधार गहरी पैठ या अध्ययन न होकर प्रथम-दृष्टि का प्रभाव ही है। काव्य की कठिनता के एकाधिक कारण हो सकते हैं। सर्व प्रथम तो उसके वैयक्तिक कारण हो सकते हैं, जिनसे प्रेरित होकर कवि अतिरिक्त किसी दूसरे माध्यम से अभिव्यक्ति को असम्भव मानता है। अथवा कठिनता मौलिकता के कारण भी सम्भव है।[1] लेकिन दोनो कारणो को आक्षेप का आधार नही बनाना चाहिए। निराला के सम्बन्ध मे कठिनता का प्रश्न उनकी भाषा को लेकर भी उठाया जाता है। सामान्यत यह कहा जाता है कि उनकी भाषा सस्कृत-निष्ठ, क्लिष्ट है। लेकिन मैं समझता हूं यह भी आक्षेप का आधार नहीं बन सकता। स्थायी मूल्य के काव्य के साथ सुन्दर अभिव्यक्ति और भाव-औदात्य के प्रेषण मे सरल सीधी-सादी भाषा की कल्पना मुझे कुछ दुरूह लगती है। कवि की तीव्रतम अनुभूति को उसी तीव्रता और स्पष्टता से व्यजित करने के लिए भाषा सक्षम नही कही जा सकती। सांस्कृतिक पक्ष का निर्वहन भी इस भाषा से नहीं हो सकता।[2] सास्कृतिक कलाकार कहे जाने वाले निराला की भाषा मे एक परिष्कृति और औदात्य के अनुकूल गाम्भीर्य हो तो वह आक्षेप्य नहीं होना चाहिए। सस्कृति का मुखर-निर्वहन परिष्कृत भाषा ही कर सकती है। भाषा भावानुरूपिणी भी होना चाहिए और यदि निराला के भाव मौलिक, उदात्त हैं तो भाषा का परिवेश नितात साधारण कल्पित नहीं किया जा सकता। निराला ने भाषा-सम्बन्धी अपना विचार प्रकट किया है, 'हिन्दी को राष्ट्र-भाषा मानने वाले या बनाने वाले साल मे तेरह वार आर्त चीत्कार करते हैं—भाषा सरल होनी चाहिए, जिसे आबाल-वृद्ध समझ सकें। मैंने आज तक किसी को यह कहते हुए नही सुना कि शिक्षा की भूमि विस्तृत होनी चाहिए। जिससे अनेक शब्दो का लोगो को ज्ञान हो, जनता क्रमश ऊँचे सोपान पर चढे।'[3] हिन्दी को असस्कृत किए जाने का उन्हें हार्दिक दुख भी था। उनकी मान्यता है कि 'प्राचीन बडे-बडे साहित्यिको की भाषा कभी जनता की भाषा नही रही। वे अपनी प्रकृति के अनुकूल ही भाषा लिखते आए हैं। कठिन भावो को व्यक्त करने में प्राय भाषा भी कठिन हो जाती है। जो मनुष्य जितना गहरा है वह भाव तथा भाषा की उतनी ही गम्भीरता तक पैठ सकता है और पैठता है। साहित्य मे भावो की उच्चता का ही विचार रखना चाहिए। भाषा तो भावों की अनुगामिनी है। इसका तात्पर्य यह भी नही कि भाषा

1—T. S, Eliot : Points of View : P. 50

२—आलोचना काव्यालोचन-विशेषाक पृ०१८६ (मेरा निबध)

३—प्रबन्ध पद्म · पृ०२३

को कठिनतर बनाया जाय।' न ही यह निर्देश निराला का है। निर्देश तो केवल भाषा के भावानुकूल प्रवाह का है, क्योंकि भाव की अनुगता भाषा कठिन होने पर भी समझी जा सकती है। गैर लोगों को अपने मे मिलाने का तरीका भाषा को आसान करना नहीं, न मधुर करना—उसमे व्यापक भाव-भरना और उसी के अनुसार चलना है। भाषा के निरन्तर विकास और परिवर्तन के निराला समर्थक हैं। यह उनकी दृष्टि से भी प्रमाणित है, जब वे कहते हैं कि, 'भाषा भी समयानुसार अपना रूप बदलती रहती है। कला के विकास के साथ-साथ साहित्य मे नई भाषा भी विकसित होती है।' और व्यवहार से भी। उनके परवर्ती काव्य के विषय मे भाषा-काठिन्य का प्रश्न कदाचित नही उठता। भाषा की नियमबद्धता के विरोधी भी वे हैं। 'भाषा के पैरो मे व्याकरण की बेडी पडी कि उसने झट अपना स्वरूप बदला और पूर्णता की ओर किसी नये रास्ते से चल पडी।'[1] भाषा के भी प्राण होते हैं और प्राण-मुक्ति की साधना तो निराला की आदि हैं। 'ससार की हर एक भाषा स्वाधीन चाल से ही चल कर और भिन्न-भिन्न भाषाओ से ही शब्द लेकर अपना भण्डार भरती है।'[2] भाषा की प्रगति और परिवर्तन तथा नये रूपो मे उसके ढालने के प्रति निराला की भी सहमति है, क्योंकि 'भाषा की शिथिलता जीवन को भी शिथिल कर देती है। और किसी भाव को जल्दी और आसानी से तभी व्यक्त कर सकेंगे जब भाषा पूर्ण स्वतन्त्र और भावों की सच्ची अनुगामिनी होगी।'[3] अपने पूर्वेतर युग की भाषा की कठिन शुष्कता और रुढ़ि के प्रति उनका विरोध इसीलिए था कि उसका प्रयत्न भाषा को स्थायी रखने के लिए था। इसके साथ ही भाषा की स्वाभाविकता के प्रति भी निराला का आग्रह है। रवीन्द्र की कविता का विश्लेषण करते हुए वे उनकी भाषा की स्वाभाविकता और मुक्त-प्रवाह की प्रशसा करते है।[4] भाषा का रूप साहित्य के विभिन्न रूपो पर भी आधारित है। जैसे 'प्रबन्ध प्रतिभा' मे पौराणिक-नाटकों की भाषा के लिए प्रवाहपूर्ण होना आवश्यक बताया गया है, क्योंकि प्राचीन युग का रूप तभी पूरा उतरता है। वह प्राचीनता के वातावरण की रक्षा के लिए भी आवश्यक है। रचना-शक्ति का वैशिष्ट्य उसके माध्यम से ही प्रकाशित होता है। निराला कहते हैं, भाषा बहुभावात्मिका रचना की इच्छा-मात्र से बदलने वाली देह है। इसलिए रचना और भाषा के अगणित स्वरूप भिन्न-भिन्न साहित्यिकों की विशेषताएँ जाहिर करते हुए देख पडते हैं। रचना युद्ध-कौशल है और भाषा तदनुकूल अस्त्र।' कुल मिला कर निराला का निर्देश भाषा को भाव-ग्राहिणी और भाव-वाहिनी के रूप मे देखना है। उसकी अपनी एक सस्कृति और परिष्कार होना चाहिए। सांस्कृतिक कलाकार के लिए उसका परिवेश अवश्य निश्चित परिष्कृत होगा। विचारों और भावो के औदात्य

१—चयन पृ०१९
२—वही पृ०२१
३—वही पृ०२५-२६
४—वही पृ०१२५

के अनुसार ही भाषा का सस्कार भी होना चाहिए। नवीन विचारो और नवीन भावों के लिए भाषा का रूप परिवर्तित होता है। काव्य के विभिन्न प्रयोगो के साथ भाषा के भी नवीन प्रयोग इसीलिए निराला ने किए हैं। यद्यपि निराला ने भाषा को सर्वसाधारण के स्तर का बनाने का कोई वक्तव्य नही दिया है, लेकिन उनमे भी कही आधुनिक ढंग की भाषा की लीक पकड़ने का प्रयत्न है जहाँ सस्कृत, अग्रेजी, उर्दू, और फारसी के शब्द भी हिन्दी के बनकर आए हैं'[1] और कही भाषा अधिकाश बोलचाल की है।[2] भाषा का यह एक दूसरा परिवेश है जो, 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' की तुलना मे उसके परिवर्तित रूपो को प्रमाणित करता है। इन दोनो परिवेशो मे काव्य के कथ्य और विचारों की अनुरूपता का ही आग्रह है।

निष्कर्षतः निराला की काव्य-दृष्टि कतिपय शाश्वत मूल्यों के प्रति सहमति प्रकट करती हुई नये आभास लेती है। छायावादी काव्य-दृष्टि और भाव-भूमि के सदर्भ मे युगीन काव्य-शास्त्र को निराला का कदाचित उतना ही महत्वपूर्ण देय है जितना लिरिकल बैलेड्स की भूमिका का, रोमांटिक काव्य-धारा के सन्दर्भ मे रोमाटिक काव्य-शास्त्र को। निराला साहित्य की स्वतन्त्रता और उसके 'सहित-भाव' की विशेषता का आख्यान करते हुए कला के विकास उसकी चिर-नवीनता और मानव-मन के सौन्दर्य की उसकी अभिव्यक्ति मे विश्वास करते हैं। कवि को ब्रह्मा और काव्य को लोकोत्तरानन्द कहने में उनकी सहमति भारतीय शास्त्रीय दृष्टि का समर्थन करती है। काव्य-प्रक्रिया में दैवी-प्रेरणा, सस्कार, प्रतिभा एव साधना का समन्वय निराला ने किया है। प्रकृति और कल्पना के योग तथा काव्यात्मक सहानुभूति अथवा सवेदना के द्वारा वे काव्य की सृष्टि मानते हैं। काव्य के वाह्य परिवेश में वे निरन्तर मुक्ति के पक्षपाती हैं। छन्द और भाषा की मुक्ति के साथ वे काव्य के अन्तरग-भाव और विचारो की नवीनता और मौलिकता का आग्रह करते हैं। यहाँ उनकी स्वच्छन्द दृष्टि का प्रमाण है। काव्य और सगीत का भी उचित सम्बन्ध स्थापन निराला ने सिद्धान्त एव व्यवहार मे किया है और छायावादी प्रगीत-काव्य को सगीतात्मक की उनकी देन महत्वपूर्ण मानी जायगी। शब्द और भाषा को विचार, भाव-अनुगत मानने में उनकी वैयक्तिक दृष्टि, सास्कृतिक मूल्यो के प्रति उनकी रुझान की परिचायक है। काव्य मे "आत्म" की स्थापना द्वारा उसे व्यक्तित्व-बोध और प्रकाशन का माध्यम निराला ने माना है। अपने दार्शनिक व्यक्तित्व के कारण निराला ने दर्शन और काव्य का पारस्परिक सम्बन्ध माना है। वे काव्य में भी एक विचारक और दार्शनिक के रूप मे अभिव्यक्त होते हैं, लेकिन फिर भी काव्य की मूलभूत स्थापनाओ का अतिक्रमण नही करते। उनका महत्व यही है कि दर्शन और विचार भी उनमे काव्य होकर ही आता है। यह कल्पना के साथ काव्य मे बुद्धितत्व की सस्थापना भी है, क्योंकि भाव भी बौद्धिक प्रक्रिया के अग होते हैं।

१—कुकुरमुत्ता : एक बात

२—नये पत्ते : प्रस्तावना

उनका काव्य एक साथ ही उच्च-काव्य और दर्शन की सगति का अभिधान है। इसकी एक परिणति यह भी है कि जहाँ कवि भावो और अनुभूतियो को काव्य का आधार मानता है, वही वह विचारक और दार्शनिक भी हो सकता है और काव्य के साथ न्याय भी कर सकता है। प्रत्येक श्रेष्ठ कवि, कवि होने के साथ विचारक और दार्शनिक भी होता है। सच तो यह है कि निराला की काव्य-दृष्टि, परम्परागत रूढ़ मान्यताओ के विरोध के साथ ही नये मूल्यो की स्थापना भी करती है। विरोध की साभिप्रायिक अर्थ-पूर्ण स्थिति भी यही है। छायावादी काव्य-दृष्टि मे निराला की मान्यताओ का ऐकान्तिक ऐतिहासिक महत्व है—विशेषत. उनकी मुक्त-दृष्टि और मुक्त-छन्द का।

परिवृत्त—२

प्रयोजन —

काव्य के अध्ययन से मेरा तात्पर्य काव्य का भाव-सत्ता, उसके कल्पना-पक्ष, उसकी अभिव्यक्ति के साधन के अध्ययन से है। भाव-सत्ता की प्राजलता, उसके विशिष्ट-गुण, उसकी गहनता, और मौलिकता के साथ-साथ उसकी धारावाहिकता का काव्य मे जितना महत्व है, उतना ही महत्त्व उसकी अभिव्यजना अभिव्यक्ति के साधन रूप चित्रो की उपयुक्तता और उसकी नवीनता का भी है। भाव-सौन्दर्य की अवधारणाके साथ मूल्याकन का जो तत्व अध्ययन से सम्बद्ध है वह काव्य के मूल-गत सौन्दर्य का प्रतिपादक है। किसी कृति के अध्ययन का उद्देश्य उसके औदात्य एव वैशिष्ट्य का दर्शन है। काव्य के अध्ययन मे जहाँ हम उसके रूप-गत सौन्दर्य से सम्बन्धित हैं वहाँ उसकी वस्तु की महत्ता भी कम महत्वपूर्ण नही है। काव्य के मूल्यो का निर्देश और उनकी गहनता तथा मौलिकता का आख्यान ही काव्य के अध्ययन की दिशा है। काव्य मे सौन्दर्य का महत्व उसके सम्प्रेषण से ही है और यह सम्प्रेषण उन चित्रो, रूपगत परिवेशो में होता है, जो कोई कवि चुनता है। काव्य का एक अर्थ होता है, उसकी भावसत्ता होती है, उसकी ध्वनि होती है और उसका एक लक्ष्य होता है। इस अर्थ, भाव और ध्वनि तथा लक्ष्य के परिचय को ही हम काव्य का अध्ययन कहते हैं। यह लक्ष्य नैतिक या सामाजिक निकष पर न भी देखा जावे (क्योकि उसे साहित्यिक अध्ययन की परिसीमा के बाहर की वस्तु भी माना जाता है) तो भी काव्य का एक उद्देश्य तो होता ही है। यह रस-निष्पत्ति भी हो सकता है, और मानस-सम्प्रेषण भी। इन्ही की सफलता काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष की शक्ति या अशक्ति पर निर्भर करती है। मूलत काव्य-अध्ययन में इसी पक्ष का विश्लेषण होता है जो सौन्दर्यानुभूति को जाग्रत करता है। इस विश्लेषण का उद्देश्य काव्य के तत्वो का अलग-अलग परिचय प्राप्त करना और उनके बीच सम्बन्ध निर्वाह की सफलता को दृष्टि मे रखकर उसकी अन्विति की परीक्षा करना होता है। यहाँ हमारा उद्देश्य विश्लेषण के द्वारा कवि के भाव और विचार से परिचय प्राप्त कर उसकी मौलिकता का मूल्याकन करना है। कवि के भावो और विचारो को ग्रहण करने से हमारा तात्पर्य मूल्याकन का है। इसमे उन साधनो का भी विवेचन हो जाता है जिनसे कोई काव्य प्रभाव निर्मित करता है अथवा जिसके कारण उसकी एक विशेष (Appeal) होती है। हम मूल्याकन मे काव्य के प्रभाव, रूप-रग, सगीत और उसके

केन्द्रीय भाव का निदर्शन होता है तथा जिस प्रकार का वह काव्य है उसकी उसी स्तर पर उसकी परीक्षा का एव समानधर्मी काव्य से उसकी तुलना का। हम यह नही मानते कि काव्य के आकर्षण का विश्लेषण या उसके भाव, विचार, कल्पना का अध्ययन समय का अपसार है, क्योकि जब अध्ययन के साथ समीक्षा का या मूल्यांकन का कर्तव्य लेकर हम चलते हैं तब ये सब आवश्यक हो जाते हैं और समीक्षा साहित्य कला के क्षेत्र मे मूल्याकन की ही प्रक्रिया है। निष्कर्षत निराला के काव्य के अध्ययन से हमारा तात्पर्य काव्य मे "उनकी मौलिकता, शक्तिमत्ता और सृजन की लघुता विशालता के अध्ययन से है"।[1]

प्रत्येक काव्य के अध्ययन के पूर्व हमारी कुछ अपेक्षा होती है, लेकिन इस अपेक्षा के आधार पर अध्ययन पूर्वाग्रहो से आक्रात भी हो सकता है। अत. बिना किसी पूर्व अपेक्षा या आग्रह से काव्य के गर्भितार्थ, वस्तु, भाव और प्रतीक-विधान के परिचय को हम काव्य का अध्ययन कहते हैं। काव्य में अभिव्यक्त मौलिकता की पृष्ठभूमि मे उसकी प्रेरणा का भी आदि महत्व है। इस प्रेरणा का परिचय काव्य के अध्ययन में सहायक हो सकता है। कठिनाई यही है कि प्रत्येक कविता की प्रेरणा का आख्यान न तो कवि करता है न ही उसका परिचय इतना सहज है। तृतीय परिवर्त मे हम निराला की काव्य-प्रेरणा पर विचार कर चुके हैं, अत उसी सन्दर्भ में हम उनके काव्य का अध्ययन करते हैं। हमारे लिये यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक कविता की प्रेरणा का विवेचन भी हम अपनी ओर से करें। हमारे लिये यह कार्य प्राथमिक महत्व का भी नहीं ठहरता, क्योंकि प्रेष्य की प्रेरणा से अधिक महत्व प्रेषण का है। अवश्य हमारे लिये कविता के अर्थ, उसकी वस्तु, और उसके मूर्ति-विधान तथा प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का भी महत्व है। काव्य के अर्थ से हमारा तात्पर्य उसकी दो सम्भावनाओ से है—पहले तो उसके तात्कालिक मूल्य से और दूसरे उसके विचार से। पहिले मे शब्दों से अर्थ की व्यजना गृहीत होती है और दूसरे मे काव्य का कथ्य ग्रहण किया जाता है। कविता की वस्तु से हमारा तात्पर्य उस शब्द-वर्णन से है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कवि के भाव और मानस तक हमें पहुँचाता है। एक दृष्टि से तो प्रत्येक काव्य शब्दो का वर्णन ही ठहरता है, लेकिन हमारा तात्पर्य भाव के शब्द वर्णन से है। यह एक भावात्मक पभाव का जनक होता है। कविता मे आए स्थूल वर्णन भी कभी-कभी कवि-चेतना के आन्तरिक जगत के प्रतीक बनकर आते हैं। यह सभव है कि एक ही आधार लेकर किन्हीं दो कविताओं की वस्तु का निर्माण होता हो, लेकिन भावात्मक गुण में ये भिन्न हो जाती हैं। कविता की वस्तु का महत्व भी भाव-उत्तेजना के लिए ही है। प्रत्येक श्रेष्ठ काव्य का एक सैद्धान्तिक परिवेश भी होता है और अधिकाधिक विवाद कदाचित काव्य के द्वारा व्यक्त सिद्धान्तो पर ही होता आया है, लेकिन उन सिद्धान्तो के मूल्याकन से अधिक उनकी शक्तिवान अभिव्यजना का महत्व है। अत प्रस्तुत परिवर्त

१—हिन्दी साहित्य, २०वीं शताब्दी आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी · पृ० ९२

में निराला के काव्य मे हम अभिव्यजना पक्ष पर ही अधिक ध्यान देंगे। ऊपर हम कहा है कि प्रेष्य की प्रेरणा से अधिक महत्व हमारे लिए प्रेषण का है, इसका अर्थ य नही है कि प्रेष्य का काव्य मे महत्व ही नही है या कि कम महत्व है। तात्पर्य यही कि प्रेष्य तक पहुँचने के लिये माध्यम प्रेषण ही होता है। कवि की भावनाएँ शब्दो मुखर होकर एक भावमूर्ति धारण करती हैं। उसी भावमूर्ति के द्वारा वे हम तक पहुँचती है। यह भावमूर्ति या मूर्तिविधान कवि की कल्पना शक्ति पर निर्भर करत है। यह मूर्ति-विधान जहाँ कवि की कल्पना शक्ति का परिचय है वही वह उसकी भाव सत्ता का भी विश्लेषण है। भावनाओ का प्रतीको मे परिवर्तन यदि सच्चा है त कविता की शक्ति बढ जाती है। प्रतीको का अध्ययन उस प्रक्रिया का अध्ययन है ज कविता के केन्द्र तक पहुँचाती है।

यह हमारे प्रस्तुत परिवर्त की योजना है। इसी के साथ निराला के काव्य अध्ययन मे जो एक समस्या उठती है उसका भी हल कर लेना आवश्यक हो जाता है यह उनकी विविधता से उठती है, लेकिन यह उनके काव्य की शक्तिमत्ता की राह बाधक नही है। यहाँ बात केवल अध्ययन की राह की, की जा रही है। कविताओं मे कुछ समानतायें और असमानतायें होती हैं। निराला की कुछ कवितायें एक वर्ग हैं तो दूसरी कुछ दूसरे वर्ग की। कुछ तत्व किन्ही कविताओ मे समान रूप से मिल हैं और अन्य कुछ कविताओ मे कुछ दूसरे। समस्या यही है कि उनकी कविताओ ऐसे कितने वर्ग हो सकते हैं जिससे समानधर्मी कविताओ का एक साथ अध्ययन ह सके। निराला की सन् १६ से सन् ४० की रचनाओ में आत्मनिष्ठ वृत्तियों की औ सन् ४० से अब तक की रचनाओ मे सामाजिक प्रवृतियो की प्रधानता मानी गई है। हम इन दो वर्गो मे निराला के सम्पूर्ण काव्य का विभाजन नही कर सकते। इ विभाजन मे यह भ्रम होगा कि सन् ४० के बाद की रचनाओ को हम उनकी आत्मनिष्ठ से बाहर कर देगें और उससे पहिले की रचनाओ मे कदाचित् सामाजिक वृत्ति को विर मान लेगें,जो वस्तुत है नही। हमारा मानना है कि निराला की कवि चेतना मे वैयक्तिक सामाजिक और सर्वात्मक आयाम एक साथ मिलते हैं। यह एक ही काल मे भी देख जा सकता है। परिमल मे जहाँ 'स्मृति', 'स्वागत', 'ध्वनि', 'अधिवास' आदि वैयक्तिक चेतना और आत्मनिष्ठ वृत्ति मिलती है,वही 'विधवा', और 'भिक्षुक' मे सामाजि चेतना या वृत्ति भी है। और 'तुम और मैं' 'जागरण' 'भर देते हो', आदिमे उनकी सर्वात्म या दार्शनिक कवि की चेतना का स्फुरण भी हुआ है। आचार्य वाजपेयी जी ने उनकी रचनाओ की तीन श्रेणियाँ की हैं। पहली दार्शनिकता प्रधान या बौद्धिक, दूसरी विशुद्ध प्रगीत और तीसरी अलकारिकता प्रधान।[२] चौथी हम उनकी व्यग्य-विनोदवृत्ति प्रधान कविताओ की कर सकते हैं। उनकी कविताओ का एक वर्गीकरण और हो सकता है।

१—अवन्तिका · अगस्त १९५४, जा कीवल्लभ शास्त्री

२—२० वीं शताब्दी —आचार्य वाजपेयी . पृ० १४४

निराला के विकास को तीन चरणो मे भी आलेखित किया गया है।[1] उनका पहला चरण मुक्त-छन्दो का है, दूसरा छन्दोबद्ध सगीतात्मक सृष्टि का और तीसरा विशुद्ध गीत रचना का। इस विकास को हम अपनी सुविधा के लिये कुछ और छोटे वाक्यो मे बांट सकते हैं। निराला का सबसे पहिला चरण सन् १६ से सन् २८ तक का है। जिसे मुक्त-छन्दो का चरण कहा गया है। दूसरा युग गीत रचना का है (सन् २८ से ३५ तक) जो छन्दोबद्ध सगीतात्मक सृष्टि का चरण कहलाता है। तीसरा सन् ३५ से ४२ तक की रचनाओं का है जिसे उनकी वृहत्तर रचनाओ के आधार पर हम अलकारिक-प्रधान कह सकते हैं। चौथे चरण मे उनकी व्यग्यात्मक रचनाओ का प्रवेश होता है जिसमे उनके विभिन्न प्रयोग भी अन्तर्भावित हैं। पाचवा और अन्तिम युग उनकी अन्तर्मुखता का युग कहा जाता है। इसे हम गीतो के आधार पर गीत-सृष्टि के वर्ग में ही सम्मिलत करते हैं। इस प्रकार हम उनकी समस्त रचनाओं के विकास-क्रम को निम्नलिखित वर्गों मे बांट सकते हैं—

१—मुक्त छन्द और परिमल
२—गीत-सृष्टि (गीतिका, अर्चना, आराधना, और गीत गुज)
३—वृहत्तर रचनायें (अनामिका और तुलसीदास)
४—प्रगति और प्रयोग (कुकुरमुत्ता, वेला, नये पत्त और अणिमा)

१—२० वीं शताब्दी : आचार्य वाजपेयी : पृ० १४४

परिवर्त—चार

मुक्त-छन्द और परिमल

१ स्वच्छन्द छन्द
२ छन्दोबद्ध रचनायें (सम मात्रिक सात्यानुप्रास)
३ विषम मात्रिक सात्यानुप्रास

मुक्त छन्द और परिमल

परिमल का प्रकाशन हिन्दी कविता की एक ऐतिहासिक घटना है। जिस जीवन्त भाषा-शैली एव भाव-विस्तार का सधान तथा निर्माण वह कर रही थी उसकी प्रथम प्रतिनिधि रचना परिमल है। समीक्षको ने "पल्लव" से छायावादी अभ्युत्थान का आरम्भ माना है, लेकिन पल्लव की भूमिका कल्पनाधिक्य की है। यह सही है कि वह हिन्दी के लिये नवीन वस्तु थी, लेकिन काव्य मे जिन विविध क्रान्तियो का समस्थापन छायावाद करता है उसका प्रतिनिधित्व पल्लव से नही होता। उसका श्रेय तो परिमल को ही देना चाहिए। इसका कारण यही है कि भाव, भाषा और छन्द के रूप मे काव्य के अन्तरग और वाह्याग मे उसने क्राति उपस्थित की थी। 'आसू' मे भी क्रान्ति के वे प्रक्षेप नही मिलते। यह भी परिमल की विषय व्यापकता, विविधता और नवीनतम भाव-भूमियो के साथ रूप-गत विशेषताओ की तुलना मे प्रतिनिधित्व की अधिकारी नही है। परिमल का कवि प्रेम और प्रकृति, सौन्दर्य और वेदना के साथ ही क्रान्ति और विद्रोह का भी कवि है, जो न केवल भाव और भाषा मे, अपितु छन्दो मे भी क्रान्ति उपस्थित करता है। निराला और परिमल का महत्व मुक्त-छन्द के साथ मुक्त-भावो का भी है। "हिन्दी के उद्यान मे अभी प्रभातकाल की ही स्वर्णच्छटा फैली थी" और परिमल का प्रवेश हुआ, उसके विषय मे उल्लेखनीय बात यह है कि निराला की साधना मुक्ति परक है जो भाव के साथ छन्दो की भी है। यह मुक्त स्वभाव वैदिक परम्परा से सम्बद्ध किया गया है। छन्दो मे जहाँ परम्परागत शैलियो से मुक्ति के पुरोधा निराला बने थे, वही वे परम्परागत भावो से मुक्ति के भी पुरस्कर्ता हैं। अपेक्षाकृत अधिक महत्व उनकी छन्दोमुक्ति साधना को मिला है, अत हम उनकी छन्दोमुक्ति की कविताओ से परिमल का अध्ययन आरम्भ करते हैं।

[१]

मुक्त छन्दो मे सर्व प्रथम रचना 'जुही की कली' है।[1] यह निराला के काव्य मे एक ऐतिहासिक महत्व की अधिकारिणी है। सरस्वती से लौटी, मतवाला की १८ वी सख्या मे प्रकाशित इस रचना का अपना एक इतिहास है। इसमे मुक्त प्रेम की पूजा के साथ प्रकृत सौन्दर्य की आराधना है। कविता का आधार प्रकृति है और उसके साथ

१—परिमल · पृ० १६१

रागात्मक सम्वन्ध की विवृत्ति यहाँ हुई है। एक आवेगपूर्ण सौन्दर्य का प्रकाशन उसकी स्वस्थ एव प्रकृत प्रवाह-प्रणय की निश्चल अभिव्यक्ति के साथ सूक्ष्म अकन की कला मे यह कविता अप्रतिम है। इसकी प्रेरणा के विषय मे निराला का कथन है कि वह महिषादल मे अर्द्धरात्रि को श्मशान के अवसर पर लिखी गई थी।[1] इस कविता की विशेषता और कला खण्ड रूप मे न होकर सम्पूर्ण रूप में है, अत उसकी सौन्दर्यानुभूति के लिए उसके पूर्ण मूर्त (Image) को ग्रहण करना होगा। जहाँ तक कविता की प्रेरणा का प्रश्न है वह किसी बीती स्मृति या यौवन की उमग का ही परिणाम प्रतीत होती है। उच्छल यौवन की सौन्दर्य-वृत्ति का यह प्रकट परिणाम है जो श्मशान मे भी प्रेम और सौन्दर्य की असाधारण कल्पना करती है। इस प्रकृत सौन्दर्य की कल्पना वन से होती है, जहाँ कृत्रिमता का प्रवेश ही नही है। पत्राक मे दृग बन्द किए सोती हुई नायिका का चित्र यह है, क्योकि कली के दल वन्द हैं। तनु अमल-कोमल है, नायिका तरुणी है, दल वन्द है, क्योंकि सोने का भाव दिया जा रहा है। उसके सुहाग भरी स्नेह-स्वप्न-मग्न विशेषणों से प्रोषित-पतिका नायिका का चित्र नहीं उभरता जैसी कि कल्पना की गई है।[2] प्रोषित-पतिका मूर्त प्रोषित-पतिका है और विरह की उसासे लेना उसके लिये आवश्यक सा हो जाता है।[3] लेकिन जुही की कली सोई हुई है। वह स्नेह के स्वप्न मे मग्न भी है। आगत-पतिका उसे हम कुछ अशो मे कह सकते हैं। मलयानिल को ही विरही कहना अधिक उपयुक्त है, क्योकि कविता के कथित आध्यात्मिक प्रसग मे भी इसकी सगति बैठती है। यह आत्मा की सुप्ति के बाद जागरण की अवस्था की परिकल्पना कही गई है। अत आत्मा मे विरह की स्थिति यहाँ नही है। वह सोई है। विरह का उसे भान नही। जागरण की अवस्था प्रिय के कारण (Initiative) पर ही आती है। वासन्ती निशा मे प्रेम के उदय की सर्वोत्कृष्ट अवस्था में मलयानिल विरह अनुभव करता है और एक के वाद दूसरी स्मृतियाँ क्षण मे ही उसे हो आती है। स्मृतियाँ एकाधिक हैं, अत तीन बन्दो मे उनकी विवृत्ति हुई है। यह स्मृति उसे क्यो आई ? इसका कारण कदाचित् वैसी ही चांदनी रात का वासन्ती वातावरण है। इस स्मृति से वह उद्दीप्त होता है। विकलता अनुभव करता है और इसी विकल अवस्था मे उसकी गति तीव्र हो जाती है। इस तीव्र गति की विवृत्ति "उपवन-सर-सरित गहन-गिरि-कानन, कुञ्जलता-पुजो को पान कर" से होती है। यह क्षिप्र गति का व्यजक शब्द चयन-काव्य मे ध्वनि का प्रतिष्ठाता है। मलयानिल के पहुँचने पर कली सोती थी। वह प्रिय आगमन कैसे जानती ? यहाँ पुन यह प्रमाणित होता है कि नायिका विरह से विधुरा नही थी। विरही और प्रोषित-पतिका प्रिय आगमन पर सोती रहे और ना जागे तो उसे विरहणी नही कहना चाहिये।

१—"मेरी पहली रचना" लखनऊ रेडियो से प्रसारित एक वार्ता
२—क्रान्तिकारी कवि निराला वच्चनसिंह पृ० ३२
३—रूपक रहस्य श्यामसुन्दरदास पृ० ११०

नायक ने कपोल चूमे, तब भी वह नही जागती, क्षमा नही माँगती · वह प्रगाढ निद्रा में मग्न है। कहा जा सकता है कि आत्मा भी आध्यात्मिक सस्पर्श के प्रथम स्फुरण में माया-निद्रा मे ही मग्न रहती है। निद्रा में मग्न कली पर नायक ने झोको की झडियाँ लगा दी और सुन्दर सुकुमार देह झकझोर गई। गोरे कपोल मसल दिये गये तब कहीं नायिका चौंकी और जागी। 'चकित चितवन चारों ओर फेर' मे जागृति के बाद एक नये भाव का वर्णन है—नम्र-मुखी झुकी हुई कली मे लज्जित नायिका के क्षमा माँगने का भाव। कविता में सुप्ति के बाद जागरण का भाव प्रकाशित हुआ है, ऐसा कहा गया है और कली तथा मलयानिल मे जहाँ प्रकृति के एक लघु क्षण का चित्र है वही लौकिक-शृ गार मे एक स्वस्थ प्रेम-क्रीडा की अभिव्यजना भी। साथ ही माया में फँसी हुई सुषुप्त आत्मा का परमात्मा साक्षात्कार का आनन्द भी वर्णित है। यह पूर्ण मुक्ति का चित्र है और निराला के छन्दो मे "तमसो मा ज्योतिर्गमय" की काव्य में उतरी हुई तस्वीर। सुप्ति से तात्पर्य तम का है और प्रिय के साक्षात्कार से ज्योति का।

कविता मुक्त छन्द मे एक कल्पना विशिष्ट रचना है। प्रेम की समयातीत अनन्त एक परिकल्पना कली को वर्ष भर पत्राक मे रखने और प्रतिवर्ष उसके खिलने तथा पवन से मिलने से साकार होती है। यह स्वस्थ और स्थायी प्रेम की कल्पना है जिसकी उत्कट अनुभूति का प्रकृति के माध्यम से कला मे शृ गार हुआ है। भाव और भाषा की मौलिकता के साथ यह बीती परम्परा की स्थूल दृष्टि के प्रति सूक्ष्मता का विद्रोही भी प्रमाणित करती है। यह हिन्दी कविता मे मुक्त-स्वर का पहला राग था जो सन् १६१६ में ही गाया गया। जब कि छायावाद का ऐतिहासिक आरम्भ ही सन् २० से माना जाता है। इस सूक्ष्मता के बाद भी कविता शृ गार का वह रस और भाव देती है जो रीतिकालीन किसी भी शृ गार-परक रचना से सम्भव नही है। प्राकृतिक उपादानो से मानव की रागात्मक अभिव्यक्ति का सुन्दर और सर्वांग यह चित्र है। उसकी प्रेरणा ज्ञातप्रियतम भले ही हो लेकिन वह अज्ञात प्रियतम के प्रति भी सहजता से आरोपित हो सकती है। वहाँ आत्मा के जगने और आनन्द प्राप्त करने का सकेत भी सम्भव है। इसकी भाव-भूमि पूर्ण तृप्ति और स्वस्य व्यजना की है। 'नाईटिंगल' और 'स्काईलार्क' में जहाँ कल्पना, कवि के राग-विराग से अधिक बँध गई है वहाँ 'जुही की कली' मे एक कलाकार की तटस्थता भी है। शृ गार की अन्तिम सीमा मे भी अभिव्यजना में सयम नही छूटा है। कविता के मूर्त सौन्दर्य के साथ ही उसकी प्रतीकात्मकता भी दर्शनीय है। कली की सुप्ति से लेकर जागरण और मिलन की वर्णित स्थितियो मे आत्मा की रहस्यानुभूति-अवस्था का अन्तर्भाव हो सकता है। इस के साथ ही प्रेम-क्रीडा का मूर्त रूप भी नायक की क्रियाएँ अभिव्यक्त करती हैं। कविता की अन्तिम परिणति में एक आत्म-तल्लीनता का भाव है। नायिका की समस्त क्रियाओ का कली पर आरोप कल्पना-शक्ति और मानवीय-करण का सफल उदाहरण है। वातावरण की सृष्टि और उसके प्रभावोत्पन्न भावो की भी व्यजना सशक्त है। इसी

के बाद एक शृ गारिक रचना "जाग्रति मे सुप्त थी"[1] है। जुही की कली के विपरीत यह चित्र नागरी नायिका का है। वातावरण भी प्रभात का है, जन-जागरण और अरुण-किरणो का है। सुषुप्ति का भाव भी यहाँ है और स्नेह-स्वप्न-मग्न के स्थान पर स्वप्न विहगो के डैनो को खोलकर उडते हैं। सरोवर मे लहर के समान ही नायिका की वाणी उसके अधरो मे समा गई है। सुरा-स्वर से तात्पर्य यहाँ नायिका के अधरो पर सुरापान के चिन्ह का नही है,[2] वरन् स्वर को सुरा की मधुरता के तुल्य बताया गया है। यहाँ भी जागरण है, लेकिन जुही की कली के विपरीत यह जागरण आनन्दप्रद न होकर दुखद है। स्वप्न आनन्द का प्रतीक है और स्वप्न भग होते हैं। प्रभातकालीन स्वप्नो के विखरने का यह चित्र है और पराअर्थ मे भी इसकी सगति हो सकती है, यदि जागरण को भौतिक चेतना से उत्पन्न क्लान्ति और स्वप्न को आनन्द का पर्याय मान लिया जाय। प्रभात के साथ वाह्य चेतना भी लौट जाती है। इसके पहिले मन्द-मृदु-हास और प्रगल्भ-प्रिय-प्रणय-निवेदन की स्थिति सुहागभरी (आनन्द की) है, जो आत्मा के ब्रह्म सुख का भी पर्याय हो सकती है। यह जीवात्मा की ब्रह्मलीनता की दशा और उसकी ससारोन्मुखता का सकेत हो सकता है। लेकिन मुझे कविता का पहला परिवेश ही अधिक प्रवाहपूर्ण और भावोत्तेजक लगता है। तत्कालीन अवस्था मे कविता को आध्यात्मिक अर्थ देने की एक प्रथा सी चल गई थी, लेकिन उसका प्रकृत अर्थ भी कम महत्वपूर्ण नही है, वरन् मानना तो यही चाहिये कि वही शुद्ध काव्य है। निद्रित सौन्दर्य के सूक्ष्म अकन मे कला और स्वप्नो को विहग के उडते हुए पख वताने मे कल्पना की शक्ति का प्रमाण है। शेफालिका[3] भी शृ गारिक वर्णन मे स्वस्थ-यौवन और तटस्थ दृष्टि का परिचय देती है। वह भी जुही की कली की भाँति पल्लव-पर्यंक पर सो रही है और मुद्रित कली के रूप मे कन्चुकी के वन्ध, यौवन का प्रकृत उभार खोल देता है। गगन के शिशिर-विन्दु चुम्बन कहे गये हैं, जो व्याकुल विकसित लालसी कपोलो पर झरते हैं, क्योकि वे मूक-आह्वान से भरे हैं। शिशिर विन्दुओ के झरने की अनिवार्यता, लालसी कपोलो के कारण है। भाव और मूर्ति-विधान का सम्वन्ध यहाँ दर्शनीय है। यह सूक्ष्म रूपक एक दार्शनिक तटस्थ वृति का भी परिचायक है। आशा की तृष्णा की प्यास एक रात मे भर जाती है और शेफाली झर जाती है। उसके बाद तो शोक-दुख जर्जर इस नश्वर ससार की क्षुद्र सीमा के पार का अमर विराम प्रेम है। यदि रहस्यात्मक अर्थ की अपेक्षा ही हो तो इसका सकेत माया-ग्रस्त (कन्चुकी वन्द और पल्लव पर्यंक पर सोती शेफाली) जीवात्मा के सासारिक वधन प्राकृतिक विकास से ही टूट जाते हैं और शिशिर के विन्दु-चुम्वन की तरह परमात्मा का स्पर्श होता है। और नक्षत्र दीपित प्रकृति के कक्ष में नश्वर ससार की सीमायें तिरोहित हो जाती हैं। अमर विराम

१—परिमल पृ० १९४
२—निराला डाक्टर रामविलास शर्मा पृ० ५७
३—परिमल पृ० १९६

के सप्तम सोपान की प्राप्ति होती है। शेफाली की ही तरह अमर धाम प्राप्त होता है अर्थात आत्मा सासारिक बन्धनो को छोडकर परम सत्ता को प्राप्त होती है और सासारिक-तृष्णा एक जीवन मे समाप्त हो जाती है। आवश्यकता प्राकृतिक विकास की ही है।

'जागो फिर एक बार'[1] मे मुक्त आत्मा के स्वर का ऊर्ज उद्घोष मिलता है। निराला मुक्त छन्द में उद्बोधन के गीत गाते हैं। गीता के कर्मयोग या वेदान्त के पौरुष कर्तव्य का आख्यान कविता करती है। प्रथम भाग मे प्राकृतिक उपादानो से से प्रेरित जागरण का गीत है। यहाँ आकाश के तारे भी जाग्रत का स्वर गाते हैं और प्रात काल की अरुण तरुण किरण भी जागृति के द्वार खोलती है। अलियो का गुञ्जार जब बन्द हो रहा है (प्रात होने पर) तब भारतवासी कौन सी मधु गलियो की मधु-चर्या मे लिप्त हैं—भारतीयो की चेतना पर यह एक बडी चोट के रूप मे है। प्रभात ही जागृति का गीत नही गाता, वरन् शाम को ढले नव चन्द्र को देखकर यामिनी-गधा भी जगती है और चकोर प्रतीक्षा रत् होता है। रात्रि भी जागृति की प्रेरणा देती है क्योंकि तभी कलियो मे नवीन यौवन का सचार होता है। इसके पश्चात्—

"सहृदय समीर जैसे
पोछो प्रिय, नयन-नीर
शयन-शिथिल-बाहें
भर स्वप्निल आवेश मे
आतुर उर वसन-मुक्त कर दो
सब सुप्ति सुखोन्माद हो,
छूट-छूट अलस
फैल जाने दो पीठ पर
कल्पना से कोमल
ऋजु कुटिल प्रसार-गामी केश-गुच्छ।"

यह रूपक भी एक दार्शनिक तटस्थता का परिचायक है जिसमे शयन-शिथिल बाहें स्वप्निल आवेश मे भर जाती हैं, लेकिन सयम नही छूटता। उर के आतुर वसन-मुक्त होने मे माया के आवरण हटने की व्यजना हो सकती है। निराला की रहस्यात्मकता छूटी नहीं है। सुप्ति को सुखोन्माद कहने मे वही 'जागृति मे सुप्ति थी' वाली भावनाओं का अनुवर्तन हुआ है। बुद्धि मे बुद्धि, मन मे मन और जी में जी की एकानुभूति उसी आत्म-तल्लीनता की अवस्था है। इसके पश्चात् पुन प्रात मे क्षण-क्षण परिवर्तित प्रकृति वेश के आधार पर परिवर्तन की वाञ्छा जाग्रत करने का उपक्रम है। परिवर्तन और समय के शीघ्रगामी चक्र का 'गया दिन, आई रात, गई रात, खुला दिन मे' प्रकाशन होता है। इस प्रच्छन्न सकेतात्मक पद्धति पर जागृति का गीत गाकर कवि प्रयत्क्ष

१—मतवाला . वर्ष ३ अ क २२, ६ जनवरी १९२६ (परिमल पृ० १९८ से २०५)

भावोत्तेजन और वीररसात्मक उदात्त काव्य का सृजन करता है। यहाँ वीरता की बीती स्मृतियो का उल्लेख कर भावोद्दीपन किया गया है और "शेरो की माँद मे आया है आज स्यार" से भावो की उत्तेजना तीव्र होती है। यह कार्य अपनी चरम सीमा पर तब पहुँचता है जब सिह की गोद से शिशु छीनने का उल्लेख कर मेष-माता की दयनीय अवस्था पर एक सहानुभूतिपूर्ण तिरस्कार भी व्यक्त किया गया है। यहाँ मुक्त आत्मा की बाधाविहीनता का उल्लेख कर वेदान्तिक आत्मवाद की व्याख्या हुई है। कविता मे प्रवचन-पद्धति के स्थान पर हम उसे उद्बोधन कहना अधिक पसन्द करेंगे। कविता के पहले भाग मे प्राकृतिक सौन्दर्य के लघु चित्रो से सम्पूर्ण विश्व मे जागृति की प्रेरणा का आभास दिया गया है। यह प्रकृति के प्रत्येक परिवेश मे उद्दाम मुक्ति की वासना को अभिव्यक्त करता है। दूसरे भाग मे विभिन्न ऐतिहासिक परि-पार्श्वों और सास्कृतिक उपलब्धियो का उल्लेख कर वीरत्व की व्यजना की गई है। जहाँ प्रथम भाग मे आत्मा की मुक्ति का स्वर है वहा दूसरे मे लौकिक अर्थ मे भारत की स्वतन्त्रता का उद्घोष। आध्यात्मिक सकेतो के लिए प्राकृतिक और लौकिक शृ गार के प्रतीक आए हैं। राष्ट्र-उद्बोधन के लिये सिंह और गोविन्द सिंह वीरत्व को उत्तेजित करते हैं। पहली कविता मे सौन्दर्य-अकन है तो दूसरी मे वीररसोत्तेजन। यह दूसरी कविता हिन्दू-जागरण की प्रथम अँगड़ाई को भी व्यक्त करती है। प्रसाद की 'बीती विभावरी जाग री' की तुलना मे प्रथम कविता का सौन्दर्य-अकन अधिक सफल और जागृति का स्वर अधिक प्रेरक है। प्रसाद मे उषा नागरी पनघट में ताराघट डुबोती है, खग-कुल, कुल-कुल बोलता है, और लतिका भी मधु मुकुल की गागरी भर लाती है। इससे जागरण के बाद भी एक मादक शृ गार का रस उत्पन्न होता है। यहाँ इसी सखी या नागरी नायिका को जाग्रत करने का उपक्रम है, जब कि निराला मे आत्मा के जागरण का दार्शनिक आख्यान है। जहा तक विशुद्ध सौन्दर्य को मूर्त करने का प्रश्न है प्रसाद की कविता भी कम सफल नही है, लेकिन जागरण के जिस भाव को प्रेषित किया जा रहा है वह निराला मे अधिक सफल है। (द्वितीय कविता मे 'जेगे उठ हीनवल'[2] की सी विद्रोह भावना का उद्रेक है और उनकी 'चल चल' की सी सुप्त भारत को पुनर्जाग्रत करने की सन्देश भावना भी। जहाँ नजरूल का जागरण और क्रान्ति का भाव उद्धत विद्रोह का हृत्स्पन्दन है, वहा निराला का दार्शनिक, सयत। नजरूल भावुकता पर आश्रित है, निराला तर्क और दर्शन पर भी।)

'कवि'[3] मे निराला ने कवि-कर्म के अख्यान पर उसकी प्रशस्ति अंकित की है। यह कविता उनकी काव्य दृष्टि समझने के लिये भी महत्वपूर्ण मानी जा सकती है। प्रकृति के खुले प्रागण मे कवि-कर्म का उदय होता है। कवि निर्मम ससार के

१—लहर प्रसाद पृ० १६

२—नजरूल इस्लाम

३—परिमल पृ० २०६

सहस्त्रो वार झेलकर भी जीवन सचार करता है। कवि के लिये प्रकृति प्रेम और समवेदना की आवश्यकता का यह वर्णन है। उसका कार्य नवजीवन को शक्ति देना है। कविता की सगति ब्रह्म के अर्थ मे भी वैठ सकती है। भारतीय काव्यशास्त्र मे कवि को यो भी ब्रह्म कहा गया है। तव कवि की जितनी विशेषतायें और प्रशस्तियाँ हैं वे ब्रह्म की हो जायेंगी। कविता के पूर्वार्द्ध मे जिस विस्तृत पट का उपयोग है, मध्य मे जड-चेतन की जो क्रियायें हैं और परिणति मे जो नश्वर को अनिश्वर करने को उल्लेख है, वह ब्रह्म का भी हो सकता है। "स्मृति-चुम्बन"[1] अपनी भाव-तीव्रता मे वर्डसवर्थ की Ode on the intimations of Immortality के निकट रखी जा सकती है। चुम्बन की स्मृति से विकल वेदना-दीप्ति भावो का प्रस्फुटन यहा हुआ है। दो स्मृतिया यहाँ आलेखित हैं—एक शैशव सुलभ कल्पना का शृ गार करती है। वह जिस वेदना को व्यक्त करती है वह यो है—

जीवन के सारथी ने
पारकर रेखाएँ वालपन के मार्ग की
रोका रथ एकाएक यौवन के कानन में।
गति भी वह कितनी धीर! (परिमल पृ०२१३)।

दूसरी स्मृति यौवन की है—मिलन के क्षणो की है। इन मे चुम्बन से जीवन का प्याला भर गया था। आज जव वह खाली हो गया है, स्मृतियो से फिर भर दिया जायगा। इसे कवि का आशावाद कह सकते हैं। कविता में एक दो स्थलो पर पारलौकिक अर्थ की भी व्यजना हुई है, जैसे "देखा एक अपर लोक" आदि।

महाराज शिवाजी का पत्र[2] "जागो फिर एक वार" की दूसरी कविता की परम्परा मे मुक्त छन्द प्रवाह से उद्दीप वीररस की राष्ट्रीय भावनाओ की कविता है। यह भी हिन्दू-जागरण की पृष्ठभूमि पर सास्कृतिक उत्थान का अस्थान लकर चली है। और पत्र में अभिव्यक्त भावनाओ मे स्वातत्र्य के जो स्वर हैं वे तत्कालीन भाव धारा को पोपित करते हैं। कविता मे ओज का सयोजन ऐतिहासिक घटनाओ के माध्यम से हुआ है। इसे भूपण-काव्य की परम्परा मे माना गया है। लेकिन शिवाजी की राष्ट्रीयता मे हिन्दुत्व का जागरण अवश्य है, पर हिन्दुत्व से अधिक वह स्वातन्त्र्य और मुक्ति का स्वर है और अन्तिम परिणति मे शिवाजी की राष्ट्रीय चेतना आधुनिक परिवेश की अधिक लगती है। 'जितने विचार आज'—स्वतत्रता की भावोत्तेजना के लिए हृदय पर सीधी चोट करने के लिये यहाँ धिक्कार और भर्त्सना का उपयोग भी किया गया है। समाज के पतित चित्र और औरगजेव के अत्याचारो की स्मृति दिलाई गई है जो उद्दीपन-कार्य करती है।

'पचवटी प्रसंग' गीति नाट्य कहा गया है। अग्रेजी मे इस प्रकार की रचना

१—परिमल पृ० २११
२—मतवाला वर्ष ३ अक ४१, ४३, ४६ मे प्रकाशित
(परिमल पृ २१४-२३६)

को तथ्यपरक रचना के वर्ग मे विहित किया जाता है। गीतिनाट्य से तात्पर्य अभिनय के हेतु लिखे गये किसी पद्य नाटक से नहीं होता। वस्तुत वह भी पाठ्य ही होता है। अपने रूपगत निर्माण मे वह नाटकीय सिद्धान्तो का पालन अवश्य करता है। वह एक ऐसी कविता है जिसमे कवि चरित्र या चरित्रो का आकलन भी करता है। उसका काय आत्म परक रचनाओ की भाँति व्यक्तित्व या तथ्य का मात्र आकलन नही होता।[1] वस्तुत. वर्णनात्मक कविता मे एकाधिक चरित्रो का अस्यान होता है और यह रूप-सवाद के माध्यम से होता है। नाट्य कविता का नाट्य विशेषण केवल उन्ही रचनाओ से सम्बद्ध होना चाहिये जिनमे कवि की चरित्र-परिकल्पना वस्तु-प्रकिया मे महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अंग्रेजी मे ऐसी कृतियों को 'क्लोज़ेट-ड्रामा' के नाम से भी जाना जाता है। यह एक नाटक या नाट्य कविता का ऐसा रूप है जो अभिनय का उद्देश्य न लेकर केवल पठन का उद्देश्य रखता है। शेली का 'प्रोमीथीयस अनवाउन्ड' इसी प्रकार की रचनाओ मे विहित होता है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पचवटी-प्रसग का प्रणयन मात्र वस्तु या कथा का वर्णन लेकर नहीं चला है, उसमे राम लक्ष्मण सीता शूर्पणखा की कतिपय चारित्रिक विशेषताओ का उद्घाटन हुआ है। यह नाटकीय सवाद के रूप मे लिखी गई है। यह अलग बात है कि उसकी असफलताओ के कारण हम उसे सफल गीत-नाट्य नही कह सकते। अपनी भाव तीव्रता की अवस्था पर कवि-आत्मा कविता या गीत मे स्वय को अभिव्यक्त करती है (जो भावनाओं का सम्बन्ध स्थापन करती चलती है) वह भाव-तीव्रता इस गीति-नाट्य मे नही मिलती जिसके वशीभूत होकर कविता इसके अतिरिक्त और कोई अन्य माध्यम न चुन सके। रूप की यह अनिवार्यता यहाँ लक्षित नही है। अनेक स्थलो पर एकरसता भी है। निराला का यह नया प्रयोग अवश्य है और प्रयोग के रूप मे ही आशिक सफल भी। यह एक श्रेष्ठ काव्य अवश्य है और कुछ सीमा तक नाटकीय भी कहा जा सकता है। कविता के चौथे भाग मे राम के सवाद मे चरित्र और नाटकीयता से उठकर कवि एक उच्च भाव-भूमि पर पहुच जाता है, लेकिन उर्ध्व-गमन की यह प्रक्रिया किसी नाटकीय नियम से शासित नही है। राम वहा आश्रम के मुनि और प्रवचनकर्ता के रूप मे आते हैं—शूर्पणखा की अतृप्त लालसा के लक्ष्य बनकर नही। माना कि पौराणिक काल की कथा के चयन से ही हमारी कल्पना को अधिक विस्तार और व्यापकता मिल जाती है, लेकिन ऐसी किसी कल्पना का अवसर प्रसग मे नही आता। वह किसी वातावरण की सृष्टि नही करता, ना ही किसी नाटकीय स्थिति को गहन और प्रगाढ। अचानक ही प्रसग का चरम विकास भी उपस्थित हो जाता है। लेकिन कविता के दो प्रमुख आकर्षक स्थल हैं—एक शूर्पणखा का रूप-चित्रण और दूसरा राम के सवाद मे दार्शनिक विचारो की अभिव्यक्ति। एक स्थल पर जहाँ काव्य

1:—W H. Hudson · An Introduction to the study of Literature : P 111

की विकसित कला का प्रमाण है तो दूसरा दर्शन की व्याख्या मे भी काव्य की कला सफलता को प्रमाणित करता है। रूप-चित्रण और अन्तर्मन की अभिव्यक्तियाँ रवीन्द्र की उर्वशी की अपेक्षा प्रलय की छाया[1] की कमला की अधिक याद दिलाती हैं। शूर्पणखा के सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण प्रधान चित्र मे नारी के अन्तर्मन का रूप और यौवन-गर्व व्यक्त हुआ है। प्रलय की छाया की अपेक्षा क्षण-क्षण मे परिवर्तित भावनाओ के स्थान पर एक विशेष क्षण का आलेख यहा प्रमुख है। प्रलय की छाया मे पश्चिम की जलधि की लहरें कमला की नीली अलकावली के समान है और समीर मे मानो उसे छूकर ही समीर बनने की योग्यता है। उसकी क्रीडा के मधु अभिषेक मे अन्तरिक्ष की अनग बालाएं नतशिर होकर उसे देखती हैं और शूर्पणखा !—

देव-दानव ने मिल
मथकर समन्दर को निकाले थे चौदह रत्न,
सुनती हूँ—
रम्भा और रमा ये दो नारियाँ भी निकली थीं,
कहते लोग, सुन्दरी हैं,
किन्तु मुझे जान पडता—
सृष्टि भर की सुन्दर प्रकृति का सौन्दर्य भाग
खींचकर विधाता ने भरा है इस अंग में—
प्यार से—

और—

और यह भी सत्य है कि
ऐसी ललाम वामा चित्रित न होगी कभी,
रानी हूँ—
प्रकृति मेरी अनुचरी है,
प्रकृति की सारी सौन्दर्य राशि, लज्जा से
सिर झुका लेती जब देखती है मेरा रूप—
वायु के झकोरे से वन की लताएं सब
झुक जातीं,—नजर बचाती हैं।
अंचल से मानों हैं छिपाती मुख,
देख यह अनुपम स्वरूप मेरा !

'प्रलय की छाया' मे तो एक मात्र गुर्ज्जर महीप प्रणत है और यहाँ शूर्पणखा के चरणो मे बडे-बडे वीर कृपा की भिक्षा माँगते हैं।[2] यह कविता का प्रथम आकर्षण है। इस

१—लहर प्रसाद, पृ० ५६

२—द्रष्टव्य प्रलय की छाया—हस जनवरी १६३१, पचवटी प्रसग १६२३ मे ही प्रकाशित। यहा तुलना का आधार केवल स्थल की समानता है।

शूर्पणखाँ को भारतीय शास्त्रीय काव्य की सृष्टि भी माना गया है। कविता का द्वितीय आकर्षण निराला का दार्शनिक छायावाद, विराट सत्ता और ज्योति के रूप मे प्रसग की 'माता' मे अभिव्यक्त हुआ है।[1] जहाँ तक नाटकीयता का प्रश्न है किसी घटना-प्रवाह या सघर्ष के माध्यम से कथा का विकास नही होता। कथोपकथन और लम्बे सम्वाद ही कथा का रूप प्रस्तुत करते हैं। कथा की परिणति भी एक ही वाक्य मे समाप्त हो जाती है। अवश्य इसमे परम्परागत रूढियों को छोडकर एक नई भूमि पर उतरने का उपक्रम है।

मुक्त छन्दो मे बौद्धिकता या दार्शनिकता-प्रधान रचना 'जागरण'[2] दार्शनिक तत्व को काव्य की कला से सज्जित करती है। आचार्य वाजपेयी इसका स्थायी भाव उत्साह और इसे वीर रस की रचना मानते हैं।[3] दार्शनिक शुष्कता के बावजूद भी इसकी प्रभावशाली भा यजना इसका आकर्षण है। यह विशुद्ध वेदान्तिक अद्वैतवाद की काव्य मे आई व्याख्या है। उपनिषद् की चिन्ताधारा के बहुत्व से एकत्व की ओर उन्मुख होने और साख्य की त्रिगुणात्मक प्रकृति के आधार पर सृष्टि का विकास भी यहाँ विवृत है। कविता की अन्तिम पक्तियो से भारत की सास्कृतिक निधि उल्लेख करती है और जागरण का सकेत देती है, लेकिन यह भी दार्शनिक आवरण मे है। कवि की चेतना के सर्वात्मक सर्वोन्मुखी (Cosmo Centric) अश का स्फुरण यहाँ दर्शनीय है।

(२)

परिमल के प्रथम खड की रचनाओ को निराला ने सममात्रिक सान्त्यानुप्रास का नाम दिया है। इन्हे हम मुक्त छन्द के विपरीत छन्दोबद्ध रचनायें कह सकते हैं, जिनके विपयो के आकार पर निम्नलिखित वर्ग करते हैं।

प्रकृति-चित्र—इनमे पृष्ठ ४३ का गीत 'दूत, अलि, ऋतुपति के आए' वसत के आगमन का चित्र है। यहाँ उद्दीप्त क्रिया और भावों की अभिव्यक्ति हुई है। शृगार के वातावरण के बाद कविता साधारण ही ठहरती है। वासन्ती[4] मे पुन. वासन्ती प्रकृति का चित्र है। इस चित्र से भी उद्बोधन का स्वर प्रेरित होता है। पग-पग पर नव स्पन्दन भरने के उद्बोध के साथ प्रकृति के उपादानों में एक तादात्म्य की चेष्टा कवि की है। इसी प्रकार 'वसन्त समीर'[5] मे वसन्त का आह्वान किया गया है, लेकिन प्रकृति के सहारे जब कवि कहता है—

वहाँ कहाँ कोई अपना ? सब
सत्य-नीलिमा मे लयमान,

१—आचार्य वाजपेयी हिन्दी साहित्य २० वीं शताब्दी पृ० १४२
२—परिमल पृ० २६१
३—आचार्य वाजपेयी हिन्दी साहित्य वीसवीं शताब्दी पृ० १३८
४—परिमल पृ० ७६
५—वही पृ० ८६

केवल मैं, केवल मैं, केवल
मैं, केवल मैं, केवल ज्ञान।

तब एक दार्शनिक वृत्ति के साथ ही कवि के अहम् का परिचय मिलता है। 'मेरे वातायन के पथ से प्रखर सुनाना अपनी वीन' मे गीताजली के से भाव की अभिव्यक्ति हुई है। वसन्त के इस आगमन को कवि ने रहस्य सकेतो से भी सम्बद्ध किया है। कुल मिलाकर इन गीतो में जो नवीनता प्रतीत होती है वह यही कि वसन्त सम्बन्धी चली आती मान्यताओ और कवि प्रसिद्धियों तथा रूढ़ियों के स्थान पर निराला ने नयी अभिव्यक्तियाँ और सृष्टियाँ दी है। 'अलि घिर आए घन पावस के'[1] मे लोकगीतों की सी तीव्रता और सवेदना है। कविता के अन्तिम बन्द मे प्रोषित-पतिका का चित्र उभरता है। इसके पूर्व के चित्र उसकी पृष्ठभूमि को प्रगाढ करने के लिए हैं जिसमें नायिका की भावनायें उद्दीप होती हैं। लेकिन प्रकृति के उद्दीपक रूप का यहाँ अभाव ही मानना चाहिए। उद्दीपन का केवल सकेत भर है। एक अन्य गीत[2] मे प्रकृति की पृष्ठ-भूमि पर अभिसारिका का चित्र उभरता है। नायिका के हाव-भाव और चेष्टाओ का ही यहाँ अकन हुआ है। ये समस्त रचनायें साधारण कोटि की हैं और किसी विशेष उल्लेखनीय प्रवृत्ति का आभास इनमे नही होता है। कदाचित् इनका महत्व उनके काव्य विकास की दृष्टि से ही है।

जागरण गीत—'प्रभाती'[3] मे प्रात से जागृति की प्रेरणा दी गई है। कविता मे वासना के तीव्र आवेग के पश्चात् नवकिरणो से तिमिर जाल हटाने का उद्‌बोधन लिया गया है। वासना-प्रेयसी भी यहाँ जीवन के उपवन मे वहार की सूचना देती है। ज्योति सुरभि की धाराएँ बहती हैं और चतुर्दिक कर्मलीनता की स्थिति है, अत नवोदित सूर्य के साथ तरुण तरगो की जागृति की प्रभाती यह है। मुक्त भावो की साधना भी यहाँ है और इसे नवीन युग की प्रभाती के रूप मे कल्पित किया जाता है। मुद्रित दृग से तात्पर्य बद्धदृष्टि का हो सकता है जिसका सकेत रूढि या नियमबद्धता का सम्भव है। इसके विषय मे कहा भी गया है कि इसने निराला को इस युग के जागरण का सेहरा कमाया।[4] प्रथम प्रभात[5] मे भी प्रभाती की भावना का एक अन्य प्रक्षेप है। यहाँ प्रथम प्रभात-समीर अचानक अकित चुम्बन की सिहरन सा आता है लेकिन इससे अम्बर के छोर भी कँप जाते हैं। उषा का आगमन कोमल आघात करता है। घाटी और पर्वत उसके उच्छ्‌वास से भीग जाते हैं और कवि अपने द्वार खोल कर अपने मुख का किरणों का अधिकार पाता है। कोमल भावनायें भी यहाँ जगाने

१—परिमल : पृ०१०२
२—वही पृ०१०७
३—वही पृ०३८
४—महाप्राण निराला पृ०२१९

में सक्षम है। 'जागो'[1] मे कोमल भाव पर आश्रित वही जागरण का स्वर है। यह तृप्ति के पश्चात् का है। पहिले चरण में निराशा का भाव आता है। यौवन के मरुस्थल मे प्रथम ही आशा की अस्थिर किरण झलकती हैं और वह एक तीव्र पिपासा बनती है। यह पिपासा सभवत सबमें आती है और वह सार्वभौम है जो अपने आकर्षण से सबको बांध लेती है। जीवन मे तृष्णा भी ऐसे ही आती है और मनुष्य उसकी तीव्र लालसा लिए बढता है, लेकिन तृष्णा बार-बार छल करती है, कभी तृप्ति नही देती। कवि का सकेत है कि तृष्णा पर विजय उसकी पूर्ण तृप्ति के पश्चात् ही पायी जा सकती है इसलिये कविता मे मरु के पश्चात् बाग और तालाब के चित्र आये हैं। निराला का कथन भी है कि इच्छाओ को पूरा करके ही उन पर विजय प्राप्त की जा सकती है। किसी इच्छा को बलपूर्वक दबाकर विजयी होना कठिन है। ज्ञानपूर्वक विजयी होना शाश्वत है।[2]

सम्बोधित-गीत—मे 'यमुना के प्रति, प्रिया के प्रति, तरगो के प्रति, जलद के प्रति,' और द्वितीय खड की 'प्रपात के प्रति' कविताएं विहित होंगी। सम्बोधि-गीतो को एल० विनयान ने सार्वभौम रुचि की वस्तु पर लिखी गई कविता कहा है।[3] सामान्यत ये ऐसे प्रगीत होते हैं जो प्रेरणात्मक और उदात्त कहे जा सकते हैं। इनका एक निश्चित लक्ष्य होता है, ये किसी उदात्त वस्तु से ही सम्बन्धित होते हैं।[4] इसमें विचारो की एक तार्किक सगति होती है और विस्तार तथा गहनता इनकी विशेपताएं होती हैं। यह एक प्रकार का काव्यात्मक सवाद भी माना जा सकता है। शेली की West wind कीट्स की Ode to Nightangle और वर्डसवर्थ की Ode on the intimations of Immortality अंग्रेजी की प्रसिद्ध सम्बोधि गीतियां हैं। कन्फ्यूशियस ने इन्हे मस्तिष्क को प्रेरित करने, निरीक्षण मे सहायता करने, व्यक्ति को सामाजिक बनाने के लिए हितकारी माना है।[5]

'यमुना के प्रति'[6] निराला की उन कविताओ मे से है जिनमें वे बुद्धि और भावना का रमणीय योग करने में समर्थ हुए हैं और कविताएँ-विशेप उज्जवल और निखरी हुई हैं—इनमे बुद्धितत्व भावना के साथ सन्निविष्ट होकर अधिकाश मे अपना स्वतन्त्र अस्तित्व छोडकर मिल गया है जिससे तल्लीन वातावरण बनकर काव्य वैभव का विशेप विकास हो सका है।[7] सास्कृतिक पीठिका पर अपनी बौद्धिकता द्वारा कल्पना के सयोग से विगत वैभव के चित्रो द्वारा एक नवीन परम्परा का सूत्रपात यह

१—परिमल पृ० ८७
२—निराला अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ६१
3—Shipley . D. W. L. T. P. 250
4—Gosse · English Odes Introduction P. XIII
5—Quoted in 1. A Richard's Practical Criticism P 292
६—परिमल पृ० ४५ से ६१
७—आचार्य वाजपेयी हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी

कविता करती है। उसकी अभिव्यक्ति प्रणाली की लाक्षणिकता और मूर्तिमत्ता काव्य परिवेश की नवीन वस्तु थी। जहाँ यमुना को देखकर बिहारी को व्रजनायिकाओं की वासनालिप्त क्रियायें याद आई थीं और जो यमुना रीतिकाल में घोर वासनात्मकता से भी लांछित हो गई थी, वहीं निराला में आकर एक उदात्त भाव स्तर की आधार वस्तु बन जाती है—वह अतीत के वैभव का प्रतीक बनती है। सम्भवत इसीलिए इसे कृष्णकाव्य की एक नई उद्भावना भी कहा गया है।[1] लेकिन यह कृष्णकाव्य की परम्परा का किसी भी रूप मे वहन नहीं करती और उसे कृष्णकाव्य में नई उद्भावना कहना भी इसकी मूल विशेषता को कदाचित ग्रहण करना न होगा। पचवटी प्रसग की ही भाँति यहाँ पौराणिक वस्तु को नवीन जीवन दिया गया है। कविता में अतीत की स्मृतियाँ कचोटती हैं। उस वैभव की तुलना वर्तमान से करने पर एक गहरा असन्तोष होता है। कविता मे कल्पना-विलास का आधिक्य है और अप्रस्तुत की योजना है। लेकिन यह कल्पना और अप्रस्तुत योजना वस्तु-सादृश्य के आधार पर हुई है और कविता मे भी वस्तु चयन के सन्दर्भ मे इसके लिये विशेष अवकाश है। यहाँ तो मुक्त होकर यमुना पर अपने भावो की अजली चढी है, अत एक-तानता या सुसम्बद्धता का प्रश्न नहीं उठता। वस्तुत ऐसी कविताओ का यही विशेष गुण होता है कि कवि अपने भावो का स्वतत्र प्रवाह अधिक स्वच्छन्दता से कर सकता है। यह कोई प्रबन्ध या तारतम्य को ध्यान मे रखकर नही लिखी जाती जो कि चढाव-उतार, आरोह-अवरोह या आदि-अन्त का प्रश्न उठे। विगत मुक्त-आनन्द की स्मृति मे कवि की आत्मविभोर अवस्था से जो विभिन्न भाव-धारायें प्रवाहित हुई हैं वे यमुना के सूत्र मे बँध गई हैं। सूक्ष्म सकेतात्मक सौन्दर्य के द्वारा चित्रो की सर्जना से एक अव्यक्त विषाद का प्रभाव कविता छोडती है। इसमें भावना को उत्तेजित करने की कला का मार्मिक उद्घाटन हुआ है। कविता के मादक चित्र भी करुणा के उद्दीपक बन जाते हैं। यह उसकी सकेतात्मकता का ही परिणाम है। एक असाधारण सौन्दर्य और रूपचित्रो की समायोजना हार्दिक भावो की सगति पर स्वाभाविक हुई है। पत की छाया की तुलना मे यह अधिक प्राकृतिक और उत्कृष्ट कला का उदाहरण है। साथ ही इस रचना से निराला का जो व्यक्तित्व प्रकाशित होता है वह निर्लिप्त और तटस्थ है। कविता के एकाधिक शृगारिक प्रसगो मे (जैसे गोपियो की प्रेम-क्रीडा आदि) में भी यह द्रष्टव्य है। इसका कारण यही है कि उच्छल भावावेग से बौद्धिक स्वास्थ्य की सगति है।

'प्रिया के प्रति'[2] का सबोध कदाचित स्वर्गीया पत्नी की ओर है। यह अधिक वैयक्तिक रचना इसीलिये कही जा सकती है, लेकिन फिर भी भावना-विलास वहाँ नही है। एक बौद्धिक प्रशाति का वातावरण सर्वत्र है। पत की 'भावी पत्नी के प्रति' मे यह नही मिलता वे अधिक अतिरेक पर पहुँचे हुए हैं। यह अन्तर कविता को वस्तु

१—महाप्राण निराला : गगाप्रसाद पाण्डेय : पृ० १६४
२—मतवाला, वर्ष ४ अंक २३ (परिमल पृ० ६४)

का अन्तर न होकर व्यक्तित्व का भी अन्तर है। इस क्षेत्र मे पन्त मे भावनाओ को निर्द्वन्द्व छोड देने की प्रवृत्ति है, लेकिन निराला उसमें बौद्धिक चेतना का सस्पर्श भी देते हैं और इसीलिए वे अधिक सूक्ष्म कला का अकन भी कर सकते हैं। एक रहस्यात्मक सकेत के साथ 'तरगों के प्रति'[1] का सम्बोध निराला की प्रकृति-वर्णन की उत्कृष्ट कविता है। प्रकृति मे रहस्यात्मकता का आभास प्रसाद की याद दिलाता है। तरगो के आवर्त-प्रवर्त के चित्रो में जहाँ लघु चित्रकला है, वहीं अनन्त, असीम और विराट-व्यापकता भी। चित्रो और भावनाओं की संगति मे ही कविता का प्रतीक विधान सफल है। और रहस्य के सकेत मे दर्शन का समायोजन। तरगो के छोटे बडे चित्रों से भावनाओ की व्यजना ही अधिक हुई है। जहाँ पत चित्रण के लिए भावनाओ की विरलता का ध्यान नही रखते वहाँ निराला मे भावनाओं की अप्रतिहत गति और गहनता का ध्यान चित्रण से अधिक रहता है। केवल निर्बन्ध कल्पना-विलास के स्थान पर इस चित्र में मानवीय सवेदना भी बनी रहती है और असीमता मे पर्यवसान के द्वारा उनकी दार्शनिक रुचि का प्रकटीकरण भी होता है। 'जलद के प्रति'[2] मे इन तीनो कविताओ की अपेक्षा एक साधारणता ही मिलती है। किसी भावोत्तेजन अथवा भाव-गहनता के स्थान पर केवल जलद को विवरण के द्वारा सम्वोध किया गया है। शब्दों की तोड-मरोड से एक ऐसी शुष्कता भी इसमें मिलती है जो कि किसी उदात्त चित्र का समस्थापन भी नहीं करती। यह कला इतिवृत्तात्मकता के अधिक निकट है। जलद के निर्माण मे भौतिक विज्ञान की प्रक्रिया अवश्य विवृत हुई है। किसी काव्यात्मक कल्पना का यहाँ अभाव है। भाषा भी भाव के अनुकूल साधारण है, लेकिन 'प्रपात के प्रति'[3] मे चित्र की मौलिकता है। अचल सृष्टि के चचल क्षुद्र प्रपात की अधकार और उज्जवल से क्रीडा को बुद्ध का साम्य व्यवहार कहना उपमा की पराकाष्ठा है। 'अजान की ओर इशारा करके चल देते हो' मे पुन एक दार्शनिक सकेत आरोपित किया जा सकता है। कविता की ध्वनि में दार्शनिक तथ्य भी मिलता है। उज्जवल प्रपात (हर्ष) का उत्स वन का गहन अंधकार (विषाद) है। गतिशील प्रपात का (चेतन का) उदगम जगम पर्वत (जड) से होता है और पत्थरो (पति का कोई दूत अवोध) से उसका सघर्ष जड और चेतन का सघर्ष माना जा सकता है। 'भर जाते हो उसके अन्तर मे तुम अपनी तान' का तात्पर्य चेतन का जड को भी चेतन कर जाने से हो सकता है। चेतना का विकास जड से माना भी गया है। स्मृति को सम्वोधित की गई कविता कल्पना-विशिष्ट है। उसे सतत द्रुत-गतिमय, अतीत के गान, अश्रुत भाषा की तान आदि कहने में उपमा की नवीनता और उच्चकोटि की कल्पना के अतिरिक्त किसी उल्लेखनीय विशेषता का उदघाटन नही हुआ है। अप्रस्तुत योजना के स्वच्छन्द प्रवाह मे भी किसी वस्तु सादृश्य

१—परिमल पृ० ८०
२—परिमल पृ० ८२
३—वही पृ० १६७

का प्रभाव है। स्मृति की कुछ कतिपय विशेषतायें ही काव्यात्मक अनुबन्ध मे बँधी है। इन सम्बोध गीतियो मे चित्र, भावना की सगति, कला का उत्कृष्ट शृ गार और दर्शन का वातावरण देखा जा सकता है। 'यमुना के प्रति' ने तो सन् २२ मे ही उत्कृष्ट कला का उदाहरण प्रस्तुत कर दिया था। 'प्रिया के प्रति' मे निराला का परिष्कृत और सयत, तटस्थ व्यक्तित्व देखा जा सकता है। 'तरगो के प्रति' और 'प्रपात के प्रति' उनकी दार्शनिक अभिरुचि के साथ ही दर्शन का काव्य मे उचित समस्थापन भी करती है।

दार्शनिक कवितायें—'तुम और मैं' चिन्तन प्रधान दार्शनिक कविता है और निराला के दर्शन काव्य मे इसका महत्वपूर्ण स्थान है। जागरण के समान ही इसमें कवि की चेतना उर्ध्व-स्तर की है और ब्रह्म व जीव के सम्बन्ध की विवृत्ति काव्यात्मक है। निराला अद्वैतवादी दार्शनिक हैं। वह कविता उनके इस रूप को अधिक काव्यात्मक-ढग से प्रस्तुत करती है। इसमे 'द्यौ रह पृथिवी त्वम सास्वम् अमोहमस्मि' की सी अभिव्यक्ति हुई है, जो वैदिक ऋषियो के मन्त्रो सी तप पूत भी है। इसमें निराला ज्ञान-मार्गी शाखा के साधक भी कहे गये हैं। भाव-कल्पना और अलकार के साथ बुद्धि-चिन्तन का ऐसा समन्वय निराला की ही देन है। 'तुम' ब्रह्म के लिये और 'मैं' जीवात्मा के लिये प्रयुक्त हुआ है। प्रकाश अर्थ मे, पहिली दृष्टि मे तुम और मैं का यह द्वैत भासित हो सकता है। लेकिन अन्तत कविता की परिणति और केन्द्र-भाव अद्वैतवाद ही है। अद्वैत-दर्शन मे ब्रह्म परमात्मा के अनुरूप ही आत्मा भी अनादि और अनन्त है। यही तुम और मैं ब्रह्म और जीवात्मा के सम्बन्ध को विवृत करने के लिये जितने प्रतीक विधान आये हैं, उनमे शाश्वत सम्बन्ध होने के साथ ही स्वय की अनन्तता भी प्रकाशित होती है। हिमालय और नदी, नभ और नीलिमा, के भासमान द्वैत के वावजूद भी उनका अद्वैत सम्बन्ध है। 'खेवा, शेष, पतनोन्मुख, वृत्ति, प्रार्थना, आध्यात्मफल,' और 'हमे जाना है जग के पार' आदि कविताओ मे जीवन की एक विपण्ण अस्थिरता अभिव्यक्त हुई है। 'मौन' मे विश्राम 'खेवा' मे एक अस्थिरता और 'प्रार्थना' मे प्रात समीरण से लघुजीवन मे किसी अज्ञात से छवि भरने की प्रार्थना की गई है। 'शेष' मे फिर अस्थिरता और निराशा के स्वर हैं—

सुमन भर न लिए,
सखि, वसन्त गया—

'पतनोन्मुख' के 'डूब रहा दिन मान'—और 'जलता यह जीवन असफल' मे भी विषाद की गहनता है। 'वृत्ति' मे यह भावना प्रगाढ हो जाती है "(मैं ही क्या सब ही तो ऐसे छले गए)" लेकिन इस निराशा और विषाद मे भी 'चिन्तायें, वाधाएँ, आती हैं तो आएँ' कहने की शक्ति कवि की है। 'आध्यात्मफल' मे—

'जब कडी मारें पडी, दिल हिल गया,
पर न कर चूँ भी कभी पाया यहाँ'

जीवन की कठोरता और पराजय का भाव है। 'हमें जाना है जग के पार' मे पलायन

की वृत्ति भी भासित होती है, लेकिन गीत की भावधारा मे जो अनिवार्यता की भावना है वह कुछ इह लोक के पार का ही सकेत देती है। इसकी तुलना प्रसाद के "ले चल वहाँ भुलावा देकर' से की जा सकती है। जिस प्रकार प्रसाद के इस गीत को पलायनवादी नही कहा जा सकता, वह जीवन के भौतिक धरातल से उठकर आदर्श और परजगत की विविक्षा है, वही इस गीत मे भी मिलती है। इसका आध्यात्मिक सकेत ही अधिक सगत प्रतीत होता है। 'निवेदन' मे प्रेम का चित्र है। यह मतवालों मे आवेदन शीर्षक से प्रकाशित हुई थी।[1] कविता की उल्लेखनीय विशेषता यही है कि शृङ्गारिक रचना होने पर भी स्खलन नही मिलता, अन्यथा भावो के आवेग के अतिरिक्त किसी कलात्मक सौष्ठव का दर्शन नही मिलता है। इसी के साथ ही 'मुक्ति', 'बदला', 'खोज' और 'उपहार', 'आदान-प्रदान', 'परलोक', 'पारस', 'नयन' आदि रचनाओ मे भावात्मकता के साथ चमत्कार की वृत्ति प्रधान है और इनका महत्व प्रारम्भिक रचनाओ के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है। 'माया' में तो एक सीमा तक इतिवृत्तात्मकता भी मिलती है। 'बदला' मे निराला का प्रेम और सौन्दर्य वाला रूप उभरता है। 'क्या दूँ' मे अवश्य एक ऐसी भावना है जो निराला की वैयक्तिक हो सकती है। उनकी साहित्य-साधना मे निरन्तर विरोध हुए थे, अत कवि अपने प्रयासों को विफल-सा मानने लगा हो तो कोई आश्चर्य नही।

(३)

दूसरे खड की रचनाओं को निराला ने विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास कहा है। इनमे भावना के प्रसार की निर्द्वन्द्व गति है। यहाँ भी उनकी कुछ कवितायें रहस्यात्मक सकेतो से भारान्वित हैं, कुछ मे जीवन की निरन्तर गति मे विभिन्न परिस्थितियो के चित्र हैं, कुछ भावात्मक कल्पना वैशिष्ट्य मे अप्रतिम हैं, कुछ मे कवि की सामाजिक चेतना का स्फुरण हुआ है और कुछ मे क्रान्ति के गीत गाये गये हैं। द्वितीय खड की पहली ही रचना 'भर देते हो' मे रहस्य सत्ता की कृपा का गुणानुवाद है। इसमे उनका रहस्यप्रिय उन्हे प्रेरित करता है। विक्षुब्ध हृदय मे करुणा की किरण प्रसारित कर उसे पुलकित करता है और उसका निरन्तर आगमन होता है। इसमे दुःखी विक्षुब्ध जीवन के पश्चात् रहस्य सत्ता के विश्वास पर नवीन जीवन प्रभात के प्रकाश प्राप्त करने की स्थिति का चित्रण हुआ है। कविता मे एक सम्बोधन का भाव देखा जा सकता है, लेकिन इस कविता मे आध्यात्मिक छाया का भान छूटता नहीं है। प्रकृति के व्यापक, अनावृत्त प्रागण में आकाश और पृथ्वी तक प्रसरित कविता ही है। यह उस पार बुलाने का निर्देश देती है। 'अजली' मे 'खोलो प्रियतम खोलो द्वार' की सी भावना को मूर्त किया गया है। उस आध्यात्म प्रिय के द्वार को सुहाग-शृङ्गार कहा गया है। द्वार खोलने की मनुहार से जो चित्र आता है उसमे रग की प्रगाढता ही अधिक है और उसे कुछ सीमा तक आत्मा का परमात्मा से निवेदन मान सकते हैं। यहाँ अपने अहम् को विगलित करके ही प्रियतम से द्वार खोलने का निवेदन हो सका है। अपनी यात्रा को कटक-

---

१—मतवाला . वर्ष ३ सख्या २८

मय और वीहड वताकर प्रियतम की सहानुभूति आकर्षित की गई है। तम छोड़कर प्रकाश की वांच्छा करने और तादाम्य प्राप्ति की भावमा भी साकेतित हुई है, लेकिन कवि इस द्वेष-विप-जर्जर संसार को नही भूला है। 'विफल वासना' मे भी लौकिक विप्रलम्भ का एक रहस्यात्मक और आध्यात्मिक सकेत है। यहाँ भी रुद्ध द्वार पर सर्वस्व अर्पण करने की भावना व्यक्त हुई है। 'विस्मृत विभोर' में भी अन्व-तम-जाल के कुटिल गति-जीवन मे फँसकर परमसत्ता के खोने की स्थिति का उल्लेख हुआ है। भौतिक जीवन के मायाजाल में फँसे निरन्तर दु ख और भव-वाधाओ से क्लान्त जीवन की प्रभु-शरण की ऐसी कल्पना हिन्दी के भवित साहित्य मे विरल नही है और निराला भक्ति की इसी परम्परा मे यहाँ विहित होते हैं, लेकिन यहाँ भक्ति का आलम्वन सगुण-सकारण न होकर निर्गुण निराकार है। 'स्वप्नस्मृति' मे भी एक अपर सकेत की ध्वनि मिलती है। टूट चुके स्वप्न की याद से लौकिक शृङ्गार अभिव्यक्त होता है और यही आध्यात्मिक सकेत की व्यजना भी है। 'सिर्फ एक उन्माद' अपने प्रकाशन के वाद ही विवाद की वस्तु वन गई थी। तत्कालीन 'मनोरमा' सम्पादक ने 'मतवाला' मे प्रकाशित इस रचना को लेकर हिन्दी की कविता की प्रगति की कटु आलोचना की थी। इस कविता की विशेपता यह है कि उन्माद सरीखे अज्ञेय भाव का भी सफलता से चित्रण हो पाया है। यह उन्माद उच्छृखल होता है (यौवन-सा) और शिशु-सा ही चचल, लेकिन ना तो इसमे यौवन का अनुराग है और न ऐसा कोई राग, जो जीवन भर गाया जा सके। उसमें विराग भी नही होता, आत्म-पीडा एक क्रीडा वन जाती है। उन्माद को इस व्यजना के लिए ये शब्द आये हैं—

निरलकार कवित्व अनर्गल
किसी महाकवि-कलित-कण्ठ से
झरता था जैसे अविराम कुसुम दल।"

किसी महाकवि के कण्ठ से अनर्गल कवित्व—ऐसा ही यह उन्माद है। न तो पहिले के विपय मे किसी को विश्वास हो सकता है ना ही दूसरा असदिग्ध है। प्रथम दृष्टि मे तो उपमा विपय को छोड़ती सी प्रतीत होगी, लेकिन सम्पूर्ण कविता का प्रेपण इस उपमा की उपयुक्तता और कला-परिष्कार का प्रमाण है। 'स्वागत' मे जीवन की कठिन साधना का स्वागत किया गया है। यह निराला के व्यक्तित्व पर वडी आसानी से आरोपित हो सकती है। इसी विघ्नो के जाल को पार करने और जटिल, अगम विस्तृत पथ पर विकराल कटक पार करने की कठिन साधना के पश्चात् कवि को वह आत्मविश्वास प्राप्त होता है, जो 'ध्वनि' की इन पक्तियो मे व्यक्त होता है—

'अभी न होगा मेरा अन्त।'

कवि की साधना निश्चित होती है और अपने ही रागो से दिगन्त को विकसित करने की उसकी लालमा मानो आज पूरी हो गई है। 'अधिवास' मे कवि को कदाचित विश्वास नहीं होता कि जहाँ गति रुकती है वहीं उसका अधिवास है। अपनी करुणा की अवस्थिति के कारण वह इस गति का अन्त नही समझ पाता। इसीलिये इस जीवन की गति (उसे दुखी मानव से सहानुभूति) है। कवि जानता है कि जब तक

वह माया मे फँसा हुआ है तव तक उसकी गति रुद्ध नही हो सकती। अतः कर्म-क्षेत्र मे रत रहकर सवेदना और सहानुभूति का प्रसार ही वह करेगा। इसे अद्वैतवाद को दी गई चुनौती नही माना जा सकता, क्योंकि अधिवास के छूटने पर, जो कवि को त्रास नही है, उसका कारण भी अद्वैतवादी धारणा ही है। यह ससार भी उसी ब्रह्म का प्रकाश और प्रक्षेप है, अत. इसमे कर्म करना भी अद्वैतवादी का कर्मयोग है। भावना के स्वच्छल प्रभाव और अधिवास के निर्णय मे वुद्धि का सयोग भी देखा जा सकता है। इसे विश्व-वाद की वौद्धिक व्याख्या भी कह सकते हैं। 'उसकी स्मृति' में भावनात्मक आवेग के साथ वीती प्रेम-क्रीडा का उदात्त भाव-चित्र है। कल्पना का मुक्त-प्रवाह है। प्रेम तथा सौन्दर्य सूक्ष्म वनते गये हैं और वे आत्मिक अवयव हो गये हैं। धारा मे भी उद्दाम यौवन का स्वतन्त्र प्रवाह है। मुक्त प्राणो के स्वर इस कविता मे हैं और प्रच्छन्न रूप से यह धारा क्रान्ति की धारा भी हो सकती है। वह जीवन की प्रवल उमग है। इसी खड मे प्रकृति के तीन सुन्दर और उदात्त चित्र आये हैं। 'सध्या सुन्दरी' मे सूक्ष्म रेखाओ से भी जो रूप वनता है वह अपूर्व है। प्रसाद के नैशचित्रों[1] से इसकी तुलना करने पर इसके सूक्ष्म रेखांकन का प्रमाण मिलता है। प्रकृति के उपकरण यहाँ मानवीय गति और भावो की सृष्टि करते हैं। सध्या के इस चित्र में छायावादी कविता के अनुरूप प्रकृति मे भी आत्म-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति देखी गई है। उसे अपनी भावना के अनुरूप प्रकृति चित्रण के कारण Pathetic Fallacy भी कह सकते हैं। सध्या पर नारीत्व का आरोप करके उसका मानवीकरण किया गया है। जड पदार्थों पर भावात्मक विशेषताओं का यह आरोप प्रत्येक श्रेष्ट प्राकृतिक चित्रण प्रधान कविताओ मे होता आया है। निराला के इस शब्द-चित्र मे पत की "कौन, तुम रूपसि कौन ?" से भावात्मक रगो के कारण अधिक सफलता है। पन्त की कविता मे जहाँ चित्रण प्रधान हो गया है, वहाँ निराला के चित्र भावनाओ की अवस्थिति भी, अप्रतिहत रही है। इसी के साथ वातावरण की सृष्टि भी सफल वन पडी है। चित्रण सूक्ष्म हैं, अत गभीर और नीरव वातावरण व्यजित हो सका है और अव्यक्त व्यक्त। इसी की तुलना मे महादेवी का रजनी का चित्र केवल अलकरण ठहरता है—'धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसत रजनी' जो कार्य निराला ने केवल "एकतारा" से पूरा कर दिया है वही महादेवी ने विस्तार से पूरा किया है। 'शरद पूर्णिमा की विदाई' मे जीवन के प्रति राग का भी प्रच्छन्न सकेत मिलता है। कल्पना मे अथवा या किंवा वाली शैली इतिवृत्तात्मकता की याद दिलाती है। शरद पूर्णिमा की विदाई, मानो जीवन की ही विदाई है। उसके डूवे हुए प्रकृति के के लघु चित्र उद्दीपन का भी कार्य करते हैं। 'वन कुसुमो की शैय्या' भी इसी प्रकार द्रष्टा के भाव से रजित एक सफल प्रकृति चित्र है।

परिमल का महत्व छायावादी काव्योत्थान मे इसलिए भी है कि कल्पना जगत में स्वच्छन्द प्रवाह और आत्मिक कविता के इस युग मे भी उसमे सामाजिक चेतना को

१—लहर : पृ० २५,४४

विस्मृत नहीं किया गया था। उस काल मे भी सामाजिक वृत्ति की ऐसी कविताओ की विरलता की शिकायत हो चुकी थी। अतिशय कल्पना के आरोप के उस युग मे भी निराला साधारण समाज और मानव जीवन की ओर दृष्टि-निक्षेप करते हैं। दार्शनिक दृष्टि से प्रगतिशील तत्वो की कविता का आरम्भ परिमल से ही मान लेना चाहिये। और यह कहने मे कोई अतिरजना नही है कि इस प्रगतिशील धारा के पुरस्कर्ता निराला ही वने थे। 'उनकी विधवा, भिक्षकु, वहू, दीन,' आदि कविताओ मे उनकी इसी सामाजिक चेतना का प्रकाशन हुआ है। भाव की दृष्टि से 'विधवा' मे भी एक क्रान्ति का उपलक्ष्य प्राप्त होता है। विपय वस्तु और भाव स्तरो की विविधता का यह प्रमाण है। वह यह भी प्रमाणित करती है कि दार्शनिक चेतना के कवि निराला यथार्थ अनुभूतियो की उपेक्षा नही करते। महादेवी ने विधवा के विपय मे लिखा है 'सामाजिक आधार पर 'वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी' मे तप पूत वैधव्य का जो चित्र है वह अपनी दिव्य-आलोकिता मे अकेला है।'[१] निराला की सामाजिक सहानुभूति की यह कविता उनकी यथार्थ दृष्टि का प्रमाण है। यहाँ निराला का परिवेश एक यथार्थवादी कवि का है। कवि हृदय की सवेदनशीलता का यह प्रमाण है। नारी-हृदय के अतल की भावना का विष और मधु दोनो उन्होने सचित कर दिया है। कल्पना की शक्ति यथार्थ चित्रो को भी कितना सँवार सकती है, यहाँ दृष्टव्य है। भावात्मक स्थितियो मे विधवा का एक करुण चित्र अकित होता है और जिस वातावरण की सर्जना होती है वह पूजा-अर्जना के पवित्र धूम से आच्छन्न है, फिर भी यथार्थ की तीव्रता नही खोता। अनुभूति की प्रखरता ने ही कहा है—

वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी,
वह दीप-शिखा सी शात, भाव मे लीन,
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन—
दलित भारत की ही—विधवा है।

एक ही वन्द मे उदात्त वातावरण और विपण्ण यथार्थ की तीव्रता प्रकट करने की यह कला अभूतपूर्व है। विधवा के चित्र की कारुणिक स्थिति का भाव देकर (जो अनुभूति के प्रगाढ रगो से सज्जित है) भारतीय समाज की रूढि और उसकी विकृति पर यह गहरी चोट है। नारी के प्रति छायावादी यह नया दृष्टिकोण था जो उनकी 'वहू' कविता से भी प्रमाणित हो जायगा। यहाँ नारी का वोध निराला के लिए करुणा के रूप मे ही हुआ है। उनका नारी-दर्शन अधिक सूक्ष्म और स्वस्थ है। उसमे सयम है, वासना की गध नही। वह सौन्दर्य सरोवर की एक तरग होकर भी उद्दाम आवेगशील नहीं है। सकुचित, लज्जित गति मे भारतीय लज्जालु नववधू का जो चित्र उभरता है वह उनके सयम का ही प्रमाण है। प्रच्छन्नत निराला नारी-स्वातत्र्य के भी समर्थक प्रतीत होते हैं। 'भिक्षुक' का रेखाचित्र भी करुणा को

१—आधुनिक कवि की भूमिका (महादेवी वर्मा)

इन पक्तियो मे जितने भी विशेषण एव उपमायें आई हैं उनमे कहीं भी सादृश्य का सूत्र छूटा नहीं है। बादल निर्बन्ध होते ही हैं—मुक्त होकर आकाश मे विचरते हैं। अन्ध-तम अगम-अनर्गल, बादल का एक विशेषण ही है जिसका अर्थ है—चरम की कालिमा पर अहेतुक [1] इसलिए कि कदाचित बिन बरसे उडते हैं कभी-कभी! बादल स्वच्छन्द भी होते हैं और चचल मन्द समीर के रथ पर उच्छृखलता से विचरण भी क ते हैं। समीर को बादल का रथ कहने मे कल्पना की विशेषता और उपमान की सार्थकता है। समीर का रथ ही बादलो को इधर-उधर ले जाता है। आगे की पक्तियें मे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये बादल घनघोर सावन के हैं जब कि उद्दाम आवेग से वर्षा होती है। विराट कहने मे सम्पूर्ण आकाश को छा जाने वाले वर्षाकालीन बादलों का चित्र है और उन्हे अपार कामनाओ का प्राण कहकर तो उसकी उपयोगिता भी प्रमाणित कर दी गई है। भारत के कृषि-प्रधान देश मे सारी आशायें आकांक्षाएँ वर्षा पर निर्भर करती है, जिसका आधार बादल ही है। यह समझ में नही आता कि इस कविता मे दूर की कौन सी कौडी लाई गई है। आगे की पक्तियों मे भी बादलो को क्रान्ति और प्रलय का प्लावन कहा गया है और सावन का सम्राट। सावन मे बादल का ही तो एकछत्र राज्य होता है और मूसलाधार वर्षा मे 'अटूट पर छूट' टूट पडने वाले उन्माद की कल्पना सार्थक हो जाती है। मुझे तो यह रचना कल्पना और भाव सगति की दृष्टि से यथा-तथ्य ही जान पडती है। बादल राग की पहिली कविता में रवीन्द्र की कविता 'आजि गरजे गगने-गरजे गगने' से भी अधिक सफलता है। रवीन्द्र के गीत से विरह उद्दीपक बादल का भाव आता है। यह बगला की कोमल भावुकता के ही अनुरूप है। लगता है कोई प्रोषित-पतिका गा रही है—

'आजि गरजे गगने-गगने गरजे गगने'

लेकिन निराला के—

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर !
राग-अमर ! अम्बर मे भर निज रोर।

मे घोर घमण्ड घन की झूमती हुई नगाड़ों की सी आवाज का भान होता है—

झर, झर-झर निर्झर-गिरि-सर में
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में,

से लगता है गहन, गिरि, कानन मे झर-झर वर्षा भी हो रही है और घर, मरु, तरु भीगते से खडे हैं। तीसरी कविता मे नवीन उपमाओ के साथ बादल का एक दूसरा ही चित्र उभरता है। इसमें बादल सिन्धु का अश्रु है। जो भौतिक विज्ञान की प्रक्रिया की याद दिलाता है कि सूर्य के ताप से सिन्धु का जल ही वाष्प बनकर बादल बनता है। यहाँ बादल धरा के खिन्न दिवस के दाह की तरह सिन्धु के अश्रुओ का सचयन करता है और मारीचि-मालिका चारु चयन सफल करके अपना परिचित ससार छोडकर सेवा पथ पर चला जाता है। अर्जुन की तरह ही वह अपने लक्ष्य के प्रति दत्त-चित्त

१—डा० भोलानाथ तिवारी हिन्दी साहित्य . पृ० ३२८

है। 'आज मिटेगी व्याकुल अधरो की प्यास' मे अतृप्त, सूखी धरती की जल-प्लावित होने की आकाक्षा व्यक्त हुई है। चतुर्थ और पचम कविता मे बादल का रूपक दिया गया है। यह दोनो की चचलता और निर्बन्ध क्रीडा-रत रहने की समानता पर आधारित है। दामिनी की बादल के कुचित केशो मे चमकने की उपमा चित्रात्मक है। किरण के कर को पकड-पकड कर ऊपर चढने में बालक की क्रीडा और बादल की भौतिक सृष्टि का सार्थक रूपक आता है। अन्तिम राग में बादल क्रान्ति का दूत है। उसे रण-तरी का रूपक दिया गया है। यह युद्धपोत युद्ध की आकाक्षाओ से भरा हुआ है जिसके भेरी गर्जन को सुनकर पृथ्वी के सुप्त अकुर जाग्रत होते हैं। यह सही है कि बादलो की गडगडाहट से धरती के भीतर के बीज अफुरित होते हैं। सन् २२–२३ की जाग्रति वर्ग चेतना को ध्यान में रखकर ही कदाचित यह क्रान्ति-दूत बादल का राग अलापा गया है। क्योकि इस युद्ध गर्जन और मूसलाधार वृष्टि तथा भयकर वज्र-हुकार से छोटे ही शोभा पाते हैं। यहाँ क्रान्ति मे दलित वर्ग की विजय वाच्छा प्रकट है। 'सदा पक पर ही होता जल विप्लव प्लावन' मे लगता है कि निराला ने क्रान्ति का एकमात्र अधिकार सर्वहारा वर्ग को ही सौंपा है। इस कविता का यह भाव-चित्र अप्रतिम रूप से सफल बन पडा है।

हँसते हैं छोटे पौधे लघु भार—
शस्य अपार,—
हिल-हिल
खिल-खिल
हाथ हिलाते
तुझे बुलाते—

से प्रतीत होता है कि पृथ्वी के छोटे-छोटे पौधे वायु से हिल रहे हैं और उनके छोटे-छोटे हाथ ऊपर उठकर बादल को आमन्त्रण दे रहे हैं।

रुद्ध कोष है क्षुब्ध तोष,
अंगना अङ्ग से लिपटे भी
आतक अङ्क पर कांप रहे हैं
धनी, वज्र-गर्जन से बादल !

मे प्रतीत होता है कि ढहती हुई पूँजीवादी सभ्यता का चित्र है, जो क्रान्ति की आशका से ही भयभीत और त्रसित हो जाती है। अन्तिम चरण मे कृषक अधीर वाली पक्तियाँ शोषित वर्ग के प्रति निराला की सहानुभूति को प्रमाणित करती हैं।

परिमल अपनी विविधता और व्यापकता, मुक्त भावो और उत्कृष्ट कला के कारण ही छायावादी अभ्युत्थान का अग्रगण्य बना है। इसमे निराला की प्रतिभा के विभिन्न दिशागामी प्रक्षेप परिचित होते हैं। अद्वैतवादी दार्शनिक निराला से लेकर प्रेम और सौन्दर्य, कल्पना और प्रकृति, यथार्थ और मानव के कलाकार के रूपको के साथ क्रान्ति के दूत, पौरुष-काव्य के आख्याता तथा नई शैली व भाव के प्रतिष्ठाता निराला के दर्शन परिमल मे होते हैं।

परिवर्त—पांच

गीत-सृष्टि

गीत-सृष्टि

गीतो की सृष्टि शाश्वत मानी गई है और निराला गीतिका मे इस शाश्वत सृष्टि के द्विविध क्षेत्र लेकर चले हैं। काव्य और सगीत की उनकी साधना गीतिका मे सफल हुई है जिनमे से किसी को भी प्राथमिक या गौण नहीं कहा जा सकता। जितना उदात्त वहाँ काव्य है उतना ही सगीत भी, यद्यपि भूमिका से यह ध्वनित हो सकता है कि यहाँ सगीत की नयी परम्परा स्थापित करने का उद्देश्य प्रमुख है, लेकिन उन्ही के कथनानुसार 'मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है।' गीतिका एक भविष्य अभिलाषा और उच्च आदर्श की आशसा से प्रणीत हुई है। इन गीतो को प्रगीत-काव्य से भिन्न एक अलग आदर्श पर देखना होगा। यद्यपि प्रत्येक गीत व्यक्तित्व का प्रकाश और अभिव्यक्ति होता है, तो भी गीतो को शास्त्रीय सगीत की नियमावली के अनुरूप ढालना और सगीत को काव्य से मुखर करना ही यहाँ प्रधान है। इस चेष्टा मे सगीत के साथ गीत-काव्य की रक्षा जो हुई है वह गीतिका की सफलता है। यह साधारणतया अनुकृत भी नही हो पायी। प्रत्येक मौलिक और स्वतन्त्र सृष्टि के विषय मे यही कहा जा सकता है। जितना और जैसा महत्व बगाल मे रवीन्द्र-सङ्गीत का है उतना या वैसा ही महत्व 'निराला सगीत' को हिन्दी मे नही मिल पाया। इसका एकमात्र कारण यह हो सकता है कि प्रसार और प्रचार का जितना साधन रवीन्द्र को मिला उतना निराला को नही। वर्तमान स्थिति मे भी सगीत की किसी उच्चस्तरीय कला को साधारणतय लोक-प्रियता नही मिलती, फिर निराला ने किसी परम्परा का निर्वहण न कर उसका विरोध ही किया है। उन पर रवीन्द्र-सगीत का प्रभाव देखा जाता है, लेकिन मेरे विचार मे यह बाह्य सीमा तक ही सीमित है। जहाँ तक सृष्टि का सम्बन्ध है वह हिन्दी की, निराला की अपनी सृष्टि है। यही एक प्रकाश सत्य है कि सङ्गीत की साधना के बाद भी भाव-सौन्दर्य का स्खलन निराला के किसी भी गीत मे नही हुआ है, फिर दुरूहता का प्रश्न तो सापेक्षिक है। रवीन्द्र-सङ्गीत की कोमल भावोच्छलता के स्थान पर निराला-सङ्गीत मे पौरुष और शक्ति, शक्ति और ओज का स्फुरण भी मिलेगा। प्रेम और सौन्दर्य के गीतो मे जहाँ लोक गीतो की सी तीव्रता और कोमलता मिलती है वहाँ अन्य गीतो मे निराला के पौरुष व्यक्तित्व का ओज भी स्वर पाता है। माधुर्य

कविता के परा-सकेत भी स्पष्ट हैं। मुक्ति की साधना के गीतो की मूलवर्तिनी धारा यही होती आयी है।[1] गर्जित जीवन के झरने का उद्देश्य ऊँचे-नीचे पथो को पार करते हुए लक्ष्य की प्राप्ति है। रवीन्द्र का 'झरना' भी इसी ध्वनि को मुखरित करता हुआ आगे वढता है। निराला का 'झरना' सूखता तो अवश्य है पर वह घन वनकर वर्षा भी करता है। निराला का यह कर्म-योग है। ऐसे उद्वोधन गीत उनके एकाधिक हैं। उन्हे युग का चेता-उद्बोधक भी माना जा सकता है। नश्वर सीमा-सस्कृति में सस्वर झकार भरने का सदेश लौकिक ही है और कवि का आत्म जाग्रत, उत्थित है।[2] निराशा की निविडतम रात्रि मे प्रेरणा की ज्योति जलाये रखना और प्राण देकर भी सत्रस्त के लिए वासन्ती मृदु आलेप वनना, निराला का उद्देश्य है।

रुद्ध-कठ के फिर से फूटकर सम-गान करने की निराला की स्वाभाविक वृत्ति है और कोमल भावो की 'गीतिका' में इस ओज का निर्वाह भी विरल नही है। देश-काल की सीमा पार कर व्यापक सहानुभूति का सम्प्रेषण उनके गीतो की विशेषता है। जैसे सूर्य के पास कोई सीमा और विकल्प नही, उसके प्रकाश का वधन नही, वैसे ही ज्ञान भी सीमातीत है। निराला की यही व्यापक साधना उनको एक ऐसा राष्ट्र-कवि का परिवेश देती है जो राष्ट्र के भौतिक सकुचित घेरे का भग कर सार्वभौमिक और विशुद्ध मानवीय भूमि की साधना करता है। वर्तमान और तत्काल हिन्दी कविता की समीक्षा मे राष्ट्र-कवि की यह सज्ञा अधिकाधिक प्रयोग-भ्रष्ट हो चुकी है। हम उसका प्रयोग उसी अर्थ मे नही करते। राष्ट्रीय-कवि की सज्ञा इतनी वडी और महत्वपूर्ण है कि सरलता से किसी भी कवि का नाम उससे सम्बद्ध नही करना चाहिए। सक्रमण काल में प्राय शब्दों का व्यवहार अर्थापकर्ष का उदाहरण बनता है। इस अर्थापकर्षित सज्ञा का प्रयोग हम अर्थोत्कर्ष के बाद करते हैं। विशुद्ध राष्ट्रीय-चेतना का विस्तार सीमा और समय की अवमानना करता हुआ विस्तृत पट-भूमि मे सस्कृति की गहन गहराइयो मे जड जमाता है। निराला इसी अर्थ मे राष्ट्र-कवि हैं। युगीन वस्तु-परक घटनाओ का वर्णनात्मक आलेख ही उसका एकमात्र निकष नहीं होगा। निराला की राष्ट्रीयता कभी भी देश-काल की सीमा मे आवद्ध नही रही। उनके गीत ऐसी भावना को व्यक्त करते हैं जो किसी भी काल मे, किसी भी देश मे, किसी भी कवि की होनी चाहिए—यदि वह शुद्ध राष्ट्रीयता का कवि है। इस भावना से परिचालित उनके गीतो मे 'भारत' शब्द को हटा देने पर वे गीत किसी भी देश के सम्बन्ध मे उद्वोधन दे सकते हैं। भारतीय स्वतन्त्रता के प्रति जितना आवेग उनके काव्य मे मिलता है उतना समय के स्वर मे और कही नही मिलता। यह आवेग भी आवेश का पर्याय नही है, वौद्धिक प्रज्ञा वहाँ भी है। निराला की राष्ट्रीयता मे नजरुल की सी उद्धत और विध्वसात्मक चेतना नही मिलती। इसका कारण यही है कि नजरुल भावुकता पर आश्रित हैं, असाधारण प्रतिभा एव विद्रोही आत्मा के वावजूद भी उनमे आतक-

१—गीतिका पृ० ६५ और १०५
२— ,, पृ० ६०

वादी विप्लव युग का हृत्स्पदन है। वह उद्धत आतुर विद्रोह की वाणी है। निराला मे एक दार्शनिक चिन्ता-धारा और सास्कृतिक चेतना काम करती है, एक बौद्धिक सयम वहाँ है, कोरम-कोर भावुकता नही। सास्कृतिक निधि के धनी किसी भी देश के लिए, जो परतत्र हों, उनकी पक्तियाँ (दुख भार भारत तम-केवल [1]) यथातथ्य हैं। भारत के लिए ही समस्त जीर्ण-शीर्ण प्राचीन को जलाकर नवीनता का प्रकाश फैलाने की प्रार्थना[2] उनकी राष्ट्रीय-भावना की ही अभिव्यक्ति है। 'भारति जय विजय करे, कनक शस्य कमल धरे' प्रसाद के 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' की याद दिलाता है। ये दोनो गीत 'वन्दे-मातरम्' की टक्कर के हैं। ये कालक्रम और सीमा के व्यवधान से भी मौलिक एवं शाश्वत रहेंगे, क्योंकि इनमे जो भावनाएं हैं वे शाश्वत हैं। यह भारत-स्तवन वस्तुतः राष्ट्रीय गीत होना चाहिए। इसमे भौगोलिक विशेषताओं के साथ सास्कृतिक प्रतीकों का भी उपयोग हुआ है। भारत का प्राण 'ओकार' कहा गया है और कमल प्रतीक है विकास का, शाति का, उल्लास का। 'वन्दूँ पद सुन्दर तव'[3] जन्म-भूमि-वन्दना का उदात्त रूप प्रस्तुत करता है। शत-शत वर्षों के अन्तराल से भी परतत्रता का यथावत् रहना कवि की पीडा अनुभूति का कारण बनती है। प्राण ऐसे मे निरर्थक ही हैं। कवि उद्बोधन करता है—

"मिला ज्ञान से जो धन,
नहीं हुआ निश्चेतन,
बांधो उससे जीवन
साधो पग-पग यह डग।"[4]

◇ ◇ ◇

आचार्य वाजपेयी ने गीतिका के कुछ पदो के लिए कहा है कि, "उनमे इस युग के कवि के द्वारा भक्तो की श्रीराधा की ही अवतारणा हुई है"[5] निराला के भक्ति-परक और प्रार्थना-प्रधान गीत एकाधिक हैं। उनमे साधना और वरदान की कामनाएं एक साथ अभिव्यजित हुई हैं। यहाँ उनकी भक्ति, शक्ति की है, माँ की है। सर्वत्र उन्होंने अपनी प्रार्थना को माँ के प्रति स्तवित किया है। यहाँ भी उनकी साधारण जीवन-चेतना का स्फुरण हुआ है। बीसवें गीत मे माँ के चरणों मे नर-जीवन के समस्त स्वार्थ और कवि के श्रम सचित फलो की बलि देने की भावना अभिव्यक्त हुई है। जीवन मे मृत्यु-पथ की ओर बढते हुए भी, महाकाल के तीक्ष्ण शरो को सहने की शक्ति प्राप्त होने का वरदान माँगा गया है। 'बाधाएं आती हैं तो आएँ' लेकिन भ्रांति का अनुभव न हो और वह माँ को मुक्त कर सके। यह माँ कदाचित् 'भारती' ही है।

१—गीतिका पृ० १६
२— ,, पृ० ३६
३— ,, पृ० ८३
४— ,, पृ० ८१
५—समीक्षा पृ० ७०

'कल्पना के कानन की रानी'[1] सरस्वती वन्दना है, कविता की वन्दना है। कवि का कविता-विषयक दृष्टिकोण इससे व्यजित होता है। वह कविता को 'मानस की कुसुमित वाणी' मानता है और उससे नव-जीवन की ज्योति और अखिल पुरातन प्रियता को हटाने की प्रार्थना करता है। निराला की उपलब्धि यह प्रमाणित करती है कि उनकी यह प्रार्थना निष्फल नही गई है। नवीनता का वरदान उन्हे मिला है। 'एक ही आशा मे सब प्राण'[2] मे पुन माँ की आराधना है जिससे ऊँच-नीच को समतोल करने की प्रार्थना की गई है। यह साम्य-भावना एक अद्वैतवादी दार्शनिक की है। जग को ज्योतिर्मय कर देने की प्रार्थना सम्भवत मायापाश मे बँधी आत्मा की प्रार्थना है जो परमात्म-मिलन का ज्योतिर्मय ससार देखना चाहती है। प्रकृत-व्यजना के बाद भी विराट्-चित्र और सत्ता के सकेत उसे परा-अर्थ मे उचित अभिव्यजना दे सकते हैं। हम कह आए हैं कि निराला सामान्य जीवन-चेतना कभी उपेक्षित नही करते। अपने जीवनानुभवो मे लोक की गति वे माप चुके हैं, अत दु ख-त्रस्त अवनी और उससे त्राण पाने की प्रार्थना भी कवि की है।[3] जिसका मन चेतना-हीन हो, जो स्वार्थ को एकमात्र धन माने, उसका त्राण करने की यह प्रार्थना है। इसमे निराला के जीवनानुभवो का, सम्भवत निचोड है और प्रत्येक भक्त-साधक ससार का रूप स्वभावत ऐसा ही देखता है। लेकिन निराला पलायनवादी नही है। 'मरण को वरण' कर लेने का साहस पलायनवादी मे नही होगा, फिर निराला के कर्मवाद पर विचार हम कर ही चुके हैं। साधनात्मक भक्ति पद्धति के गीतो मे 'प्रात् तव द्वार पर' का अपना पृथक् स्थान होना चाहिए। इसमे लक्ष्य तक पहुँचे हुए साधक की साधनाओ का वर्णन है। निराला के ऐसे गीतो में भी नव-जागरण और बन्धन तोडने की प्रेरणा मिलती है। स्वतत्रता की उनकी साधना सर्व-क्षेत्रीय है।

◇ ◇ ◇

निराला का काव्य मानवीय और लौकिक होने हुए भी अलौकिक और रहस्यात्मक सकेत से भासान्वित है। एक अन्तर्निहित आध्यात्मिक स्वर उसमें है। यह एक रहस्यवादी कवि का परिवेश है। परोक्ष रहस्य सत्ता की व्यजना उनके काव्य में सर्वत्र मिलती है। यह रहस्यानुभूति और अलौकिकता लौकिक आधार लेकर ही व्यक्त हुई हैं। उनकी दिव्य अनुभतियो का आधार भी पार्थिव है। 'कौन तम के पार ? (रे कह) मे इस रहस्य-सत्ता और दिव्य की जिज्ञासा व्यक्त हुई है। 'तुम्हे खोजता मैं निर्जन वन मे' मे एकनिष्ठ रहस्यानुराग की व्यजना होती है। विनय और भक्ति के साथ ही 'गीतिका' मे अद्वैतवाद के प्रतिपादक दार्शनिक गीत हैं, जहाँ आभासित द्वैत को अद्वैत माना गया है और सम्पूर्ण व्याप्ति मे, जड-चेतन मे, एक ही तत्व की प्रधानता मानी

१—गीतिका पृ० २६
२— ,, पृ० ३५
३— ,, पृ० ५८

गई है। (जग का देखा एक तार)[1] इसे हम निर्गुण कहें अथवा अद्वैत-दर्शन, यह निराला के दार्शनिक गीतो का प्रतिपाद्य है। वह परमात्मा या ब्रह्म सर्वत्र है और कस्तूरी के मृग की सी स्थिति जीव की है। परमात्मा का वास वहाँ भी है, लेकिन प्राप्ति के लिए वह अन्यत्र भटकता फिरता है। ('पास ही रे हीरे की खान'[2]) 'कही भी नही सत्य का रूप,' 'अखिल जग एक अन्ध-तम-कूप' मे ज्ञानमार्गी मायावाद अथवा शकराचार्य के 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' का सा भाव आया है। लेकिन इस गीत मे वेदान्त का वह आत्मवाद ही केन्द्र भाव है जिसमे ब्रह्म की भाँति आत्म भी शाश्वत और अनन्त माना जाता है। यह सकल आदान-प्रदान उसी की ज्योति है और व्यक्ति मे सकल सृष्टि का सार। इस आत्मा की सी स्थिति लौकिक आधार लेकर वैसी ही अभिव्यक्त हुई है, जैसी महादेवी की रहस्य-साधना मे वह द्वैतवाद से सम्बन्वित है। महादेवी मे इसीलिए 'मानिनी नायिका' के चित्रो का आधार है। निराला के 'मैं न रहूँगी जब, सूना होगा जग'[3] मे भी एक ऐसा ही चित्र है। 'प्यार करती हूँ अलि, इसीलिए मुझे भी करते हैं वे प्यार' भी इसी तरह के भाव की व्यजना है, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि निराला द्वैतवाद के समर्थक है। वस्तुत यहाँ 'आत्मवाद' ही मानना चाहिए अन्यथा वे अद्वैतवादी ही हैं। 'तुम्ही गाती हो अपना गान, व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान'[4] के शुद्ध परोक्ष के ज्योति-चित्र मे भी आत्मा मे ब्रह्म की ज्योति और उसका प्रकाश देखा गया है। वही ज्ञान-तन्तु है और वही शिव शक्ति है। उसका ध्यान करने पर जग का समस्त अज्ञान छूटता है। प्रकृति के समस्त क्रिया-कलापों मे इसी आदि शक्ति का हास देखा जाता है। एक रग मे शतरग विहार वाली भावना अद्वैतवाद की ही पोपक है। वर्ण चमत्कार[5] मे भी एक-एक शब्द ध्वनिमय से बँधा हुआ साकार है।

निराला ने गीतिका की भूमिका मे कहा है कि, "जो सगीत कोमल, मधुर और उच्चभाव, तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है।" गीतिका के काव्य-पक्ष का परिशीलन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उसका काव्य मधुर और उच्चभाव-समन्वित है। निराला-सगीत के विस्तृत विवेचन की आवश्यकता है। निराला ने अपने सगीत मे पाश्चात्य-प्रभाव को बँगला के माध्यम से ग्रहण किया था, यह कहा जाता है। अपनी पद्धति पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा है कि, "ताल प्राय सभी प्रचलित हैं। प्राचीन ढग रहने पर भी वे नवीन-कठ मे नया रग पैदा करेंगी।" हिन्दी के परम्परित सगीत के हीन काव्यत्व का उन्होंने परिष्कार किया है। सगीत की शास्त्रीय पद्धति पर भी ये गीत खरे उतरेंगे ऐसा समीक्षको का

१—गीतिका पृ० २४
२— „ पृ० २७
३— „ पृ० ३०
४— „ पृ० ४६
५— „ पृ० ६२

कहना है। स्वर ताल लय ने आंग्ल-प्रभाव की चर्चा भी की जाती है और उन्हे आलाप-प्रधान बताया जाता है, लेकिन रवीन्द्र की ही भाँति निराला की सगीत पद्धति शास्त्रीय भारतीय है, यद्यपि उन्ही की भाँति निराला ने शास्त्रीय रूढि की एकतन्त्रता के प्रति विद्रोह किया है और रूपात्मक विविधताएँ भी सूचित की हैं।[1]

गीतिका मे निराला की काव्य-कला प्रौढ है। गीतो मे उभरे चित्रो की रेखाएँ पुष्ट और भास्वर हैं। मूर्ति विधान-कला सफल है। सगीत और काव्य की सन्निकटता इनका लक्ष्य रहा है। कल्पना, भावना, और माधुर्य इनका काव्य-सवेदन है। मार्मिक अनुभूतियो के कारण उनमे एक तीव्रता आ गई है, गम्भीरता भी। रागात्मक उत्तेजना के साथ साकेतिक उत्तेजना भी प्रचुर है। सङ्गीतात्मकता के साथ भाव-सौन्दर्य भी परिष्कृत होकर आया है। रागात्मक आवेग की सङ्गीतात्मकता के साथ व्यक्ति-चेतना की अभिव्यक्ति गीति-काव्य की सन्निकटता में है।

[२]

गीति-सृष्टि मे दूसरा मोड, निराला का, अर्चना, आराधना मे मिलता है। यहाँ निराला का स्वर हिन्दी की भक्ति-युगीन भावधारा की निकटता ही नही, समता भी करता है। इन गीतो मे भक्ति के वैसे ही आर्त जिज्ञासु और ज्ञानी भावो की अभिव्यजना हुई है, लेकिन इस भक्ति को किसी सम्प्रदाय से सम्बद्ध न करना होगा। इनमे भी एक दार्शनिक की वाणी है और इसे भी क्रान्तिकारी निराला की आध्यात्मिक परम्परा का एक नया आयाम प्रस्तुत करते हैं। 'गीतिका' के स्वर ही अधिक लोक सम्वेद्य होकर यहाँ आए हैं। एक स्वाभाविक प्रश्न यहाँ उठ सकता है और उठा भी है कि, जीवन के आरम्भ से लेकर अब तक जिस स्वच्छन्दता और मुक्ति की साधना निराला ने की, क्रान्ति की, विद्रोह किए, जागरण गीत गाए, पौरुष का दुर्घर्ष स्वर सुनाया, जिसने समाज की अनगढ़ता, विद्रूप अव्यवस्था पर प्रखर प्रहार किए, जो जीवन के सग्राम मे अचल योद्धा की भाँति सघर्ष करता रहा वह कवि अप्रत्याशित ही विनय और भक्ति की आर्तवाणी क्यो गा उठा? भजनो की नयी परम्परा क्यो स्थापित करता है? जिसके जीवन मे काव्य मे सीमातीत व्यापकता और विविधता रही है, जिसने काव्य की नयी भूमियो की शोध की है वह क्यो अर्चना और आराधना की आत्मतल्लीनता मे खो गया? क्या इसे निराशा और पराजय से सम्बद्ध किया जाय, जो सघर्ष श्रात जीवन मे, आया करती है और जैसा कि कुछ समीक्षको ने कहा भी है। वस्तुत. प्रश्न एकान्वित नही है और न उत्तर ही एक हो सकता है। भारतीय परम्परा मे ईश्वर-स्तुति का गान तो हित समझकर ही किया जाता है और भक्ति एक आवश्यक परिणति रही है। प्रत्येक बडे साधक ने भक्ति को जीवन की मुक्ति और चरम लक्ष्य माना है। कोई इसे जीवन के अभावो की प्रतिक्रिया रूप क्षतिपूर्ति कहे अथवा किसी जाति या व्यक्ति का अभावधर्मीय सामाजिक एव वैज्ञानिक दर्शन का अभाव[2]

1—J. C Gosh. Bengali Literature: P. 174
२—आलोचना २ पृ० ८६ मे नरेश मेहता

पर यह भारतीय जीवन प्रणाली का आवश्यक मोड है जिसे उक्त किसी भी दृष्टिकोण से देखना अन्याय है। धर्म के प्रति आस्था अथवा भक्ति की परिणति हमारी प्रणाली का सनातन सत्य रही है, उसे प्रतिक्रिया-वादी और अमावर्सीय कहना सामान्य प्रज्ञा के अधिकार को त्यागना है। जीवन के कर्म, भोग के पश्चात् ही एक ऐसी अवस्था भारतीय व्यवस्था मे रही है जहाँ समस्त आसक्तियो और सासारिक क्षुद्रताओ को छोडकर व्यक्ति आध्यात्म-चिन्तन और भक्ति करता है। निराला की यह वृद्धावस्था है और भारतीय जीवन की यह आपेक्षित अनिवार्य परिणति है। इसे किसी नैराश्य या पराजय से सम्बद्ध कर [1] उसके मूल आशय को भूलना होगा। यह तो व्यक्ति के जीवन का आवश्यक परिणाम माना गया है। धर्म के प्रति आस्था भी भारतीय जीवन की आदि से अंत तक होती है और उसके सहारे वह जीवन मे कर्म करता है, पलायन नही। धर्म के प्रति यह आस्था या भक्ति का यह भाव सापेक्षिक नही है। ऐसा नही कि निराशा और पराजय है इसीलिए धर्म और भक्ति है। यह भक्ति और ईश्वराशक्ति-जीवन की आवश्यक परिणति सफल-जीवन व्यक्तियों मे भी पाई जाती है। इसका मात्र कारण यही है कि भक्ति के प्रथमसोपान श्रद्धा को भारतीय पद्धति मे जीवन का आधार या मूल माना गया है। कर्मयोगियो मे भी श्रद्धावान श्रेष्ठ है। [2] ईसाई धर्म मे भी इसका महत्व है। [3] हमारे यहाँ श्रद्धा और विश्वास मनोधर्म माना गया है। यहाँ माना जाता है कि आचरण के द्वारा ही ब्रह्मात्मैक्यबुद्धि देह का स्वभाव हो जाना चाहिए। [4] निराला की वह परिणति स्वाभाविक और भारतीय जीवन के अनुकूल है। इसे किसी वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव या नैराश्य अथवा पराजय का परिणाम नही मानना होगा। वे जीवन मे कर्म-योग के पश्चात भक्ति की शरण लेते हैं। उनका जीवन सग्राम कर्म-योग है, ज्ञान दार्शनिक पक्ष और नव्यतम परिणत भक्ति है। मुझे तो लगता है कि अद्वैत-दर्शन और ब्रह्म-ज्ञान को सहज सवेद्य बनाने के लिए निराला ने अर्चना, आराधना मे भक्ति का आश्रय लिया है। महत्व यही है कि इस परिणति मे भी काव्य-विकास की दृष्टि से प्रगति ही परिलक्षित होती है। "निराला मे यह (भक्ति की करुणता) प्रारम्भ से ही है। परिमल, गीतिका, बेला मे कितने ही गीत इस कोटि के है। 'अर्चना' मे यह स्वर वयस के प्रभाव के कारण कदाचित् अधिक भाव विगलित हो गया है।" [5] यहाँ आकर कवि उच्च और उदात्त भावाभिव्यक्ति के लिए कोई विशाल चित्र नही लेता, सूक्ति रूप मे अल्प चित्र मे ही सब कुछ कह देता है। यहाँ निराला की कला में प्रयत्न-लाघव का समावेश होता है। यह काव्य की नयी भूमि है। कुछ पक्तियाँ और अन्त

१—आलोचना . २ . पृष्ठ ८६

२—गीता ६,४७

3—We walk by faith, not by reason

४—गीता-रहस्य · तिलक . पृ० ४२६

५—आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री · नई धारा, जून १९५१

परिवेश मे भी महती कल्पना और औदात्य सन्निविष्ट हो सकता है, यह अर्चना और आराधना के लघु लघु गीत प्रमाणित करेंगे। यह सही है कि अर्चना, आराधना मे कतिपय अटपटे भावो और शब्दो का प्रयोग हुआ है जिनकी सगति की परीक्षा मे निराशा हाथ लगेगी। इसे हम उनकी मानसिक विश्राति की अभिव्यक्ति मानते हैं, लेकिन यह भी अपवाद स्वरूप ही है। अर्चना, आराधना मे भक्ति-गीतों की वहुलता के वाद भी जन-जीवन और युग का चित्रण हुआ है। प्रकृति के चित्र यहाँ हैं, राष्ट्रीय-भावना के गीत हैं, जागरण गीत हैं और लोक-गीतो की सहज सवेद्य भावभूमि है। यहाँ भी निराला का तटस्थ शृ गार दर्शन मिलता है। अर्चना, आराधना उनकी असफलता की परिणति नही। वहाँ काव्य मे एक नूतन प्रयोग और जीवन की एक आवश्यक उपलब्धि है। निराला-काव्य का यह एक और नया आयाम है।

जिन गीतो अथवा भावो को कवि की पराजय अथवा नैराश्य से सम्बद्ध किया जाता है, वे गीत और भाव भक्ति के प्रथम सोपान हैं। भक्त पहिले अपनी स्थिति की दयनीयता, मायावद्ध अपनी विवशता, कातरता व्यक्त करता है, तत्पश्चात् ईश्वर-वदना और भक्ति। 'नाथ हूँ पतितन को टीको' का तात्पर्य यह कभी नही होता कि कवि पतित था, वरन् भक्त ईश्वर के एक-मात्र सम्बल (प्रेम) को पाने के लिए इस आर्तवाणी का प्रयोग करता है। अर्चना मे इस भाव के एकाधिक गीत हैं जिनमे अपनी दयनीय स्थिति का वर्णन कवि करता है। गीत ६ का तात्पर्य यह नही लेना होगा कि कवि जीवन के सग्राम में पराजित होता आया है, इसलिये वह ईश्वर से दुख दूर करने की प्रार्थना कर रहा है। जीव भौतिक ससार मे बंधकर, अनुभव कर, क्लान्ति का अनुभव करता है, इसीलिए वह पर-सत्ता से एकात्म होना चाहता है। ७ वें गीत मे इस क्लाति और माया का प्रभाव समस्त ससार और जीवन क्रम मे मिलता है। यह जीवन एक कृमि से आरम्भ होता है और शिशु दुर्गन्ध-विकल रुदन करता है। प्रत्येक पग पर उसे आघात मिलते हैं। भक्त कवि कहता है कि ऐसे भवसागर से ईश्वर पार करें, गह्वर से उद्धार करें। आराधना के २२ वें गीत में यही भाव प्रकृति के उपकरणो द्वारा व्यक्त हुआ है। ६२ वें गीत मे भग्न तन, रुग्ण मन और जीवन की विषण्णता का उल्लेख हुआ है। प्रतिपल क्षीण होती देह और सज्जित गृह का जीर्ण-शीर्ण होना, प्रलय के मेघो का घिर जाना और हाथो का न चलना, किसी का साथ न होना, उन्नत मस्तक का विनत हो जाना--ऐसे भाव हैं, जो भक्त अपने आराध्य की कृपा प्राप्त करने के लिए कुछ न कुछ अन्तर के साथ सदैव कहता आया है। इन अभिव्यक्तियो मे अप्रत्यक्ष रूप से युग का चित्रण भी होता है। तुलसीकालीन समाज का चित्रण उनकी विनयपत्रिका तक मे मिलता है और निराला जब कहते हैं कि यह 'शिविर की शर्वरी हिंस्र पशुओ मे भरी'[१] है तब भी वे विश्व की दशा का ही वर्णन करते हैं। 'होठ सूख रहे अरे'[२] मे युग मे आयी महायुद्ध की विभीषिका का ही चित्रण प्रतीत होता

१—अर्चना गीत ११
२— ,, गीत १३

है। 'निविड विपिन पंथ अराल, भरे हिंस्र जन्तु व्याल'[१] और 'घन तम से आवृत्त धरणी है'[२] अथवा 'कठिन यह संसार कैसे विनिस्तार'[३] जैसे गीतो मे समय की विपण्ण स्थिति का चित्रण मिलता है—जैसे तुलसी के आर्द्र पदो मे भी युग बोला था। आराधना में भ्रमित मानवता के मन-वारित करने की प्रार्थना हुई है।[४] मानव जहाँ बैल घोडा है।[५] आदि में युग की पराजय, नैराश्य और विषमता ही व्यंजित हुई है। ऐसे गीतो मे भी कवि ने युग के आर्थिक-वैषम्य, उसकी भौतिक अशांति का ही उल्लेख किया है। सच तो यह है कि अन्तर्मुखी और आत्मनिष्ठ कही जाने वाली इस धारा मे भी राष्ट्र और जीवन-जागरण कवि नही भूला है। अर्चना मे[६] वह भारत की छवि को धन से बिके हुए लोगो मे देखता है, इसीलिए कहता है कि जब तक व्यक्ति तन कर नही चलेगा, पथ मे प्राण-विसर्जन करने का संकल्प लेकर नही चलेगा तब तक उसका वरण कौन करेगा। आराधना मे ही 'नाचो हे रुद्रताल'[७] मे जीर्ण-शीर्ण पुरातन के स्थान पर नवीनता का आह्वान किया गया है। क्रान्ति और नवीनता का यह स्वर निराला-काव्य की मुख्य विशेषता रही है।

प्रकृति और जन जीवन के प्रकृत-चित्र भी इन गीतो में बहुल हैं। यहाँ प्रकृति के चित्रो को भी चल चित्र की कला से खीचा गया है। किसी विशाल अथवा विस्तृत पट की अपेक्षा अल्प शब्दो और छन्दो मे संश्लिष्ट मूर्तिविधान से सब कुछ कह देने की कला यहाँ है। वसंत[८] बादल[९] के लघु-चित्र अपनी विदग्ध पूर्णता मे निराला की कला का एक अभिनव-रूप प्रस्तुत करते है। प्रकृति के अन्य अनेक चित्रो मे[१०] चित्रण की विशेषता-प्रकृति की एकान्तिक स्वतंत्र सत्ता का होना है। द्रष्टा भावरंजित अथवा मानवीय व्यापारो की विवृत्ति-साधन प्रकृति नही है। आरोप के स्थान पर स्वतंत्र चित्र यहाँ हैं। न तो इनमे छायावादी काव्य की तरह आध्यात्मिक सत्ता का भान होता है, न उन्हे मानवीकृत किया गया है। कोरमकोर सहजता इनकी विशेषता है। वे वस्तुवादी और यथार्थवादी चित्र हैं। यथार्थ और वस्तु से तात्पर्य यहाँ किसी जीवन दृष्टि के आग्रह से नही हैं—वरन् काव्य की प्रकृति भूमि से है। हिन्दी काव्य के प्रकृति चित्रण मे इतनी निर्लिप्तता और निर्वैयक्तिक कला का यह परिवेश नूतन और अभि-

१—अर्चना . गीत ४०
२— ,, गीत ५१
३— ,, गीत ७५
४—आराधना २४
५– वही ७३
६—अर्चना ८७
७—आराधना · ५५
८—अर्चना २२
९—वही १०२
१०—अर्चना : १११, आराधना ३, ४०, ६३

नव है। जन-जीवन और ग्राम्य चित्रो का लक्ष्य, सामाजिक, क्रान्ति, राजनीतिक व्यग्य अथवा आर्थिक-चेतना को व्यक्त करना था।[१] वहाँ अब ये साधन न होकर साध्य हैं, स्वतत्र है। 'फूटे है आमों मे वौर'[२] के होली पर्व-कालीन ग्राम-प्रकृति के चित्र मे किसी इतर सकेत या आरोपित भाव का वहन नही है। आराधना मे यह रूप अधिक निखर आया है। लौटती हुई ग्रामीण जनता का रगमय चित्र अपनी स्वाभाविकता में ही सज्जित है।[३] 'महकी फुलवाडी', 'धान कूटता है' 'एक गऊ कुछ दूर रंभाई' 'दो घडे कांख पर'[४] ग्रामीण जीवन के धुले-धुले चित्र हैं। वे सादगी और नैसर्गिकता मे आज की यथार्थवादी कविताओं के लिए आदर्श स्तम्भ का कार्य करते हैं। 'ग्राम्या'[५] के ग्राम्य-चित्रो की तुलना ये चित्र कही प्रकृत और अनुभूत हैं, मार्मिक हैं। कवि नगर से जाकर ग्राम्य-प्रकृति को दूर से देखकर लौट नही आया है। वहाँ घुल-मिलकर उसके रेजा-रेजा से उसका परिचय है—मात्र बौद्धिक सहानुभूति नही। जितना ही छोटा इनका आधार पट है उतनी ही तीव्र व्यजना और प्रेषण। जितना छोटा पात्र है उतना ही तीव्र रस। कुछ गीत तो सीधे लोक गीतो की भूमि पर उन्ही सवेदनाओ से, ताल, लय से मिलते हैं। ग्रामीण-जीवन और लोक-वृत्तियो के द्वारा निराला ने काव्य वस्तु को नवीन तो किया ही, साथ ही लोक-भाषा और गीतो की व्यजना-भावुकता से मिली-जुली कला भी इनकी है। युग मे सर्वाधिक लोक गीत-शैली को प्रश्रय देने वाले निराला ही हैं। लोक-गीतो की एक विशेषता उनका नितात प्रकृत होना होता है। आडम्बर विहीन, निरलकार, उनकी लोक-रुचि और लोक-रगो की सहज सवेद्य विशेषताओ के द्वारा काव्य की प्रकृत भूमि का यह शृगार हिन्दी जन-गीतो की परम्परा का नया आख्यान है। 'बाँधो न नाव इस ठाव बन्धु'[६] 'गवना न करा'[७] की व्यजना प्रचलित लोक गीतो की है। लोक-गीतो का विधान निराला के अतिरिक्त अन्य साम्प्रतिक समकालीन कवियो मे मिल सकता है, लेकिन सहजता और सारल्य मे वे तुल्य नही होंगे। छन्दोलय और धुनें भी लोक-गीतो की हैं। लोक-गीतो की इसी प्रकृत भूमि पर स्वस्थ शृगार के जो चित्र हैं, वे भी पूर्व परम्परा की सज्जा और अलकरण से प्रस्थान करते हैं। 'नैनो के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली' की गीतिका की परम्परा मे इन गीतो की सहज-भावोच्छलता और सरल भोली व्यजना, उस परम्परा का विकास और नया मोड भी है। 'खेलूंगी कभी होली, उससे जो नही हमजोली,' 'दे न गए बचने की साँस—आस ले गए', 'केशर की कलि की पिचकारी', 'पात-पात की गात सवारी,' 'प्रिय के हाथ लगाए जागी', 'घन आए घनश्याम न आए', 'हरिण नयन हरि ने छीने हैं' आदि के स्वस्थ शृगार भावना कविता को जन-भावना

१—कुकुरमुता, नये-पत्ते
२—अर्चना ३३
३—आराधना ७४
४—वही ७५, ७७, ८५ और ७६
५—सुमित्रानन्दन पत
६—अर्चना ३७
७—अर्चना ८४

के सन्निकट लाकर जन-काव्य की परम्परा का प्रारम्भ करती है और कोई आश्चर्य नही यदि इनका आध्यात्मपरक अर्थ भी दिया जाय—लेकिन इनकी प्रकृत और लौकिक भावना ही इतनी परिष्कृत है कि किसी दूसरे आवरण की आवश्यकता नही। रीति काल के उद्दाम शृगार आवेग की तुलना मे भी ये तीव्रता मे उनसे आगे हैं और जहाँ भावों का प्रवाह व्रज की गोपियो की प्रेम-क्रीडा की ओर मुड जाता है वहाँ वैष्णव-शृगार का सा रूप और रग मिलता है। पूरी परम्परा मे इनकी समता यदि कही मिलती है तो केवल हिन्दी के आदि-कवि विद्यापति से। निराला के इन गीतो को मैथिल-कोकिल का ही अभिनव-विकास कहना चाहिए। स्वभावत यहाँ निराला अभिनव-विद्यापति हैं।

अर्चना और आराधना की केन्द्रीय वृत्ति प्रार्थना-परक है, भक्ति परक है। अर्चना मे 'भव-अर्णव की तरणी तरुणा' गीतिका की 'वीणा वादिनी वर दे' की तरह काव्य-प्रार्थना, सरस्वती-वन्दना है। आराधना का प्रथम गीत भी इसी तरह प्रार्थना-परक है। इन गीतो मे सामान्यत वर्णनात्मकता होती है और किसी काव्यात्मक कल्पना का अवसर कम ही मिलता है। यही अर्चना आराधना के गीतो के विषय मे कहा जा सकता है। अन्तर केवल इतना है कि पूर्व परम्परा के प्रार्थना-परक गीतो मे जहाँ सरणि और सूची पद्धति अपनाई जाती रही है वहाँ इनमे गुणो का भावात्मक वर्णन और काव्यात्मक प्रतीको का उपयोग भी हुआ। भक्ति की 'नाम स्मरण' और कीर्तन-सम्बन्धी विशेषताओ से समन्वित कई गीत अर्चना-आराधना मे हैं।[1] उनमे मुक्ति और भक्ति की ऐकान्तिक कामना के साथ भी भक्त का विश्वात्मक मानववादी दृष्टिकोण नही छूट पाया है। शक्ति का मातृ-रूप निराला के लिए प्रारम्भ मे वन्दनीय रहा है। कुछ गीतो मे भक्ति-कालीन वैष्णव-तन्मयता की ध्वनि मिलती है। इन गीतो के भाव और शैली के विषय मे यह कहना कि 'अर्चना के भक्ति पदो मे तन्मयता नही'[2] या तो उन पदों की स्पष्टता और सहजता के प्रति अन्याय है अथवा किसी पूर्वाग्रह का अनुशासन। जो हो इन गीतों मे भी वही तन्मयता, स्वर, लय और गति है जो हमारे परिवारो मे चिर-प्रचलित सूर और मीरा के गीतो मे हुआ करती है। अन्यथा भक्ति और ईश्वरोन्मुख प्रेम-भक्ति की विशेषताएँ भी इन गीतो मे है। कामनामयी भक्ति और उसकी महिमा, भक्ति-जनित आनन्द, दास्य और विनय-भक्ति, भक्त का विश्ववादी दृष्टिकोण, अर्चना आराधना के गीतो के प्रमुख विषय हैं। उनका केन्द्रीय भाव भी यही प्रतीत होता है। बिना किसी अपवाद के अर्चना और आराधना का कोई ऐसा गीत नही मिलेगा जिसमे भक्ति की तन्मयता का प्रभाव न हो। अपनी इसी विशेषता के कारण ये गीत हिन्दी के उस स्वर्ण-युग की याद दिलाते हैं जब कि काव्य का प्रवाह ही इसी आत्मविभोर, तन्मयासक्त आर्त-वाणी भक्तो के पदो की ओर मुडा था।

१—आराधना ५१, १२, १४, ४८
२—आलोचना । पृ० ८६
३—अर्चना ४६, ७२, १००, १०१

एक स्वाभाविक प्रश्न हो सकता है कि इन भक्ति-गीतो का कौन-सा प्रयोजन है अथवा उनका क्या महत्व है ? इस प्रश्न का आंशिक उत्तर हम प्रथम चरण मे ही दे आये हैं। अधिकांशत भक्ति के सम्पूर्ण प्रक्षेत्र और उपकरण भक्ति-कालीन काव्य मे वर्णित हो चुके हैं, यह सही है। जहाँ तक काव्य का परम्परा-निर्वाह है, खडी बोली के हिन्दी काव्य मे भक्ति का ऐसा रूप नही मिलता। आधुनिक काल की प्रारम्भिक सीमा से लेकर आज तक भक्ति का ऐसा स्वर कही नही है। एक दृष्टि से यह हमारी उसी संस्कृति का प्रकाश है और निराला उसके गायक। भक्ति-काव्य की वैधी और सम्प्रदाय-बद्ध भक्ति-पद्धति के स्थान पर इन गीतो मे एक स्वच्छन्द कवि की वाणी भी मिलती है। यहाँ भी किसी रूढि, नियम और परम्परा का पालन नही हुआ है। जब जैसा भाव आया उसकी गीत बद्ध व्यंजना ही इनमे हुई है। भक्ति-काव्य के प्रत्येक कवि की पद्धति और शैली का हम निर्देश कर सकते है, पर निराला के साथ ऐसा नही है। विविधता और व्यापकता यहाँ भी है और विविधता विरलता की समानार्थी भी नही है। सच तो यह है कि इन गीतो मे भी वही गहनता, व्यापकता और तल्लीनता मिलती है जो पुराने कवियो का आधार रही है। यह भक्ति-काव्य की एक नयी कडी भी है।

काव्य की दृष्टि से भी यहाँ विकास और परिष्कार ही मिलेगा। उत्तर छायावाद काल मे कविता के प्रेषण और रस को लेकर अधिकांश और कदाचित सभी वर्गों मे अव्यवस्था और उपेक्षा मिलती है जिसे भारतीय-विशेषताओ के विरोध मे भी कहा जाता है, लेकिन निराला मे विद्रोह और क्रान्ति के बाद भी इसकी रक्षा हुई है। काव्य की सहज भूमि का, सरल बोधगम्य भाषा का और अबाध प्रेषण का ऐसा रूप उत्तर छायावाद काल मे भी, जन काव्य की स्थापनाओ के बाद भी, अब तक नही देखा गया। छायावाद पर किये गये आरोपो के बाद जिन नयी भूमियो का आग्रह किया गया था (मेरा तात्पर्य प्रगतिवादी स्थापनाओ से है) उसका अग्रगण्य और सही रूप इन्ही रचनाओ मे मिलता है। यहाँ भाषा की शक्ति का एक नया रूप मिलता है। सरल और अकृत्रिम भाषा मे साधारण वर्गो और जन जीवन का काव्य मे स्थापन इन गीतो मे मिलेगा। जो समीक्षक निराला-काव्य को दुरूह ही कहते आये हैं और इसीलिए जनता तक पहुँचने मे असमर्थ मानते आये है। वे इन गीतो के आधार पर वैसा नही कह सकते। ये गीत जनता के जितने निकट जा सकते है उतने निकट आधुनिक हिन्दी काव्य का कोई भी रूप नही। अल्पतम शब्दो मे गहनतम भाव को प्रेषित करने की कला के रूप मे यह निराला-काव्य का विकास ही है। यह सही है कि कतिपय गीतो का विलक्षण शब्द प्रयोग और भाव-रुद्ध अभिव्यक्ति भी इन रचनाओ मे मिलेगी, लेकिन यह सकारण है और मूलत मैं यह मानता हूँ कि निराला के इन गीतो मे गीति-काव्य का एक नया रूप सामने आता है वह निराला के अन्य परिवेश के ही समान अप्रतिम है जिसकी अनुकृति आज तक नही हो पायी।

० ० ०

अर्चना के एक गीत मे प्रार्थना की गई थी 'सहज-सहज कर दो' और आराधना मे भी सीधी राह की कामना की गई थी। गीत गुंज उसी सहजता और सीधे रास्ते पर चलने का उपक्रम है। इसके ११, १२, १३ और २३ गीत अर्चना और आराधना के ही हैं। गीत गुंज की भूमि वही है जो अर्चना और आराधना की है। वयस के प्रमाण से विनय वाणी, श्रांति की प्रतीक उनकी आभासित निराशा यहाँ भी मिल जायगी, लेकिन कवि के सकल्प विवर्ण नही हुए हैं।[१] काव्य का हृदय और छन्द का सम्बन्ध और प्रकृत भूमि का आग्रह यहाँ भी है।[२] यहाँ भी जीवन के यथार्थ के प्रति निराला जागरूक हैं। इसीलिए सम्भवत भजन के बदले भोजन की बात करते हैं। 'जिधर देखिए श्याम विराजे' के भाव भी एकाधिक हैं। यह अनन्या भक्ति ही कही जायगी। प्रकृति की विराट्-सत्ता मे उस परा-सत्ता का भान, रहस्य सकेतो की उद्धरणी है।[३] प्रकृति के स्वतन्त्र अकन भी यहाँ मिलते है। ध्वनि और गति के व्यजक ये काव्य चित्र हैं।[४] उपालम्भ-काव्य की शैली[५] उर्दू रग-ढग की है। भक्त की एकनिष्ठता और कवि का आत्मविश्वास, रहस्यवादी कवि के झनक मारते हुए भाव-सयोग, ग्राम-प्रकृति के धुले निर्मल चित्र, आडम्बर-हीन काव्य, और बादलो के कवि का बादल-प्रेम इन गीतो के विषय हैं।[६]

मूलत गीत गुंज के गीत अर्चना और आराधना की नव्य गीत-परम्परा के हैं और उनकी भूमि भी उन्ही की तरह सहज सवेद्य, सरल बोध-गम्य है। इसका तात्पर्य यह नही कि काव्य की भूमि यहाँ उदात्त नही है। काव्य के उस स्तर की रक्षा करते हुए भी इन गीतो मे नैसर्गिकता वरेण्य है। एक शब्द मे इनकी यह परम्परा जन गीतो की है और हिन्दी मे जन-गीतो की विरलता है। (जन गीतो को हम लोक गीतो से पृथक् देख रहे हैं) गीतिका के शास्त्रीय सगीत की अपेक्षा यहा सहजगेयता है, लोक धुनो का प्रयोग। प्रतीक, भाव, व्यजना, शैली और अभिव्यक्ति सब मे ये गीत लोक-गीतो के अधिक निकट हैं।

१—गीत-गुंज पृ० ६३
२—वही पृ० ६०
३—वही पृ० ४७, ४८, ४०
४—वही गीत ३, ५
५—वही ६
६—गीत ८, १४ १० और १५, १८, १६, २०

परिवर्त—छः

वृहत्तर रचनाएं (महाकाव्य का औदात्य)

१ अनामिका

प्रतिनिधि काव्य-संग्रह
प्रेम-भाव का औदात्य और अध्यात्म
प्रकृति और गीत
व्यक्तित्व-व्यंजना
प्रगति के स्वर और व्यंग्य
महाकाव्यात्मक कल्पना
सांस्कृतिक कलाकार
महाकाव्य के औदात्य की व्याख्या   प्रस्थान का स्पष्टीकरण

२ सरोज-स्मृति

शोक-गीत की अवधारणा
वृत्त और निराला का जीवनांश
वात्सल्य और शृंगार
पारिवारिक जीवन के चित्र
विरोधी रसों की समस्या
कवि का व्यक्तित्व
'एक उत्तर'
महत्-काव्य   कलाकार की निस्संगता

३ राम की शक्ति पूजा

पौराणिक आधार और वस्तु-योजना
चिन्तनयोग
काव्य   महाकाव्यत्व के उपकरण

वृहत्तर रचनाएं (महाकाव्य का औदात्य)

'अनामिका' निराला का प्रतिनिधि काव्य-सग्रह है, उसी अर्थ मे जिस अर्थ मे प्रसाद की कामायनी । यहाँ मेरा तात्पर्य अनामिका और कामायनी की समता या तुलना का नहीं, अपितु काव्य जीवन मे उन ग्रन्थो के महत्व का है । जिस तरह प्रसाद की स्थायी कीर्ति का स्तम्भ कामायनी है उसी तरह निराला की स्थायी कीर्ति अनामिका से मानी जायगी । इसका कारण यही है कि यहाँ निराला का कवि व्यक्तित्व चेतन के इतने विभिन्न स्तरो और आयामो मे अभिव्यक्त होता है, उसने एक ऐसी स्वाधीन चेतना का विकास किया है जो जीवन के विभिन्न परिपाश्वो को छू सकती है । निराला उन्मुक्त होकर विस्तृत, व्यापक, और विराट की साधना करते हैं । अब तक उनकी काव्य, कला, अनुभूति और अभिव्यक्ति पूर्ण प्रौढ हो चुकती है । यहाँ आकर स्वच्छन्दतावादी काव्य (और निराला) अपना उन्मुक्त आत्म-प्रसार करता है । सम्पूर्ण निराला 'अनामिका' मे देखे जा सकते हैं । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अनामिका के पहले अथवा बाद की रचनाओ का महत्व कम है । उनका सम्बन्ध प्रमुख अथवा गौण का नहीं है । वह सम्बन्ध प्रतिनिधित्व का है । परिमल के बाद 'अनामिका' ही निराला का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है और स्वय अनामिका स्वच्छन्दतावाद का । दिव्य प्रेम और उन्मुक्त सौन्दर्य के साथ यहाँ जीवन के यथार्थ का कटु अनुभव व्यक्त करने वाली प्रगतिशील रचनाएं हैं जिनमें भाव-परिवर्तन के साथ शैली भी परिवर्तित होती है। निराला को अब तक जीवन मे एक बडे कठोर सत्य का सामना करना पडा है और फलत उनका व्यक्तित्व भी उससे प्रभावित हुआ है । समाज का परिवेश उनकी चेतना को एक नयी धारा भी देता है । निरन्तर विरोध और आलोचनाओ से सघर्ष करते हुए उनके जीवन मे वे क्षण भी आए हैं जहाँ निराशा और पराजय ध्वनित होती है, साथ ही अपनी क्रान्ति और विद्रोह, उद्दाम आत्म-विश्वास का सम्बल भी वे नहीं छोडते और व्यग्य उनका तीव्र हो जाता है । इसी काल मे निराला को एक सास्कृतिक कलाकार का परिवेश भी मिलता है । अनामिका के एक छोर पर 'प्रेयसी' जैसी रचनाएँ हैं और दूसरे पर 'राम की शक्ति पूजा' । इनके बीच एक रूप 'तोडती

प्रेम नही होता, प्रेम की छाया होती है। यह दैहिक और भौतिक प्रेम वास्तविक प्रेम नही। वास्तविक प्रेम सदा ही असूत्र रहस्यात्मक होता है। वह समस्त प्राणियो को सूत्र-बद्ध कर भी स्वय बद्ध-सूत्र नही होता। यह ब्रह्म ही है और उसी अनादि तत्व से इस सृष्टि का विकास होता है। यह विकास भी सम से विषम की ओर होता है। विभिन्न तत्वो मे एक ही सत्ता की अवस्थिति अद्वैतवादी दर्शन ही है। 'रेखा'[1] प्रेम की दिगन्त व्याप्ति का लौकिक आख्यान है। प्रणय की यह प्रथम अनुभूति लेकिन मूलत एक अलोक की ओर सकेत करती है। यहाँ उस रहस्यात्मक दिव्य मिलन का आनन्द वर्णित है।[2] इस प्रेम की अनुभूति ऐसी है कि सीमा मे भी असीम के दर्शन होते हैं। समस्त प्रकृति मे एक ही चेतन सत्ता का भान होने लगता है और 'सहज एकत्व' का जो प्रश्न है, वह हल हो जाता है। प्रच्छन्न भाव कथा का रूप यहाँ काव्य की सृष्टि करता है और रहस्य सकेत दार्शनिक व्याख्याए हैं। यह परिवेश निराला का गीतिका और परिमल वाला है। गीतिका की भाँति अनामिका मे १४ गीतो का सग्रह भी है जो शीर्पक बद्ध है। इनमे 'प्याला, मरणदृश्य, अपराजिता' और 'प्राप्ति' मे रहस्य जिज्ञासा और अलौकिक सकेत हैं। मृत्यु और निर्वाण, नश्वरता और प्राण देने वाला कौन है? कौन है जो इस प्याले को वार-वार भर देता है। यह जिज्ञासा रहस्यवादी कवि का प्रथम सोपान है, इस भाव के गीतो की प्रचुरता 'गीताजली' के वाद वहुत वढी थी और उमर खैयाम की यह प्रिय शैली है। प्याला[3] मे उसी की जिज्ञासा व्यक्त हुई है जो नाचते हुए ग्रहो, पल-पल मे उठते-गिरते तारामण्डल की पृष्ठभूमि मे है, जिसके सकेत से यह घरा घूम रही है। 'मरण दृश्य'[4] में किसी अलौकिक प्रिया को सम्वोधन है, जो इस सीमा हीन विश्व मे व्यथा से दीन करती है, जो दुख के रूप मे नई निधि (!) देती है और जल का मीन वना देती है। जल के मीन से तात्पर्य अज्ञात प्रियतम द्वारा ससार का आवास अनिवार्य वना देना होगा। कवि मरण के दृश्य को भी मुक्ति ही मानता है। 'अपराजिता' में आँखे परी नागरी (माया ?) को देखती नही थकती। 'प्राप्ति'[5] मे अज्ञात प्रियतमा की कृपा है—जव थकन और रुकने का अवसर आता दिखा तव वह हवा वनकर वहती है और गोद में लेकर असख्य चुम्बन देती है, श्रम बिन्दु सूख जाते हैं, छवि के निर्भर वरसते हैं, शिराएँ शवत होती हैं। उक्ति[6] मे कवि सासारिक सम्मान और समझ की अवहेलना करता है—(कुछ न हुआ, न हो, मुझे विश्व का सुख, श्री, यदि केवल पास तुम रहो।) यदि जीवन (नभ) से दुख (वादल) न कटा और कीर्ति (चन्द्र) ढकी ही रह गई, निविड

१—अनामिका पृ० ६६
२—वही पृ० ७७
३—वही पृ० ९३
४—वही पृ० १३५
५—वही पृ० १४७
६—वही पृ० ११६

सघर्ष (तिमिर रात) यथावत रहे आए तो भी तुम (!) मेरा हाथ पकड लो तो अधरो पर मुस्कान ही खेलेगी।' उक्ति आत्म-निवेदन ही है और 'तुम' कविता को सम्बोध। यह अखड आत्म-विश्वास है।

अनामिका के तीन प्रकृति चित्रों मे 'वसत की परी के प्रति'[१] की प्रेरणा मे कदाचित 'जुही की कली' की मानसिक स्थिति रही है। आनुप्रासिक शब्द-योजना से वसन्त का आह्वान हुआ है। वर्षा और बादलो का प्रेम अनामिका मे भी अक्षुण्ण है। 'वारिद वन्दना'[२] मे बादल प्रिया का रूप लेता है। वारिद की झरन प्रिया की हँसी है और वर्षातुर बादल 'आकुल-नयने' कहे गए हैं—। मानवीय व्यापारो का प्रकृति पर आरोप इस युग की विशेषता रही है। 'उत्साह'[३] मे बादल बाल-कल्पना और कवि होकर आते हैं। वह कवि ऐसा है जिसके अन्तर मे विद्युत की छवि है और वज्र है। कवि नूतन कविता देता है और बादल नूतन जीवन। निराला का व्यक्तित्व, बादलो के रूपको मे अधिक स्पष्टता से उभरता है। इसीलिए हमने उन्हें बादलो का कवि कहा है। 'विनय'[४] में बादल-वन्दना है। जीवन मे शान्ति और शीतलता की कामना बादलों से की गई है। विटप छाह के तट पर निर्जनता मे खिली हुई कलियो को चूमते हुए जल-कण साथ मे शीतल समीर बहायें और वृक्षो पर पक्षी कलरव करें। यह जीवन का उल्लास बादलो पर आधारित है। साधारण जीवन के अनावृत्त यथार्थ को देखने की लालसा निराला की रही है। 'खुला आसमान'[५] मे साधारण ग्राम्य जीवन का एक धुला-धुला चित्र है। यह चित्र उनकी अनुभूति और सवेदना से भी रजित है। ग्राम का स्नैपशॉट, जिसमे कोई भी आवश्यक वस्तु नही छूट पाई है, यह है। 'मेरी छवि ला दो' में जीवन से परिचित होने और जन जन के उर मे गीतो का स्वर भर देने की प्रार्थना है। हताश जीवन की कटु वेदना और विषण्ण यथार्थ के 'जीवन-चिर-कालिक-क्रन्दन' है। अवसाद का यह भाव लेकिन क्षणिक है—'मेरा अन्तर वज्र कठोर, देना जी भरसक झकझोर, 'मे व्यक्तित्व का वह औदार्य मिट नही जाता। 'फिर सँवार सितार लो' और 'मुक्ति' भी कामना के स्वतन्त्र गीत हैं।

'प्रिया से,' और 'कविता के प्रति' सम्बोधि गीत हैं। 'यमुना के प्रति' के अध्ययन के अवसर पर हम इनकी शैलियो पर विचार कर आए हैं। दोनो कविताओ का सम्बोध कविता के ही प्रति है। पहले मे कविता जीवन की सरस साधना और कल्पना से विकसित मानी गई है। दूसरे मे वह बहु जीवन की छवि है और भाव ही उसके प्राण हैं। कवि कर्म के लिए साधना की अनिवार्यता भी है। इस दृष्टिकोण को

१—अनामिका पृ० १६४
२— ,, पृ० १६४
३— ,, पृ० ८२
४— ,, पृ० ८१
५— ,, पृ० १३८

हम उनकी काव्य-दृष्टि से भी सम्बद्ध कर सकते हैं, यद्यपि ये क्षण-विशेष की भाव-ध्वनियाँ भी हो सकती हैं।

व्यक्तित्व विश्लेषण वाले परिवर्त मे हम देख आए हैं कि निराला को अपने जीवन मे पग-पग पर विरोध और आलोचनाओं का शिकार होना पडा है। अपने जीवन के अधिकाश भाग मे उन्हे ये सघर्ष झेलने पडे, फिर भी उचित सम्मान और मूल्य न मिला, तब उनके जीवन का 'अनुताप' भी वढा। यह सत्य है कि निराला के व्यक्तित्व मे निराशा और पराजय की कल्पना, पलायन की वृत्ति प्रभूत नही है, तथापि क्लान्ति के कुछ क्षणो मे श्रान्त और निराश मन की यह वाणी कभी-कभी अभिव्यक्त हो जाती है। 'अनुताप' में उपवन का ग्रीष्मातप कवि के जीवन का भी आतप है। हिन्दी सेवा का मूल्य उसे नही मिला। 'सच है' मे यह अवसाद घनीभूत हो गया है। 'क्षार मे भी नये हारो' की खोज का जव विरोध हुआ तब 'हिन्दी सुमनो के प्रति' मे निराला की निराशा बढ जाती है। हिन्दी मे नये वसन्त (क्रान्ति) के अग्रदूत वही थे, लेकिन तत्कालीन साहित्यिक गतिविधि मे उचित सम्मान के अभाव से भी ईर्ष्या उन्हें नही हुई। ब्राह्मण समाज मे अछूत की भाँति पार्श्वच्छवि में जैसा रखा गया उन्हें, उसकी प्रतिक्रिया भी मन मे हुई अवश्य। नवीन छन्द को रबर छन्द, या केचुआ छन्द और उनके काव्य को कठिन काव्य कहकर आलोचको ने जो वितण्डावाद फैलाया था उसके प्रति ही निराला का व्यग्य भी है।[1] लेकिल आत्म-विश्वास का सम्बल नही छूटता—

'हिल चुका हूँ मैं हवा मे, हानि क्या
यदि झडूँ, बहता फिरूँ मे अन्तहीन प्रवाह में—
नारायण मिलें हस अन्त में।[2]

जिस तरह स्वच्छन्दतावादी काव्यान्दोलन के पुरस्कर्ता निराला बने थे, उसी तरह हिन्दी के प्रगतिवादी आन्दोलन का अप्रत्यक्ष नेतृत्व भी निराला ने किया। 'अनामिका' के प्रकाशित होने के दो वर्ष पूर्व प्रगतिशील साहित्य-सघ की स्थापना हो चुकी थी। छायावादी काव्यधारा में एक मोड की राह भी देखी जा रही थी। यो तो प्रगतिवादी कही जाने वाली धारा से समता रखने वाली कविताएं परिमल मे मिल जाती हैं लेकिन उस काल मे वह काव्य की प्रतिनिधि धारा नही थी। सन् ३६ तक आते-आते भारत का राष्ट्रीय जीवन भी एक करवट ले चुका था और साहित्य मे भी नयी क्रान्ति की आवश्यकता अनुभूत हो रही थी। अनामिका में ही छायावादी कविता से प्रस्थान के वीज मिल जाते हैं। कृतित्व का एक भिन्न आयाम इसकी कतिपय रचनाओ मे मिलता है।

'मित्र के प्रति' प्राचीन परिपाटी पर व्यग्य-प्रहार है। मित्र उस गान को वन्द करना चाहता था जिसमे छन्द नही, भाव नही प्राण नही, जो केवल नीरम है।

१—अनामिका पृ० ११५
२— ,, पृ० १८४

प्राचीनता का पोषक मित्र कहता है कि तब प्राचीनता सरस थी, उसमे सारस-हसो का कल कूजन था और वारिज वारिद से प्यार था, लेकिन कवि कहता है कि उस प्राचीनता ने अपने द्वार रुद्ध कर लिए थे, इसीलिए उसे मन्द-मन्द वहने वाली सुवास नही मिली जो मधुर भार से भरी थी और सछन्द थी। खुली प्रकृति का अवलोकन उसने नही किया। वायु की गति भी स्वच्छन्द है और पुरातन जीर्ण-शीर्ण है। नवीनता का वैभव ही कुछ दूसरा है वह सारे वन्धन तोडकर चलती है। निरुपाय छन्दो का वन्धन भी उसने तोडा है। इस नवीनता ने विखरे कणो को एकत्र किया है और जो मौक्तिक-माला बनी है वह सरस्वती के नये हार के रूप मे सज्जित है।—यह प्राचीनता के स्थान पर नवीनता का आग्रह है। इसमें निराला की शैली सीधी चोट करने वाली यथार्थोन्मुख है। 'दान' सा सा सशक्त व्यग्य भी, समस्त समाज को चुनौती देने वाला व्यग्य निराला की ही सृष्टि है। परम्परित, प्रचलित धर्म की रूढियो और दोषो पर निराला की यह चोट तिलमिला देने वाली है। समाज के इस ढोग और वितण्डावाद पर कवि की दृष्टि उस समय गई थी जव छायावादी कवि अपनी कल्पना मे ही डूब-उतरा रहा था। मध्यम-वर्गीय उस स्वप्निलता से हटकर निराला ने ऐसे घोर यथार्थ-वादी चित्र दिए जो अपने तीव्र प्रभाव मे आज तक अप्रतिम हैं। धर्म के नाम पर जो अमानुषिक कृत्य समाज मे प्रचलित रहे हैं उसका एक रोमाचकारी दृश्य 'दान' मे है जहाँ धर्म के नाम पर वानरों को तो मालपुए खिलाए जाते हैं और मानव भिक्षा के लिए भी तृषार्त और अतृप्त रहता है। दान की कथन शैली तक मे व्यग्य है। प्रकृति-प्रेमी रस-विलासी कवि यात्रा को निकला है और साक्षात् होता है तीव्र जिजीविषा का ताडव। प्रारम्भ से लेकर 'नृत्य पर मधुर-आवेदन-चपल' तक वही छायावादी कल्पना विलास है, लेकिन 'मैं प्रात् पर्यटनार्थ चला' से कविता का दूसरा मोड उपस्थित होता है। यह भी व्यग्य को तीव्र करता है। पुल पर खडे होकर सोचने मे मध्यमवर्गीय आत्म-तोष और पलायन की भावना है और मुझे तो वह भी एक व्यग्य लगता है। सोचने और प्रत्यक्ष देखने मे जो अन्तर है उसे ही प्रगाढ करने का यह उपक्रम है। यह सोचना—कि विश्व का नियम तो अचल है, जो जैसा है वैसा ही रहेगा, मानव सवमे श्रेष्ठ है और प्रकृति सदया है—वही मध्यवर्गीय आत्मतोप है जो यथार्थ से भागना भी चाहता है।—'सोचने को क्या रह गया है' के वाद जो चित्र आता है वह कहता है—अभी वहुत कुछ है—

'एक ओर पथ के, कृष्ण काय
ककाल शेप नर मृत्यु प्राय
वैठा सशरीर, दैन्य दुर्वल
भिक्षा को उठा, दृष्टि निश्चल
अति क्षीण कंठ, है तीव्र श्वास
जीता ज्यों जीवन से उदास' (पृ० २४)

सवसे वडा प्रश्न तो यही है कि वह ककाल कौन-सा शाप ढो रहा है। यह प्रश्न सदा

से रहा—उत्तर विहीन । जो बडी-बडी दया का उदाहरण है—वह पैसा है । दान के पीछे जिस पूंजीवाद व्यवस्था का हाथ है वह यहां अनावृत्त है । विप्रवर—धार्मिक सज्जन पुरुष भी वानरो को मालपुए खिलाकर चले गए थे, लेकिन क्षुधार्त मानव ककाल खडा रह गया—समाज की यह प्रवचना है ।—'बोला मे—धन्य श्रेष्ठ मानव' में भर्त्सना और तिरस्कार उस पूर्व-चिन्तना[1] पर है जो मानव को सृष्टि मे श्रेष्ठ मानकर चली है, जो जाने कितने पीछे की कडी है । इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोडने वाली का चित्र उतना ही उदात्त है जितना परिमल की विधवा का, लेकिन वहां वह व्यग्य और तीव्र सर-सधान नही है जो 'तोडती पत्थर' मे है । साधारण और दलित वर्गों के प्रति जो सहानुभूति इन कविताओ में व्यक्त हुई है वही प्रगतिवादी धारा का केन्द्र बनी है । पूंजीवादी सभ्यता का चित्र जो है वह तत्कालीन साहित्य मे अकेला है । साहित्य मे मार्क्सवादी भौतिकवाद का अभी नाम ही सुना जा रहा था, श्रमिक और सर्वहारा अभी आकर्षण के विषय ही थे और निराला ने काव्य मे श्रमिक का यह आख्यान दिया । पूंजीपतियो पर यह हथौडे का प्रहार हुआ । वेदान्तिक दर्शन से काव्य सँवारने वाले और 'जुही की कली' लिखने वाले कवि की यह दलित, शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति है, इसे आने वाला युग आश्चर्य से देखेगा । "भारत माता ग्रामवासिनी खेतो मे फैला है धूल भरा आंचल"[2] के स्थान पर तोडती पत्थर की भारत माता का चित्र निरीक्षण, सवेदना और यथार्थ मे अकेला है । कवि अपनी सवेदना और विषय को सीमित नही कर सकता उसका विस्तार ही करना होगा तभी कवि-कर्म का साफल्य है । 'तोडती पत्थर' की भारत माता ग्राम-वासिनी ही नही श्रमिक वधू भी है । एक समीक्षक का यह मूल्याकन उचित है कि यह कविता एक ओर तो मार्गी है दूसरी ओर वह पत्थर तोड तोडकर नये युग का मार्ग भी बनाती है ।[3] यह मार्ग प्रगतिवादी कविता का था जिसे 'तोडती पत्थर' ने बनाया । इस साधारण भाषा मे भी भाव की सफल व्यजना तोडती पत्थर करती है—

> कोई न छायादार
> पेड वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार—
> गुरु हथौडा हाथ
> करती बार-बार प्रहार
> सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार ।'[4]

यहां गुरु हथौडे की चोट पत्थर पर पडने के साथ ही अट्टालिका पर भी पडती है । वह जहां बैठी है वहां पेड की छाया भी नही है और अट्टालिका तरु-मालिका से सजा

१—"सोचा—विश्वनियम अचल
सबमे हैं श्रेष्ठ धन्य मानव ।" पृ० २३

२ —पत ग्राम्या

३—पृ० ७९

४—नरेन्द्र शर्मा

है। समाज के विपण्ण यथार्थ का यह विरोवाभास है। भर बंधा यौवन और नत नयन में यौवन के चित्र के साथ पवित्र सयम है। अन्तिम "मैं तोडती पत्थर" से पत्थर हृदय को भग्न करने का भाव भी आता है।[1] यहाँ निराला के वर्णन और सकेत की कला का परिष्कार है—'वे किसान की नई वहू की आँखें' ग्रामीण वधू के आश्रय से उस जीवन का सश्लेषण है। 'ज्यो हरीतिमा मे बैठे दो विहग बन्द कर पाँखें' मे उपमा का यह प्रयोग चित्र की पूरी व्यजना देता है और यही उसकी मूल शक्ति है। नई वहू की आँखें वैसे ही हैं जैसे कि दो विहग आँखें वन्द कर हरीतिमा की ओट मे बैठ जायँ। वे उडकर दूर नही पहुँच रहे (वहू की सलज्ज और सकोचमुद्रा) यद्यपि उनकी शक्ति ऐसी है (वहू की कल्पनाओ मे सुख देखने की लालसा है—भले वह प्राप्त न कर सके) वे आँखें अपने को खिली हुई नही मानती, बँधी हुई जानती हैं। विश्व के वैभव से उन्हें कोई सरोकार नही, वे अपने को साम्राज्ञी नही मानती और अपने सपने सत्य नही कर सकी। (पख खोलकर दूर उडना)। यह ग्रामीण दरिद्रता की विपन्नता की व्यजना भी साथ-साथ है। किसान की नई वहू की आँखें तो माध्यम है, सकेत है, लक्ष्य उनकी अवस्था, जीवनगत विपन्नता का दिग्दर्शन है। जो धूल-धूसरित खडे हुए हैं उन्हे गले लगाने की लालसा निराला की अन्यतम है। सहज मे सर पर बोझ ले जाने वाले, बछडे को नहलाने वाले श्रमिक और ग्रामीणो के प्रति सहानुभूति मे बौद्धिकता नही भावावेश है, हार्दिक सवेदना है।

'वन वेला' का व्यग्य मध्यमवर्गीय बुद्धिवादी नारेवाजी पर है। यह व्यग्य उन राजपुत्रो पर है जो अपनी राजपुत्रता से विद्या खरीदते हैं, उन लक्षपतियो पर है जो भारत के विषय में शून्य ज्ञान रहकर भी राजनीति और साहित्य मे अपना अधिकार-दम्भ वताते हैं, उस पत्रकारिता पर है जो पूँजी पर आश्रित है, उन साम्यवादी नेताओ पर है जो रूस को पिता, गुरु मानकर भारत की अवहेलना कर जाते हैं। एक महानुभाव ने कहा है कि, 'वन वेला कवि की साहित्यिक हार का प्रतिरूप है। उसका व्यग्य उनकी साहित्यिक हार के कारण ही तीक्ष्ण हो गया है।' मैं समझता हूँ यह उनकी साहित्यिक विजय का प्रतिरूप है। यहाँ एक साहित्यिक को आत्मतोष और परितोष, एक राजपुत्र, एक लक्षपति-पुत्र-नेता, साम्यवादी-नारेवाज़ नेता और एक पथ-भ्रष्ट पत्रकार के खोखले-पन की तुलना मे हुआ है। यह सही है कि कवि ने कहा है—"हो गया व्यर्थ जीवन, मैं रण गया हार।" लेकिन इसी के वाद की पक्ति है"

'सोचा न कभी

'अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी।' इसमे 'अपने भविष्य' की रचना पर, (स्वार्थ पर) चलने वालो का अनावरण किया है उसे कवि की हीनता-ग्रन्थि का परिणाम हम नही कहना चाहते, क्योकि न तो वहाँ प्रक्षेप (Projection) है, न उसका अप्रत्यक्ष व्यक्तीकरण। वह तो एक यथार्थ का अनावरण मात्र है। कविता की पूरी अन्विति (वेला का कथन-चरमसीमा) इस जीवन के मेले की वाह्य चमक के

१—साहित्य, अक्तूबर १९५० मे निराला के पत्र के आधार पर।

प्रति तिरस्कार दर्शाती है। वन मे कौडी के मोल बिकने वाली वेला की समता भी विश्व की कोई वस्तु नही कर सकती और अपनी कविता के प्रति विश्वास के साथ कवि अपनी साहित्यिक विजय को अनुभूत करता है। मन के उतार-चढाव के अनुरूप ही कविता की व्यक्त शैली मे भिन्नता आती गई है। कवि मन मे विचार आने के पूर्व तक उनकी परिमल कालीन कला का रूप है, जहाँ पृथ्वी और सूर्य का प्रणय चलता है, मध्य मे शैली यथार्थवादी, तीक्ष्ण चोट करने वाली और व्यग्य प्रधान है (जो आक्रोश को व्यक्त करती है) अत मे एक प्रशात मनोदशा को व्यक्त करने वाली गम्भीर और दार्शनिक कवि की सी यह उनके विजय के गर्व की अनुभूति भी व्यक्त करती है।

अनामिका की 'नर्गिस' महाकाव्यकार की प्रतिभा का बीज देती है। यहाँ कवि की कोमल और उदात्त कल्पना, दिव्य और भाव-औदात्य एक साथ व्यक्त हुआ है। पार्थिव-सौन्दर्य को भी स्वर्ग की दिव्यता मे देखने वाले कवि ने पृथ्वी को ही स्वर्ग से बढकर माना है। पुरुष और प्रकृति, ब्रह्म और आत्मा मे अद्वैत देखने वाले दार्शनिक कवि का यह भौतिक ससार का अनुराग है। "भौतिक रूप को लेकर इससे अच्छा और किसी छायावादी कवि ने नही कहा।"[1] यहाँ निराला की महाकवि कल्पना प्रमाणित होती है। कवि की चेतना उर्ध्व गमन करती है। उनकी कल्पना रवीन्द्र के उस पक्षी के समान है जो मुक्त होकर आकाश की ऊँचाई छूता तो है पर पृथ्वी का अचल भी नही भूलता। भौतिक और आध्यात्म का ऐसा समन्वय काव्य-जगत मे विरल है। गगा की स्वर की शाश्वत सत्य की स्पष्ट ध्वनि कहना, उसे दीर्घ काल के गौरव का प्रवाह मानना, गगा की पद्माकर से लेकर अब तक की प्रशस्तियो मे अकेला है। यहाँ गगा की सध्या का चित्र है। शीत बीतने पर दीर्घ दिन अस्त हो चुका है। (शीत काल मे दिन छोटे रात बडी होती है, लेकिन उसके बाद दिन बडे होने लगते हैं—यहाँ दीर्घ दिन की यही व्यजना है)। सध्या (मानवीकृत) स्निग्ध शात दृष्टि से, मन्द-मन्द गति से प्रिय की समाधि की ओर चली है।[2] (साँझ होते ही दृष्टि मे दिन का सा तेज नही होता, यह शात दृष्टि का तात्पर्य है।) साँझ होते ही दीप दीपत होते हैं, सन्ध्या मानवी के हाथ मे भी तारो के दीप हैं जो पार्थिव दीपों से अधिक भव्य हैं। पेडो पर पक्षियो का कलरव भी बन्द हो गया—(शात-दृष्टि) और गगा का ही कलरव—"प्रहत-तरग-कर ललित-तरल-ताल" से सुनाई दे रहा है। प्रकृति का सूक्ष्म चित्रण अलकरण और भाव-सगीत की समानता लेकर चला है।
चैत्र पक्ष (कृष्ण) की तृतीया के बाद का चन्द्र ज्योत्स्ना फैलाता है यह केवल एक उपमा मे पूरा हो गया है (नन्दन की अप्सरा धरा को विनिर्जन जान, उतरी समय करने का नैश गगा-स्नान) धरा और गगा का यह पहला महत्व है। इस पवित्र वातावरण और दिव्य चित्र की पृष्ठभूमि मे कवि चेतना उर्ध्वगमन करती है। वह सोचता है—"तत्व सूक्ष्म तर होता हुआ उर्ध्वगमन करता है। पदार्थ से विकसित

१—डा० रामविलास शर्मा निराला पृ० १५०
२—धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसत रजनी महादेवी।

होती हुई चेतना चिरन्तन तत्व मे समाहित होती है, इसीलिए महाम्बर श्रेष्ठ माना गया है। स्वर्ग भी सम्भवत इसीलिए पृथ्वी से श्रेष्ठ है और शरीर से महत् कल्पना है।—ज्योत्सस्ना सशरीर इस पृथ्वी पर खडी है। पृथ्वी का यह यौवन काल है। (वसन्त बिखरा है) हरे-भरे पर्वतो (स्तनो) पर कलियाँ (माला) खिली हुई हैं और पवन अपनी सुरभि से दिशा-कुमारियो का मन सींच रहा है। कवि सोच नही पाता कि पृथ्वी सुन्दर है श्रेष्ठ, अथवा स्वर्ग ? कि प्रणय के निर्निमेष नयनो सी नर्गिस कहती है—

"आई जो परी पृथ्वी पर
स्वर्ग की, इसी से हो गई है क्या सुन्दर तर ?
पार कर अन्धकार आई तो आकाश पर
सत्य कहो, मित्र, नहीं सकी स्वर्ग प्राप्त कर ?
कौन अधिक सुन्दर, देह अथवा आँखें ?
चाहते भी जिसे तुम-पक्षी वह या कि पांखे ?
स्वर्ग झुक आये यदि धरा पर तो सुन्दर
या कि धरा चढ़े स्वर्ग पर तो सुघर ?" (पृ० १८८)

भौतिक और आध्यात्म का यह द्वन्द्व दार्शनिक मतवादो का प्रधान केन्द्र रहा है। निराला ने यह गुत्थी काव्य मे सुलझाई है। उनका कहना है कि, इस जगत को ही दिव्यता से समन्वित कर लो—फिर वही श्रेष्ठ हो जायगा। वस्तुत यह दृष्टि अद्वैत-वादी की है जो पदार्थ में भी चेतना का स्फुरण देखता है और कही भी द्वैत नही मानता। महत्व न तो देह का है न पक्षी का। महत्व है दृष्टि का पखो का, साधन का। नर्गिस की कल्पना मे महाकाव्यात्मक मूर्ति विधान का उपयोग हुआ है (Epic Image) प्रकृति के चित्रो मे इसका रूप निखरता है।

अनामिका मे सास्कृतिक कलाकार का परिवेश भी मिलता है। यहाँ निराला भारतीय सस्कृति के आख्याता के रूप मे प्रतिष्ठित हैं। वस्तुत. छायावादी युग से लेकर और कदाचित सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य मे तुलसी और प्रसाद को छोडकर सास्कृतिक कलाकार की सही विशेषता निराला मे ही मिलती है। भारतीय सस्कृति के मूल-तत्वो को उन्होने समझा है और उनका अभिव्यजन काव्य में किया है। 'खडहर के प्रति' मे भारत के अतीत गौरव का आख्यान है। उस गौरव के प्रति यह भावात्मक सयोग है। यह खडहर भारतीयो को उनके विस्मृत गौरव की याद दिलाकर जागृति की प्रेरणा देता है। यह बीते युग मे भारत की सास्कृतिक विजय है। आज वह मृत्यु की राह देख रहा है, आसन्न-मृत है और अपनी सन्तानो से बूँद भर पानी को तरसता है। (कवि के सस्कृति प्रेम का यह भावोच्छवाह है) भारतीयो मे अपनी सांस्कृतिक-निधि को विस्मृत करने की प्रवृत्ति पर खडहर के आँसू कवि की वेदना को व्यक्त करते हैं। परिमल मे भी 'यमुना' अतीत के गीत गाती थी, उसकी कल-कल ध्वनि अब भी विगत सौभाग्य की गाथा कहती है ('यहीं') भारतीय सस्कृति की प्रेम-प्रधानता पर आग्रह

किया गया है। यमुना को देखकर कवि को मधुर मलय मे समुद्र की तरग की हिलार लेती गूँज याद आती है। मिलनमय चुम्बन की शत-शत कथाएँ, प्रेम-पुलकित असख्य नयनो का प्रणय-दान और स्नेहिल न जाने कितने रासो की कथा लेकर यमुना अपने मे लीन बह रही है। भारतीय सस्कृति के एक पक्ष का यह अतीत गान है और अपनी मूल भावना मे यह पुनरुत्थान युग की प्रवृत्ति का द्योतन करता है। 'दिल्ली' मे महाभारत से लेकर अग्रेजो के समय तक ही पौराणिक और ऐतिहासिक पीठिका पर भारतीय सस्कृति के लघु स्मरण चित्र हैं। दिल्ली केन्द्र बनकर चित्रो का आवर्तन करती है। ऐतिहासिक और पौराणिक चरित्रों को केन्द्र बनाकर सस्कृति का आख्यान किया गया है, जिसमे निराला की वीर-पूजा भावना भी व्यक्त होती है। 'सम्राट एडवर्ड के प्रति' मे निराला ने सस्कृति के एक नये परिवेश का स्वागत किया है। यह प्रशस्ति उन प्रशस्तियो से भिन्न है जो 'महारानी विक्टोरिया' के लिए उस काल मे लिखी गई थी। उदात्त काव्यात्मक शैली और शुद्ध मानववादी आधार पर सम्राट का नवीन सस्कृति की पुकार पर सिंहासन त्यागना और स्वतत्र विचारो को प्रश्रय देना कवि की श्रद्धा का विषय बनता है। इन चार कविताओ मे जैमिनी, पतजलि से लेकर महाभारत, राजपूत, मुस्लिम और आधुनिक काल की सस्कृति का एक लघु आख्यान मिल जाता है। बिना किसी पक्षपात के सामासिक सस्कृति का उल्लेख यहाँ हुआ है। इतने अल्प रूप मे पूरी सास्कृतिक विशेषताओ का काव्यात्मक आख्यान निराला की ही विशेषता है।

अनामिका मे विषयो का यह वैविध्य है, कला की यह व्यापकता है और कवि-कर्म के प्रति यह सचेत जागरूकता है। 'सरोज स्मृति' और 'राम की शक्ति पूजा' मे महाकाव्यात्मक विशेषताओ का समन्वय है और इनका विशेष अध्ययन इसी परिपार्श्व मे किया जाना चाहिए। निराला के सारे परिवेश, व्यापक दृष्टि और असाधारण व्यक्तित्व की व्यजना मे अनामिका का सग्रह सूक्ष्म है। रवीन्द्र और विवेकानन्द की रचनाओ के कुछ अनुवाद भी इसमे सग्रहीत हैं। लेकिन उन्हे स्वतत्र कलाकृति न मानकर हमे छोडना पडता है। कल्पना और व्यक्त अव्यक्त सूक्ष्म सौन्दय के चित्रकार स्रष्टा कवि से लेकर गीतकार, अद्वैतवादी-दार्शनिक, रहस्यवादी कवि, प्रगतिशील तत्वो और यथार्थवादी शैली के कवि तथा सास्कृतिक कलाकार के इन परिवेशो के साथ महत् काव्य के औदात्य से समन्वित रचनाओ के कारण ही हम अनामिका को उनका प्रतिनिधि काव्य-सग्रह कहते हैं।

[२]

कवि की प्रतिभा और सवेदना किसी नियम अथवा परिपाटी से बँधी नही रहती। काव्य की विभिन्न रूपात्मक वर्गीकरण भी उसकी शक्ति की सीमाये नही है। यही कारण है कि महाकाव्य की जो सीमाए और शास्त्र नियम-बद्धता-शास्त्रीय समीक्षा आलेखित है, उसी रूप मे वे आज गृहीत नही हैं और 'कामायनी' महाकाव्य

की अधिकृति पर कदाचित महाकाव्य की शैली सम्बन्धी मान्यताओ मे हमे परिवर्तन करना होगा। जो विशेषता और लक्षण होमर और वर्जिल के काल मे उनके द्वारा प्रणीत महाकाव्यो के आधार पर उपधीत हुए थे उनका पालन दाँते की 'डिवाइन कामेडी' नही करती। फिर भी कामायनी महाकाव्य है और डिवाइन कामेडी भी। प्रसाद भी महाकवि हैं और दाँते भी। 'कामेडी' और 'कामायनी' की व्यापकता, शैली और प्रभाव के औदात्य ने ही समीक्षको को उन्हे महाकाव्य कहने को विवश किया। इसी प्रकार शेली और कीट्स ने भी किसी शास्त्रीय नियमबद्ध महाकाव्य की रचना नही की। लेकिन 'प्रोमीथियस अनबाउन्ड' और 'हाइपीरियन' महाकाव्य की गरिमा से मुखर हैं। वस्तुत शास्त्रो के नियमो के विषय मे समीक्षक भी एक मत नही है और महाकवि उनमे अपने अनुसार परिवर्तन करते जाते हैं, उनसे विद्रोह करते हैं। महाकाव्य और महाकवि ऐसे शब्द-विशेषण है, अथवा काव्य-लक्षण के द्योतक शब्द हैं जो सापेक्षिक होने चाहिए। वे कवि की सृजनात्मक प्रतिभा के आधार पर ही प्रयुक्त होने चाहिए।

इसी सन्दर्भ मे निराला की तीन[1] विशिष्ट वृहत्तर रचनाओ मे महाकवि की प्रतिभा और औदात्य का स्फुरण देखने का हमारा लक्ष्य है। मेरा यह विश्वास है कि यद्यपि निराला ने किसी महाकाव्य की रचना नही की, तथापि उनकी इन कृतियो मे उसका औदात्य है, गरिमा है और वे सम्मिलित प्रभाव मे किसी महाकाव्य से कम नही है। इस विश्वास को ही परखने का प्रयत्न यह है।

सरोज-स्मृति

सरोज-स्मृति एक श्रेष्ठ एलेजी मानी गई है। सामान्यत एलेजी, विलाप गीत, व्यक्तिगत वियोग, और दुख का प्रयत्क्ष भावोच्छ्वास है। इसका आधार मूलत भावनाओ और अभिव्यक्ति के प्रति एकान्तिक सत्य होता है। ग्रीक-साहित्य मे जहाँ कि इस शब्द का प्रथम उल्लेख मिलता है—युद्ध-गीत, प्रस्थान-गीत, प्रेम-गीत के अर्थो मे भी वह प्रयुक्त हुआ है। लेकिन प्रचलित अर्थ मे यह वियोग गीत के रूप मे ही प्रयुक्त होता है। अधिकाशत ये गीत प्रिय-जन की मृत्यु पर भावो के निविड उच्छ्वास से समन्वित होते हैं। इसके अतिरिक्त इसमे कुछ इतर विषयो का अन्तर्भाव हो जाता है जैसे एकान्तिक प्रेम—जो अपनी ध्वनि मे गम्भीर और कवि की वेदना से प्रगाढ होता है। शोक गीत के लिए यह आवश्यक माना गया है[2] कि अभाव की अनुभूति तीव्र और तात्कालिक हो जो अपनी तीव्रता के कारण वेदना का उद्रेक करे, पर साथ ही कलात्मक भी हो। इन गीतो मे कवि अधिकाशत बीते दिनो की याद करता है, उन बीती घटनाओ की याद आती है जो उस व्यक्ति से सम्बद्ध होती है।[3] इन गीतो के अन्त में

१—(१) सरोज-स्मृति (२) राम की शक्ति-पूजा (३) तुलसीदास।
2—Lyrical Forms in English : Hepple : P. 166
3—Arnold : A southern Night

वहुधा विलाप और वेदना के पश्चात् एक प्रशात मनोदशा भी मिलती है। कुछ शो क-गीतो मे उदास वातावरण के पश्चात् एक प्रसन्नता का वातावरण भी मिलता है, क्योंकि कवि आगत जीवन पर विश्वास करता है। निराला के इस गीत मे ऐसा ही है। अन्य प्रगीत भेदो की अपेक्षा शोक गीत के लिए तीव्रतम अनुभूतियो की अधिक अपेक्षा होती है। उसका सृजन भी एक विशेष मानसिक अवस्था मे होता है। वह भावो की प्रवर्तक की अपेक्षा प्रतिक्षेपक होती है और गम्भीरता के वातावरण (जो अधिकाशत उदास भी होता है) से आपूरित होती है।[1] यो तो विलाप गीत अभिव्यक्ति का एक स्वाभाविक रूप ही है और यह भी नही कहा जा सकता कि शोक के कवियो का ही वह एकाधिकार है, तथापि इस प्रकार की कविताओ का मूल लक्ष्य भावों के प्रतिक्षेप के साथ उन्हे प्रेरित करना भी होता है। बौद्धिकता के प्रति उनकी अपील समान नही होती।

सरोज-स्मृति की केन्द्रीय पक्तियाँ ये हैं—

'दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ, आज जो नहीं कही।'

ये पक्तियाँ कवि के जीवन की सीमातीत सघर्ष प्रधानता मे उसकी आर्थिक विवशता-जन्य पीडा और वेदना को व्यजित करती हैं। 'सरोज-स्मृति' मे निराला का व्यक्तित्व और उनके जीवन की अधिकाश पीडा की मार्मिक मुखर व्यजना है। कथा के रूप मे एक छोटा-सा वृत्त है, जो सरोज के वाल्यकाल से लेकर उसके विवाह और मृत्यु तक ही घटनाओ को समेटता है, इसमे भी चयन ही किया गया है—विस्तार वृत्त नही है। इससे कविता की वर्णनात्मकता भी वच गई है। कविता का आरम्भ सरोज की मृत्यु पर उसकी स्मृति से होता है। सरोज की मृत्यु पर निराला की आर्थिक परिस्थिति भयानक रूप से निराशाजनक थी। सरोज की आवश्यक सेवा-सुश्रुषा भी निराला न कर पाए। इसकी वेदना ही कवि को कचोटती है। (मैं पिता निरर्थक—) अपने स्वार्थ का समर निराला सदैव हारते आए। सम्पादको के यहाँ से लौटी हुई रचनाएँ लेकर निराश मन निराला आकाश ताका करते थे। इसी अवसर पर निराला के दूसरे विवाह का प्रस्ताव आया। निराला को स्वय नियति से सघर्ष करना पडा (खण्डित करने को भाग्य अक)। इस सघर्ष मे वे सफल भी हुए और ज्योतिषी की वाणी असत्य प्रमाणित हुई। अपनी आर्थिक विपन्नता मे ही सरोज के विवाह का प्रश्न सामने आया और जन्म से सामाजिक रूढियो और परम्पराओं के विद्रोही निराला ने कान्यकुब्ज समाज की रूढ रीतिओ का उल्लघन किया। विवाह के कुछ ही दिन के वाद सरोज की अकाल मृत्यु हो गई। निराला अपनी आर्थिक विवशता मे विकल ही वने आए। पुत्री के प्रति पिता का अपेक्षाकृत अधिक प्रेम स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक भित्ति पर आधारित है। सरोज की असामयिक मृत्यु पर—जो अधिकाशत आर्थिक अभाव के कारण थी—निराला की वेदना और दुख अपनी

1—Judgement in Literature. Worsfold · P 98

निविडता मे व्यक्त हो गया है, जो सरोज की स्मृति में आदि से अंत तक शोकमय गभीर वातावरण की सृष्टि करता है।

निराला की इस रचना मे काव्य के मर्म के साथ कवि का उज्ज्वल व्यक्तित्व भी अपनी समाजिक प्रतिक्रियाओ के साथ व्यक्त हुआ है। व्यथा का इतना प्रकाशन सामान्यत: युगीन किसी कृति मे नही देखा गया। और यह व्यथा भी कवि की सामाजिक चेतना पर हावी नहीं होती और न रुदन से कवि इतना अभिभूत हो गया है कि कविता उसी से ओत-प्रोत हो। फिर भी घनीभूत पीडा की यह व्यजना 'आंसू'[1] के बाद अकेली है। कविता के शोक और उदास वातावरण मे जो करुणा रस का सचार हुआ है उसकी उद्दीपक स्मृतियो मे सर्व प्रथम सरोज की बाल्यावस्था की स्मृति है। इस रूप मे बाल-क्रीडा का स्वाभाविक चित्र उभरता है। इसमे भी प्रभाव और प्रवृति पर ही बल है, वर्णन पर नही। करुण-रस-प्रधान इस रचना में वात्सल्य और शृ गार के भी प्रसग हैं और कान्यकुब्ज समाज पर व्यग्य करते हुए विनोद और हास्य के। शृ गार के चित्रो मे निराला की निर्लिप्त तटस्थता का आख्यान बहुल है। इस दृष्टि से शृ गार के स्वस्थ चित्रण के वे एकमात्र कलाकार हैं। अपनी पुत्री के यौवन का रूप वर्णन करने वाला कवि अकेला निराला है। निरपेक्ष सौन्दर्य का यह उदाहरण हिन्दी की अपनी निधि है।

"धीरे-धीरे बढ़ा चरण
बाल्य की केलियों का प्रागण
कर पार, लावण्य भार थर-थर
कांपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकौश नव वीणा पर" (पृ० १८६)

मालकौश ऋषभ् पचम वर्ज का भैरवी ठाट का राग है। (कुछ इसे आसावरी का भी मानते हैं) जो रात्रि के तीसरे पहर मे गाया जाता है। यह उच्च भावो का गम्भीर प्रकृति का राग है और इसके स्वर मृदु होते है[2]। सरोज के तारुण्य आगमन को वीणा पर गाए गए मालकौश से उपमा देकर निराला ने उसकी प्रकृत व्यजना के साथ उसकी पवित्रता की रक्षा की है। प्रकृति का गाम्भीर्य और स्वर की मृदुलता यौवन के प्राथमिक लक्षण हैं। यहा सगीत की उपमा से काव्य का शृ गार कर कवि ने भावो के औदात्य की भी रक्षा कर ली है। इसके पश्चात् सरोज की तरुणावस्था का जो चित्र है उसमे नैश-स्वप्न की मदगति, ऊषा का जागरण, किसलय दलो का खिलना, दिव्य बधन मे बंधी देह यष्टि के उल्लेख—सब यौवन लक्षणो के प्रतीकार्थ हैं। सरोज के कठ की तुलना उसकी मां की मधुरिमा से करके पूर्ण स्वस्थ यौवन का चित्र भाव दे दिया है। यह निराला की काव्य-शक्ति और औदात्य का प्रमाण है।

१—जयशकर प्रसाद

२—प० विष्णु नारायण भातखडे क्रमिक पुस्तक माला तीसरी पुस्तक : पृ० ६६४

होगा।[1] निराला में भोक्ता और सर्जक के इस प्रथकत्व का उदाहरण सरोज-स्मृति मे पूर्णता से है। यों तो इस अवधारणा का जितना व्यवहारिक रूप निराला के काव्य में मिलता है उतना हिन्दी मे अन्यत्र नही है। निराला ने अपने वैयक्तिक सुख-दुख का रोना काव्य मे नही रोया है, वैयक्तिक राग-द्वेष वहाँ नही हैं और यही कारण है की आत्माभिव्यक्ति की गीतियो के उस युग में निराला का भोक्ता से यह पृथकत्व एक विस्मय आश्चर्य का कारण है। ऊपर मैंने कहा है कि सरोज स्मृति में आत्म-परक तत्व अधिक उभरा है। मेरे कथन मे यहाँ विरोधाभास हो सकता है, लेकिन मेरा उद्देश्य यही देखन का है कि भोक्ता की अनुभूतियो की तीव्रता के साथ भी सर्जक की मनीषा पृथक है— वही पूर्ण कलाकार का रूप है। सरोज-स्मृति की प्रेरणा भोक्ता की अपनी वस्तु है लेकिन मुक्त-प्राणी से हटकर जिस तटस्थता और निर्लिप्तता से 'स्मृति' के चित्र आए हैं, वे निर्वैयक्तिक कला के उदाहरण हैं। व्यक्तित्व से हटकर निराला ने समाज, परिवार और जीवन के चित्र भी दिए हैं। भोक्ता की वेदना से ही ओत-प्रोत रचना नही है। चित्रो मे वैयक्तिक रागद्वेष नही है—कान्यकुब्ज समाज की स्थिति भी चित्रित रूप से अधिक अच्छी नही है। उस समाज की दहेज प्रथा और वैवाहिक रीतियो की कट्टरता छिपी नही है। उसके प्रति व्यग्य को भी हम राग-द्वेषात्मक नही मानने। पुत्री की तरुणावस्था का वर्णन ही उनकी निर्वैयक्तिक कला का सबसे बडा उदाहरण है। वही एक मात्र कवि है, व्यक्ति है जो अपनी कन्या की पुष्प-सेज सँवार सका है, माता की सारी शिक्षा पुत्री को दे सका है— फिर भी निर्लिप्त, तटस्थ, योगी सा इस आत्मपरक गीति मे भी कवि की सामाजिक दृष्टि धुँधली नही पडती। सर्जक प्रतिभा का यह अप्रतिम उदाहरण है। भावो की विविधता के साथ व्यापकता, कलाकार की निस्सग तटस्थता और व्यक्तित्व के उज्वल प्रकाश मे यह रचना निराला-काव्य मे ही नही, हिन्दी काव्य मे एक ऐतिहासिक निधि है।

राम की शक्ति पूजा

पौराणिक आधार और वस्तु योजना—

देवी-भागवत की कथा है कि अतिम दिन के युद्ध के पूर्व राम ने देवी की पूजा की थी। नारद के आदेश पर रामचन्द्र ने नवरात्रि का व्रत लिया था और देवी को प्रसन्न किया था। राम की शक्ति-पूजा का मूल आधार यही पौराणिक आख्यान है। शिव महिम्न स्त्रोत्र मे एक श्लोक आता है।[2] जिसमे विष्णु द्वारा शिव की भक्ति का उल्लेख हुआ है। इसी में पूजा के लिए एक सहस्त्र कमल चढाने का उल्लेख भी है। पूजा के अवसर पर एक कमल की कमी पडने पर विष्णु ने पुडरी-काक्ष होने के नाते अपना एक नयन अर्पित करने का उद्यम किया था और शिव प्रसन्न हुए थे। पवन

1—T. S Eliot : Selected Essays · P. 18

२— शिव महिम्न स्तोत्र · श्लोक १६

परिवर्त—सात

प्रगति और प्रयोग

प्रगति और प्रयोग

सन् ४२ भारत के राष्ट्रीय जीवन में ऐतिहासिक वर्ष है। इस वर्ष बगाल का अकाल पडा, भारत के राजनीतिक जीवन मे एक दिग्भ्रम सा आया। इस दिग्भ्रम और अस्त-व्यस्त स्थिति का साहित्य पर भी प्रभाव पडा। जागरूक साहित्यकार होने के नाते बगाल के अकाल का प्रभाव निराला पर कम नही पडा। सस्मरणो से उनकी प्रभावित मानसिक स्थिति का पता चलता है। निरन्तर व्यक्तिगत आर्थिक विषमताओं से उनमे एक वितृष्णा का भाव आ गया था और सामाजिक क्षेत्र मे भी यही सब देखकर कवि-चेतना पर जो प्रभाव पडा वह उनके व्यग्य प्रधान होने की पृष्ठभूमि हो सकती है। समाज के पीडित और शोषित वर्गों के प्रति निराला की भावात्मक सहानुभूति सदैव रही है और क्रियात्मक-सहानुभूति का प्रकाशन भी उनके जीवन की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओ से होता है। यहाँ आकर निराला ने काव्य को सामाजिक व्याख्या और व्यग्य का आधार बनाया। प्रगति और प्रयोग से हमारा तात्पर्य इसी काल के काव्य से है। इस व्यग्य-काव्य मे भी निराला ने जीवन के सामान्य मूल्यो और मानववादी दृष्टिकोण को ही अपना प्रस्थान बनाया। व्यग्य और दुखान्त काव्य मे अन्तर है।[1] समान बिन्दुओ से अधिक उनमे अन्तर की रेखायें स्पष्ट है। दुखान्त काव्य की अबौद्धिकता और भावात्मक पृष्ठभूमि के स्थान पर व्यग्य काव्य मे जीवन का एक बौद्धिक और समीक्षातत्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जाता है। दुखान्त काव्य जहाँ भावो और अदृष्ट शक्तियो से परिचालित होता है वहाँ व्यग्य काव्य जीवन के नैतिक मूल्यो का यथार्थवादी आकलन करता है। व्यग्य काव्य मे किसी भी यथार्थ का सस्कृत तत्वो से आवृत्त करने का मोह नही होता। वह जीवन को उसके अनावृत्त रूप मे ही देखता है—जैसा है वैसा ही चित्रित करता है। यह कला का यथार्थवादी दृष्टिकोण है। प्राचीन युग मे होरेस ने व्यग्य काव्य को व्यष्टिगत और समष्टिगत दोषो के परिमार्जन के लिए सफल बताया था। जहाँ और विवाद एव प्रयोग सफल नही हो पाते वहाँ व्यग्य सफल होता है। इसमे बात को सक्षिप्त और सकेत से कहने की शैली अपनाई जाती है। यह अपने लक्ष्य पर सीधी चोट करती है। मनोवैज्ञानिको के अनुसार व्यग्य काव्य के पीछे एक मौलिक और क्रान्तिदर्शी प्रतिभा

1—Yale Review

वाले व्यक्तित्व का बल होता है। जो जीवन के प्रारम्भ से ही संघर्षों मे पलते हैं और समाज का अधिक निकटता से अवलोकन करते हैं, उसके वैषम्य से परिचित होते हैं, वे ही सफल व्यंग्यकार हो सकते हैं। व्यग्य की पृष्ठभूमि मे एक हीन-भाव की प्रेरणा भी मानी गई है लेकिन हम उसे हर कही प्रयोजनीय नही मानते। व्यग्य जब व्यक्ति तक ही सीमित हो तब कदाचित ऐसा होता हो, लेकिन जो व्यग्य सामाजिक लक्ष्य से और जीवन की विस्तृत भूमि पर दोषो के परिहार के लिए कल्याण-भावना से लिखा जाता है, ऐसा नही होता। निराला के व्यग्य उनकी स्वाभाविक स्वच्छन्दता और रुढि-विद्रोह व्यक्तित्व के ही प्रकाश हैं। सफल व्यग्यकार के लिए अपने विषय से तादात्म्य स्थापित करने की प्राथमिक आवश्यकता है, क्योकि वह केवल कल्पना की वस्तु नही है। वह जीवन के क्षेत्र में प्रभावो की सृष्टि है। अत व्यग्य-काव्य को जीवन के अधिक समीप कहा जाय तो कदाचित अत्युक्ति न होगी। वह साहित्य का यथार्थवादी, प्रगतिशील दृष्टिकोण है। निराला के व्यक्तित्व की यह मूलभूत विशेषता रही है कि वे साधारण और सामान्य जीवन से इतने घुल-मिल जाते हैं कि लगभग एकरस भी हो जाते हैं। यह उनके व्यग्य के हित मे भला ही हुआ है। इससे वे समाज की अशक्तियो, सीमाओ से अधिक निकट का परिचय रख सके है, उन्हें अनावृत्त कर सके हैं। इसीलिये उनके ऐसा "शिष्ट व्यग्य, सच्ची अन्तर्व्यंथा से निकला हुआ, जो पढते ही सहृदय को प्रभावित भी कर सके, साहित्य मे बहुत कम देखने को मिलता है।"[1] इस प्रगति और व्यग्य-प्रधान काव्य मे निराला की सामाजिक और यथार्थ दृष्टि अधिक प्रकाश मे आई है। छन्द और भाव तथा भाषा की स्वच्छन्दतावादी क्रान्ति के बाद यह दूसरी क्रान्ति निराला ने की जो हिन्दी काव्य मे सामाजिक-चेतना और यथार्थवादी दृष्टिकोण तथा प्रगतिशील मानवदण्डो को लेकर चली। यहाँ आकर उनके काव्य मे एक नया सौन्दर्य-बोध, एक नयी अभिव्यजना-प्रणाली और काव्यभूमि मिलती है। यह निराला के सवेदन-शील व्यक्तित्व का एक नया पार्श्व है जहाँ मानवता के प्रति आत्मीयता के द्वारा एक नये समाज की रचना की प्रेरणा कार्य करती है। आधुनिक साहित्य के सम्बन्ध मे प्रगति और प्रयोग का इतिहास कुकुरमुत्ता और नये पत्ते से आरम्भ हुआ, ऐसा माना जाता है[2] और इस मानने मे अति-व्याप्ति भले हो, वस्तुत. हम निराला के देय के विषय मे अधिक जागरूक दृष्टि का परिचय देते है।

कुकुरमुत्ता

कुकुरमुत्ता निराला की इसी सामाजिक चेतना, यथार्थ दृष्टि, प्रगतिशील विचारधारा और व्यग्य-वृत्ति का परिणाम है, जिसमे जीवन के विविध पार्श्वो पर व्यग्य किया है। इतना तो निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि कुकरमुत्ता के पीछे कोई साधारण काव्यात्मा कार्य नहीं करती। जितना तीव्र और मर्मभेदी उसका व्यग्य है

१—डा० रामविलास शर्मा स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य · पृ० १२५
२—डा० प्रेमनारायण शुक्ल · हिन्दी साहित्य मे विविधवाद पृ० ३४६

उतनी ही व्यापक उसकी दृष्टि है। उसके व्यग्य का लक्ष्य एक नही, अनेकोन्मुख है। "लोगो मे इस बात पर मतभेद रहा कि निराला जी इसमे किस पर व्यग्य करना चाहते हैं। इस मतभेद का कारण कविता की अस्पष्टता है जो युद्धकाल मे उनके विश्वासो के डिग जाने से पैदा हुई है—कुकरमुत्ता का व्यग्य जहाँ गुलाव को मारता है वहाँ खुद उसे भी हास्यास्पद बना देता है।"[1] कुछ लोगो का विचार है कि 'प्रतिक्रिया की झोक मे कही-कही अनर्गल बहुत कुछ कहा गया है। और कुकुरमुत्ता मे न तो व्यग्य ही निखराया है न उसका कोई स्तर ही है, प्रयोग नवीन अवश्य है परन्तु अवाछनीय नवीनता, ग्राह्य-प्राचीनता से भी हानिकर हो जाती है। ऐसा लगता है कि निराला विरोधो के बीच मे गुजर कर प्रत्येक वस्तु का उपहास करता हुआ अपने प्रति किए गए अत्याचारो का बदला लेना चाहता है।[2]

मैं समझता हूँ कि यह 'कुकुरमुत्ता' सरीखे साधारण शैली मे लिखे गए चुभते व्यग्य के प्रति और उनके व्यक्तित्व के प्रति अन्याय है कि निराला ने अत्यन्त साधारण शब्दो का प्रयोग किया है, लेकिन यह असफलता नही व्यग्य की सफलता है। मेरी दृष्टि मे कुकुरमुत्ता का व्यग्य विविध क्षेत्रीय, तीव्र है। जो भी वर्ग कुकुरमुत्ता के प्रति मोह दिखाकर अपना प्रतीक मानेगा, वही व्यग्य का शिकार होगा। इसीलिए मैंने कहा है कि इस रचना के पीछे कोई असाधारण प्रतिभा और लक्ष्य कार्य कर रहा है। कुकुरमुत्ता की कथा सीधी और सरल है और उसे दुहराने की आवश्यकता नही। मूलत उसके उद्देश्य व्यग्य के विषय मे ही भ्रम फैले हुए हैं, अत उन्हे ही स्पष्ट किया जाय।

कुकुरमुत्ता का पहला व्यग्य तो उस समाज पर है जहाँ उच्च वर्गों का आधिपत्य होता है और निम्न वर्ग उपेक्षित रहता है। कुकुरमुत्ता यहाँ निम्न वर्ग का प्रतीक है और गुलाब उच्च वर्ग का। गुलाब की बाढ मे मालियो, नौकरो का पसीना, घाम से त्रस्त होना, उच्च वर्ग की (पूँजीपतियो की कहिए!) उस शोषण-वृत्ति को उभारता है, जो श्रमिक तथा सर्वहारा की पूँजी पर विलास और सुख मनाता है। गोली और बहार की मित्रता को मानववाद पर आधारित बताया गया है।[3] (पर यह ठीक नही।) यह वर्ग-सघर्ष के स्थान पर वर्ग-सामजस्य की भावी समाज-रचना का स्वप्न है जहाँ उच्च और निम्न वर्ग मे कोई भेद न होगा। दोनो मे सहानुभूति पूर्वक और एक-दूसरे का समादर होगा। मुझे यह कल्पना क्लिष्ट लगती है और व्यग्य की तीव्रता पूरी नही उभरती। इसके स्पष्टीकरण के पहले कुकुरमुत्ता के व्यग्य का दूसरा लक्ष्य देख लेना चाहिए जिससे भी यह स्पष्ट हो जायगा। यह कुकुरमुत्ता उन

१—डा० रामविलास शर्मा निराला पृ० १८८-१८६

२—विश्वम्भर नाथ उपाध्याय · कवि निराला काव्य-कला और कृतिया पृ० २१६, २१६

३—बच्चनसिंह क्रान्तिकारी कवि निराला पृ० १२५

साम्यवादी नेताओ का प्रतीक भी है जो अपने समर्थन मे वेदो से लेकर आज तक की ज्ञान-राशि को अपने चश्मे से देखते हैं।

कुकुरमुत्ते की वहक मे कही गई बातें अनर्गल नही, उनका व्यग्य उन तथाकथित साम्यवादी नेताओ पर है, उन कुत्सित बुद्धिवादियो पर है, जिनको विश्व की हर वस्तु मे अपना प्रपच दिखाई देता है और जो असम्बद्ध प्रलाप के पश्चात् शून्य मे ही तिरते रहते हैं। गोली और वहार का मेल भी कुछ-कुछ युद्ध के प्रथम वर्षो मे हुए जर्मनी और रूस का मेल है।[1] नवाव साहव का कुकुरमत्ता के प्रति आकस्मिक प्रेम उस उच्च वर्ग के वौद्धिक विलास का प्रतीक है जो हवा के साथ रुख वदलने का अवसरवादी दृष्टिकोण रखते हैं। जब नवाव ने देखा कि गोली (उच्च वर्ग का एक प्रतीक) कुकुर-मुत्ता (सर्वहारा जन) की प्रशसा करती है और उसका प्रभाव वढ रहा है तव वह भी कुकुरमुत्ता उगाने का (सर्वहारा वर्ग से मिल जाने का) विचार करते हैं। दुनिया से गुलाव मिटा दिए जाएँ और उनकी जगह कवाव वनाने के लिए कुकुरमुत्ते ही रह जाएँ। यह रूप-कभी चुस्त नही वैठता कहा गया है।[2] लेकिन मुझे लगता है कि यह रूपक उपरोक्त दृष्टिकोण को व्यक्त करने के लिए ही आया है। नवाव साहव का रुख प्रदर्शन प्रिय साम्यवादियो के प्रति है जो सर्वहारा का पक्ष, केवल अपने स्वार्थ के लिए केवल प्रदर्शन की प्रेरणा से लेते हैं। लेकिन, "कुकुरमुत्ता उगाया नही जाता" से फिर समस्या खडी होती है। इसका सकेत यो हो सकता है कि जिस सर्वहारा अथवा निम्न वर्ग का वह प्रतीक है उसकी कोई परम्परागत सस्कृति की जड नही होती।[3] यदि यह आक्षेप्य भी हो तो उसका सकेत यो होगा कि साम्यवादी यह विचारधारा और सर्व-हारा की सास्कृतिक भावी रचना एक नैसर्गिक आधार लेकर चले। कुकुरमुत्ता स्वय ऊगे, उगाए न ऊगे—नवाव की फैशनपरस्ती का शिकार वह न हो।

कुकुरमुत्ता मे व्यग्य तत्कालीन हिन्दी कविता मे तथा-कथित प्रगतिवादी और प्रयोगवादी धाराओ की अव्यवस्था और अराजकता के प्रति भी है। तत्कालीन प्रगति-वादी लेखको मे जो अनावश्यक जोश, एक-दूसरे के प्रति कुत्सा का भाव आया था, अनर्गल जोश मे ऊँचे कुलावे वाँधते थे—उसके प्रति भी यह व्यग्य है—

"जैसे प्रोग्रेसिव का लेखनी लेते
नहीं रोका रुकता जोश का पारा
यहीं से यह सव हुआ
जैसे अम्भा से वुआ।"[4]

इसी प्रोग्रेसीव जोश मे यह सव हुआ जो कुकुरमुत्ता की अनर्गल वातें कही गई हैं और टी० एस० इलियट वादियो पर यह व्यग्य—

१— प्रो० कामेश्वर शर्मा . नई धारा फरवरी १९५३
२—डा० रामविलास शर्मा . निराला : पृ० १८९
३—पर यह अधिक तर्क-सगत नहीं
४—कुकुरमुत्ता : पृ० १०

'कहीं का रोड़ा, कहीं का लिया पत्थर,
टी० एस० इलियट ने जैसे दे मारा
पढ़ने वालों ने जिगर पर हाथ रखकर,
कहा, "कैसा लिख दिया ससार सारा,"[1]

यह उन प्रयोगवादियो पर व्यग्य है जो इलियट का अनुकरण कर ही अपने तथाकथित प्रयोगो को ससार की नव्यतम वस्तु मानते हैं और कुकुरमुत्ता ऐसा "नया-कवि" है, जिसकी कलम नही लगती, जो अपनी परम्परा से विच्छिन्न ही उगता है। बिना मूल, जड के। और वैसे आधुनिक पोएट तो यह हैं ही—

"आगे चली गोली जैसे डिक्टेटर
उसके पीछे बाहर जैसे भुक्खड फालोअर
उसके पीछे दुम हिलाता टेरियर
आधुनिक पोएट (Poet)"[2]

इस रूप मे कुकुरमुत्ता का व्यग्य सीमित, एकोन्मुख नही है—अनेकोन्मुख है और उसकी चपेट मे अव्यवस्थित, असम्बद्ध जितने हैं, सब आ जाते हैं। उसकी शैली भी निराला के पिछले काव्य की तुलना मे साधारण है, क्योंकि "युग के अनुकूल इसकी रूपरेखा है।"[3] उसका व्यग्य भी युग पर है और इस कथन मे कुछ न कुछ सत्य अवश्य है कि 'निराला ने इस कविता मे सारे विश्व को बांधने और उसके विकास का पथ खोजने की चेष्टा की है।'[4] जहाँ तक विकास-पथ खोजने की चेष्टा की बात है, वह आरोपित प्रशसा है—वैसे व्यग्य का लक्ष्य वितृत है ही।

नए पत्ते

नये पत्ते की कविताओ का धरातल वही है जो कुकुरमुत्ता का है। इसमे कुकुरमुत्ता मे प्रकाशित सात रचनाओ को भी गृहीत कर लिया गया है। जीवन की यथार्थ भूमियो का आकलन नए प्रतीको और प्रतिमानो से हुआ है और जनवादी काव्य का नया परिवेश। जिस प्रकार विद्रोही साहित्यकार वाल्टेयर इतिहास की सबसे बडी बौद्धिक शक्ति थे उसी प्रकार निराला हिन्दी-काव्य के इतिहास की सबसे बडी बौद्धिक शक्ति हैं। नये पत्ते मे निराला की चेतना सामाजिक है, बाह्ययोन्मुखी है और समाजशास्त्रीय है। जो कला (Wit) पर आधारित होकर व्यग्य-सृष्टि करती है वही नये पत्ते की है। यहाँ निराला की कला में, कविता में विरोधाभास, विलक्षण प्रयोग स्वतत्र भाव-सयोग की स्थितियाँ मिलेंगी जिन्हे अति यथार्थवादी कला से सम्बद्ध किया गया है। नये पत्ते मे 'ठूंठ'[5] की वह अतिम पक्ति कदाचित काव्य-रूप लेती है जिसमे

१—कुकुरमुत्ता
२—पृ० २१-२२
३—एक बात
४—महाप्राण निराला . गगाप्रसाद पाण्डेय पृ० २००
५—अनामिका पृ० १३६

एक वृद्ध विहग ठूंठ पर बैठा कुछ याद करता है। उसकी आखो के सामने यथार्थ-जीवन की तीव्रता है, उसकी विपण्ण विद्रूपता है। नये पत्ते मे सामान्य और निम्न वर्ग के प्रति निराला की सहानुभूति उसके वास्तविक जीवन-चित्रो, सघर्षो को चित्रित करने के माध्यम से व्यक्त हुई है। नये पत्ते में नये प्रयोग हैं, नयी काव्यभूमियों की शोध है। आधुनिक हिन्दी कविता में प्रयोगवाद का आरम्भ कदाचित इसीलिए नये पत्ते से माना जाता है।

'रानी और कानी'[1] एक यथार्थवादी रचना है, जिसमे मातृ-हृदय के मनोविज्ञान का यथार्थ पहलू ज्ञापित हुआ है। अपनी कानी, काली, नकचिपटी, गजे सर और चेचक के दागवाली लड़की को भी रानी कहना मातृ-हृदय की कोमल वृत्ति है। रानी के परिश्रमी और गृह-काज-कुशल होने पर भी मां को उसके विवाह की चिन्ता लगी रहती है और केवल कुरूप होने पर उसका विवाह नही हो पाता। इस पर रानी की वेदना आंसू बन कर बहती है। रानी का यह रुदन समाज की उस व्यवस्था पर व्यग है जिसमे विवाह के लिए रूप-पूजा प्रमुख होती है, अन्य गुण नही। व्यग्य मे तीव्रता से अधिक रचना की मर्मभेदी ध्वनि है जो एक कातरता और सेन्द्रिय वेदना बहाती है। 'खजोहरा'[2] रवीन्द्र की 'विजयनी' की परिवृत्ति कहा गया है।[3] यह घोर यथार्थवादी (कदाचित अतियथार्थवादी नही!) और सीमा तक भदेस चित्र भी है। जहां तक गांव के सामान्य जीवन के चित्र का प्रश्न है वह सफल चित्राकन है। बाद ों का जहां चाहिए वहां न बरसना और उनसे हाईकोर्ट के वकीलो की तुलना करना हल्के हास्य की सृष्टि करता है। इसके बाद का ग्रामीण चित्र निराला के ग्रामीण जीवन के निकट परिचय का प्रमाण है।[4] रचना में किसी व्यग्य की स्थिति नही है केवल हल्का सा हास्य ही है। यदि कल्पना कर यह मान भी लिया जाय कि वह सामाजिक दृष्टि से भारतीय समाज व्यवस्था के एक अरूप पक्ष पर व्यग्य है तो वह एक ही पक्ति मे व्यक्त होकर प्राय अव्यक्त-सा है। ग्रामीण चित्रो के लिए अवश्य यह रचना महत्वपूर्ण है और कवि के निकट परिचय को प्रमाणित करती है। 'मास्को डायलाग्स'[5] मे आधुनिक समाजवादी उन नेताओ पर तीखा व्यग्य है जो रूस की दुहाई दिए बिना बात करना प्रतिष्ठा के बाहर समझते हैं। एक ओर तो वे 'मास्को डायलाग्स' का उल्लेख करते हैं, दूसरी ओर बड़े भाई के बँगलो की देखभाल। समाज के बड़े आदमियो को फँसाकर गिडवानी जैसे समाज नेता अपनी स्वार्थ-सिद्धि करते हैं। ये समाजवादी नेता राजनीति के साथ साहित्य मे भी अनधिकृत प्रवेश पाना चाहते हैं। सिद्धान्त और व्यवहार की यह खाई सम-सामयिक लोक-नेतृत्व की बडी स्पष्ट-प्रवृत्ति है।

१—नये पत्ते . पृ० ९
२—वही पृ० ११
३—बच्चनसिंह क्रान्तिकारी कवि निराला पृ० १२९
४—नये पत्ते पृ० १२
५—वही पृ० १८

गिडवानी जी एक साथ समाजवादी नेता, समाजवादी-साहित्यिक (तथाकथित सब) के प्रतीक हैं। 'थोडो के पेट मे बहुतो को आना पडा'[1] युद्धकालीन बढते हुए पूंजीवाद के प्रभाव, साम्राज्यवाद और आर्थिक शोषण का चित्र है। गुफा मानव से लेकर आज की वैज्ञानिक प्रगति तक के विकास पर, ध्यान पर आज के कल-कारखाने वाले 'राम राज्ये (!) पर व्यग्य है। जहाँ 'वाणिज्य के राज्य' ने लक्ष्मी को हर लिया है, टापू मे कैद किया है। ईस्ट इडिया कम्पनी से विकसित होकर साम्राज्यवादी ब्रिटिश राज्य की पूंजीवादी नीति पर यह व्यग्य प्रतीत होता है। 'राजे ने रखवाली की'[2] मे सामन्ती व्यवस्था और सभ्यता पर व्यग्य है, जहाँ ज्ञानी, ब्राह्मण, कवि, लेखक, इतिहासकार और नाट्यकार सब राजाओ की प्रशसा मे ही अपना कर्तव्य इति समझते थे। मार्क्स के द्वारा दिए गए सामन्ती व्यवस्था के रूप का यह काव्य मे आया व्याख्यान है। धर्म जहाँ अफीम थी और 'एक धोखे से भरा हुआ बढावा रहा' है। इस थोथे धर्म के नाम पर युद्ध होते हैं, जनता का सर्वनाश होता है। सब स्वरक्षा के नाम पर। 'खुशखबरी'[3] आधुनिक चल-चित्रो के प्रभाव पर व्यग्य है। इस प्रभाव से समाज के जीवन की धुरी सिने तारिकाओ पर जा टिकी। लगता है और जीवन-सत्य भी नाच रहा है—सिने नर्तकियो सा। "कैद पासपोर्ट " से कदाचित रहे सहे सामाजिक नैतिक मूल्यो की व्यजना है जिनके अभाव मे देश हालीवुड हो गया होता, देविकारानी और उदय-शकर के पीछे लगे लोग पाश्चात्य सभ्यता का पूर्ण अनुकरण कर गए होते। 'दगा'[4] मे भी आधुनिक सभ्यता पर व्यग्य है, जिसके प्रभाव स्वरूप व्यक्तितत्व की विघटनकारी शक्तियाँ काम कर रही हैं और मन तथा शरीर की क्षीणता का यह वरदान (!) इस नयी सभ्यता का है। मूल्यो की विपन्नता भी उसी का देय है। मनुष्य का ज्ञान और विद्या केवल शुष्क तर्कों तक ('एक को तीन कहने' अथवा तीन को एक कहने तक) ही शेप हो जाती है। सभ्यता के विकास के वाद की यह अव्यवस्था भी उसकी एक प्रवचनामयी उपलब्धि है। 'चर्खा चला'[5] ऐतिहासिक चेतना के पार्श्व पर मानव जीवन के विकास का चित्र है जिसकी परिणति सामाजिक-चेतना मे होती है। निर्देश यह है कि अभी दुनियाँ उस सामाजीकरण को प्राप्त नहीं कर पाई है जो महाभारत काल मे था, जहाँ कृष्ण ने इन्द्र की जगह गोवर्धन की पूजा प्रारम्भ करवाई थी और धरती का महत्व समझाया था। मानव को, गाय और बैलो को मान दिया था। कृषि के देव वलदेव ने हल को अस्त्र माना था। वेदो से चली आती हुई मानव विकास की इस कथा में सामाजिक वोध का आग्रह है, साथ ही काव्य के नित्य नूतन परिवर्तन का निर्देश भी। वेदों की परम्परा से सर्वप्रथम वाल्मीकि ने विद्रोह किया और धरती की प्यारी

१—वही पृ० २२
२—वही पृ० २४
३—वही पृ० २६
४—वही पृ० २८
५—वही पृ० ३०

लड़की सीता के गाने गाये थे। कविता में सामाजिक चेतना और समाज-बोध जाग्रत हुआ था। कविता का दृष्टिकोण प्रगतिशील ही है और महाभारत काल एव वाल्मीकि का उल्लेख, आशका है प्रतिक्रियावादी न समझ लिया जाय। 'पांचक'[1] हंस मे प्रकाशित हुआ था जिसकी पृष्ठभूमि में वंगाल के अकाल पर निराला की भावात्मक (क्रियात्मक भी) सहानुभूति कार्य कर रही है। यह तत्कालीन स्थिति का चित्र है। दृष्टि-सकोच परतन्त्रता का ही प्रतीक है। सन् ४२ का अकाल भी बौद्धिक वर्ग मे क्रान्ति का सूत्र-पात नही कर पाया। सेंघो का ढेला शकरपाला ही वना रह गया, जीवन की कटुता और तीखापन किसी मधुरता से ही फीका पडता गया। तीव्र विषण्ण और विद्रूप समाजिक स्थिति के खारे कडवे अनुभव भी आत्मतोष देते रहे। सभी नेता अपनी राह चले गये और हाथ की मुहर भी छदाम होकर रह गई। जन-शक्ति भी अहेतुक प्रमाणित हुई। आदमी की पराजय तभी होती है तव वह परतन्त्र रहा है, (दूसरे के हाथ जव वह उतारा गया है) यह स्थिति लगभग वैसी ही थी जैसी कि लडने को उद्यत व्यक्ति कुश्ती के साधारण नियम से भी अनभिज्ञ हो। ४२ की स्थिति भी स्वतन्त्रता के लिए कृत-सकल्प, युद्धाय-कृत-निश्चय की थी, लेकिन दिग्भ्रम भी व्याप्त था। 'तारे गिनते रहे'[2] भी उसी गत्यावरोध का चित्र है। आकाश पर चांद अनिवार्यत आता है, कलाओ का क्षय होता है और पृथ्वी का उल्लास डूबता जाता है। जमीदार भी करो के लिए अनिवार्यत आते रहे और जन-शक्ति क्षीण होती गई। वैधानिक, न जाने, कितने तरीके निष्फल चले गये। कितना विहार किया (कानूनी पानी पर) और आकाश के तारे गिनने की सी किंकर्तव्यविमूढ अवस्था देश में विराजती रही। यह तत्कालीन भारत के राजनीतिक, आर्थिक, और सामाजिक जीवन के दिग्भ्रम की स्थिति का चित्रण है। यह भी निराला की राष्ट्रीयता, प्रगतिशीलता का एक पहलू है जिसमे न तो प्रचार की पैम्फ्लेटियरिंग है न राजनीतिक नारेवाजी। 'गर्म-पकौडी'[3] यद्यपि रोमास विरोधी रचना कही गई है,[4] तथापि व्यग्य-प्रधान वह भी है। एक वाक्य मे कजूस पर तो व्यग्य है ही परन्तु यदि गर्म पकौडी को तथाकथित नये-विचार और नई-अवस्था के आभासित वडे-वडे शब्द मान लिया जाय तो रचना का व्यग्य अधिक निखरता है। ये नये विचार उसी तरह आकर्षित करते हैं जिस तरह गर्म पकौडी पहले दिल लेकर आकर्षित करती है। तथाकथित नये विचारों में दिल(भावनाओं)को प्रभावित करने की ही शक्ति होती है और वौद्धिकता (यह पूर्व ज्ञान कि गर्म पकौडी को तत्काल ग्रहण करने से जीभ भी जल सकती है।)का अभाव। एक भावनात्मक जोश ही उनमें होता है और प्रभावित व्यक्ति उन्हें ग्रहण भी कर लेता है, लेकिन स्थिति वही होती है जो 'गर्म पकौडी' को

१—पृ० ३२ (हंस का वंगाल अङ्क)
२—वही पृ० ३३
३—पृ० ३६
४—बच्चनसिंह : क्रान्तिकारी कवि निराला : पृ० १२७

दाढ तले दबाने से होती है। फिर ऐसे व्यक्ति उनसे चिपटे भी रहते है। कजूस(बौद्धिक विपन्न) की तरह कौडी छोडते नही। इनके लिए शाश्वत और स्थायी मूल्यो (बम्हन की पकाई घी की कचौडी) को भी त्याग दिया जाता है। वस्तुत न तो गर्म-पकौडी का कोई दोष है, न नये विचारो का। स्थिति ग्राहक सापेक्ष्य ही है। यह वर्ग-प्रियता और वर्ग-सघर्ष की भावनाओ के प्रति भी सकेत हो सकता है।[1] 'प्रेम सगीत'[2] वस्तुत रोमास विरोधी और उसकी प्रतिक्रिया ही है। प्रेम का 'भदेस' रूप ही इसमे आया है और प्रेम के परम्परित सुन्दर उपादान का विरोध। 'बाम्हन' का लडका घर की पनिहारिन जात की कहारिन और कुरूप स्त्री से प्रेम करता है यह आज की अभद्र सामाजिक स्थिति है। 'कुत्ता भौंकने लगा'[3] किसानो की कातर दयनीय स्थिति का चित्र है। शीत के पाले से खेती नष्ट हो चुकी है और किसान परेशान हैं, लेकिन कारिन्दो का अत्याचार यथावत् यथेच्छ है। डिप्टी साहब चन्दा लगाने से नही चूकते। इस स्थिति पर कुत्ते का भौंकना व्यग्य को तीव्र करता है। कुत्ता तक प्रतिरोध कर सका, किसानों के प्रति सहानुभूति दिखा सका, लेकिन मनुष्य मे उसकी कोई प्रतिक्रिया नही हुई। भारतीय ग्रामीणो की यह कातर स्थिति है। 'झीगुर डटकर बोला'[4] मे भी जमीदारो और शासन के अत्याचार का एक पहलू है। तत्कालीन गाधीवादी नेता भी इस व्यग्य के शिकार है। 'छलाँग मारता गया'[5] मे मेढक को केन्द्र बनाकर किसानों की असहायता और जमीदारो के अत्याचार की व्यजना हुई है। 'डिप्टी साहब'[6] इसी प्रकार सामाजिक कटु यथार्थ और कृषक दयनीयता की व्यजना करता है। सरकारी कारिन्दो का व्यगपूर्ण अनावरण भी तीखा है। देश के ग्रामो का यह आज का वास्तविक चित्र है। 'वर्षा'[6] मे ग्राम की प्रकृति का वर्षाकालीन एक स्वाभाविक और कवि की ग्रामीण सहानुभूति से रगा चित्र है। अनामिका का 'सहज' और 'खुला' आसमान की ही तरह यह नैसर्गिक प्रकृति का चित्र है जिसकी अन्तिम पक्तियो मे वेंधता हुआ व्यग्य है। 'मँहगू मँहगा रहा'[8] राष्ट्रीय नेता और गाधीवादी नीति पर तीव्र व्यग्य की बौछार है, साथ ही निम्न वर्ग के जीवन-गत सुख-दुख का निकट से परिचय। यह आधुनिक काग्रेसी नेताओ का अनावरण है और युग के न्यायालय मे उनको उपस्थित कर निर्णय की राह देखी गई है। व्यग्य अपने प्रखर आवेग मे ग्रामीण क्षेत्रो में की गई बलात् सभाओ को, उनकी अव्यवस्था को, केवल जेल हो आने के प्रमाण-पत्र प्राप्त नेताओ

१—गगाप्रसाद पाण्डेय महाप्राण निराला पृ० १४४
२—नये पत्ते पृ० ३९
३—वही पृ० ५४
४—पृ० ५६
५—पृ० ८५
६—पृ० ८६
७—पृ० ८९
८—पृ० ९९

को, जनता पर गोली चलाने वाली सरकार को, पूँजीपतियो द्वारा पालित-पोषित कांग्रेसियो को और व्यापारियो द्वारा अभिभावित पत्रो को भी समेटता चला है। जमींदारो के वाहन, अल्प मूल्य पाये श्रमिक, महाजनो के कर्ज से दवे किसानो के प्रति यह काव्यात्मक सहानुभूति है। भारत की राजनीतिक चेतना का विद्रूप इन पंक्तियो मे उभरता है और इतना शिष्ट व्यग्य हिन्दी साहित्य मे अकेला है। इसमे पडित जी का रेखाचित्र वनवेला से समता रखता है और पडित जी का निर्देश स्पष्ट है। मँहगू के वक्तव्य मे भूमिगत क्रान्तिकारियो के प्रति सहानुभूति और समाज का कटुतम यथार्थ एक साथ व्यक्त है। "खून की होली जो खेली" भावाजलि है—सन् ४६ के आइ० ए० एस० से सम्बन्धित विद्यार्थियो पर किए गए गोली कान्ड पर। तिलाञ्जलि भी श्रद्धाजलि है और 'रामकृष्ण देव के प्रति' निराला की रामकृष्ण-मिशन से सम्वद्ध पवित्र भावना का मूर्त रूप।[1]

नये पत्ते की विशिष्ट रचना "देवी सरस्वती" है।[2] इसमे भी निराला की ग्रामीण-जीवन मे सहानुभूति व्यक्त हुई और 'भारत माता ग्रामवासिनी'[3] की तरह देवी-सरस्वती ग्राम वासिनी है। मेरा अपना विचार है कि पूरी "ग्राम्या' के समस्त चित्रों और 'देवी सरस्वती' के छ ऋतुओ के छ· ग्राम-चित्रो की तुलना मे निराला की विशेषता प्रमाणित हो जायगी। निराला के ये चित्र पत की ग्राम्या से कही अधिक यथार्थवादी हैं, कही अधिक सहानुभूति-पूर्ण, कही अधिक स्वाभाविक। पत 'ग्राम्या' की ओर एक आकर्षणवश गए हैं अवश्य, (प्रेरणा उन्हे नही ले गई है।) लेकिन उस जीवन से वे एकरस नही हो सके, तादात्म्य नहीं विठा सके। वे दूर ही से देखे गए चित्र हैं। केवल वौद्धिक सहानुभूति ही वहाँ मिलती है।[4] इसके विपरीत निराला के व्यक्तित्व में ग्रामीण जीवन से एकरस हो जाने की मूल-भूत विशेपता रही है। यही कारण है कि उनके चित्र इतने स्वच्छ निर्मल नैसर्गिक और प्रभविष्णु हैं—आत्मानुभूति से रंगे हैं। 'देवी सरस्वती' मे भारतीय ग्रामो का वर्ष भर का जीवन आकलित हो जाता है और कुल मिलाकर उसे 'ग्राम्या' से अधिक महत्व मिलना चाहिए। गाम्या के धोवियो, चमारो, कहारो के नृत्य और ग्राम-श्री भी नैसर्गिकता में इतने प्रभविष्णु नहीं हैं जितने 'देवी सरस्वती' के विभिन्न ऋतुओ के आमोद-प्रमोद के लघु-लघु चित्र-खड। इसकी पद्धति मिल्टानिक है और मिल्टन के 'ललैग्रो' के निकट इसे माना गया है,[5] जो अत्युक्ति नहीं है। आरम्भ में कविता की कला और कल्पना उसी कोटि की है, लेकिन वह भी लोक मे विचरती है और कला यथार्थ से भास्वर है। वीच-

१—पृ० ६७, ७६, ७४

२—पृ० ५८

३— 'पत'

४—ग्राम्या का निवेदन

५—विश्वम्भर नाथ उपाध्याय महाकवि निराला-काव्य कला और कृतियाँ. पृ० २२४—२२५

मे । इन गीतो की मार्मिकता के आधार पर निराला की कथित विक्षिप्तता पर भी सहसा विश्वास नही होता । इन गीतो मे हिन्दी जन-गीतो की सीधी सरल अभिव्यक्तियाँ और सहज सम्प्रेषण की कला है । इनके आधार पर निराला हिन्दी के सफल जन-गीतकार माने जा सकते हैं । उर्दू-शायरी का प्रभाव भी इन गीतो पर परवर्ती उर्दू-शायरी का पडा है । वहाँ भी इस बीच एक नया उत्थान आया है जो उसकी पुरानी नजाकती शायरी और शमा-परवाना वाली पद्धति से विद्रोह है । अली सरदार जाफरी आदि इसी नये उत्थान से सम्बद्ध हैं । उर्दू का यह प्रभाव भी हिन्दी में आत्मसात् होकर ही आया है । उक्ति वैदग्ध्य के साथ ही भाव-प्रवाह की अप्रतिहतता का भी विशेष ध्यान रखा गया है । यह हिन्दी और उर्दू कविता की सम्मिलित भूमि का अच्छा उदाहरण है और जिस प्रकार निराला हिन्दी-बगला मैत्री के प्रतीक समझे जाते हैं उसी प्रकार वे यहाँ हिन्दी-उर्दू मैत्री के अग्रगण्य माने जायेंगे ।

बेला का प्रथम गीत ही प्रकृति का चित्र है । चित्र प्रात काल का है और रवि किरण गीत गाता है । कमल प्रस्फुटित हो गए हैं, पक्षी कलरव कर रहे हैं । किरणो की तन-पालक मालिका पढ चुकी है और समधीत समीर बहता है । ग्यारहवाँ, चौदहवाँ और बाईसवाँ गीत भी इसी तरह प्रकृति का स्वतन्त्र वर्णन है । पच्चीसवें गीत मे कैसे-कैसे प्रात आया की क्रमिक गति निरूपित हुई है और एक विशेष अर्थ में इसे प्रात का गति-चित्र कह सकते हैं । प्रकृति के इन चित्रो की मात्र-एक विशेषता है—उनका स्वतन्त्र होना । न तो वे मानवीय व्यापार के सकेत और द्रष्टा भावरजित हैं, न उन पर आध्यात्म का आवरण चढा है । वे निर्मुक्त, स्वच्छन्द प्रकृति को रेखाओ मे बाँध भर देते हैं । फिर भी ये गीत तुलना के बाद साधारण ही ठहरते हैं, कला भी सामान्य और वर्णनात्मक है । चित्रों में रगों की वह प्रगाढता नही मिलती जो परिमल, गीतिका और पूर्ववर्ती चित्रों मे मिलती है । क्या यह निराला की कला की निगति मानी जाय ? वस्तुत इस कला का रूप अधिक वस्तून्मुखी होकर आया है और उसे प्रगति या निगति न कहकर केवल विकास कहा जाय ।

नवें गीत में एक शृगारिक भाव आया है । नायिका सारी रात वार्तालाप करती रही, प्रात भी उसकी आँख नही खुली । कोमल शरीर कम्पित है और पुरवाई चलती है— लगता है किसी माया का जीवन-छल है, जहाँ प्रत्येक राग-रजित है और पारस का सामीप्य है । एक अजाने लोक मे विचरण करने और एक अजाने पाठ सीखने के लिए यौवन की बरसात बढ़ती है । उद्दाम-शृगार की प्रवाहिनी भी तरग सकुल होकर रह गयी है और इसी मे सम्भवत उसकी महिमा है । यह निराला के कवि-व्यक्तित्व की विशेषता रही है । शृगार-भावनाओ को प्रकृति के उपादान, उद्दीप्त करते हैं ।[1] प्रेम की अलौकिक व्यजनाएँ भी यहाँ विरल नही हैं । देह माया की ज्योति है और वचन अमूल्य मोती । उदित वसन्त की छटा की तरह क्षण प्रतिक्षण उसका रूप विकसित होता है । वह जीवन का आधार, हृदय का प्यार है । दोपहर

१—बेला गीत ८

में घनी छाँह सा सुख मिलता है। गीत के अप्रत्यक्ष संकेत स्पष्ट हैं।[1] और कई गीतो मे तो आध्यात्म-व्यजना स्पष्ट आधार लेकर चलती है। जब पारलौकिक और आध्यात्म सत्ता की प्रतीति हो जाती है तब विश्व के फैले विस्तार मे कुछ भी उसके तुल्य नहीं लगता। असख्य तारादल, समीर के चचल पलक, गहन रात्रि मे फूलो की गध से भरे वन-कुन्तल, भोर को सागर के तट पर उगते रवि और सध्या को पर्वत की ओट मे डूबते सूरज की छवि भी उसके आगे कुछ नही है। उस अरुण के रूप की सहस्रों उपमाएँ निष्फल हैं।[2] पाँचवे गीत मे गीताजली के उस गीत सा भाव है जिसमें कि वह अरूप प्राणों की बसी मे साँस फूंकता है और प्राण बज उठता है। वह साँस आती है, जाती है, और प्राण सध्वनित हैं। यहाँ भी उस सत्ता के गान से स्वरो के बादल छा जाते हैं। वह भी प्राणो मे आता है, जाता है, लेकिन कैसे यह होता है, यह जिज्ञासा शेष रह जाती है। मूक जिज्ञासा का यह भाव रहस्यवाद की प्रथम सीढी माना गया है जिसके एकाधिक भाव-चित्र गीताजली मे मिलते हैं। यहाँ निराला की जिज्ञासा भी उसी मूक शैशव-प्रश्न की तरह है। यह प्रश्न सदैव ही मौन उत्तर लेकर भी आता है और लोग अपने में अपना सब कुछ पाते हैं। लेकिन जो सही मार्ग अपनाता है उसे ही वह सम्बल मिल पाता है। रहस्य की जिज्ञासा के साथ भक्ति का भाव यह सम्मिलित होकर आया है। कोरमकोर दार्शनिकता मे माधुर्य चर्या भी सम्मिलित है। छठवाँ गीत लगभग इसी भाव की पुनरावृत्ति है। अनन्य भक्ति की यह भावना वैष्णव-कवियों की निकटता करती है। इसके साथ ही भक्ति के अवान्तर भेदो का भाव भी इन गीतो मे आ गया है। माधुर्य पर आधारित, दार्शनिक जिज्ञासा पर आधारित, अद्वैतवादी व्याख्याएँ, इन गीतो मे हैं।[3] इन प्रेम और आध्यात्मिक गीतो मे सूफियाना रग मिला हुआ है। शमा और परवाना वाला भाव झलक मार-मार जाता है और प्रकृति के उपयोग से जिस सत्ता का भाव आता है वह उर्दू कविता के आशिक-माशूक की परम्परा का है, तथापि वह शैली और व्यजना में पूर्णत हिन्दी का है। इसी आधार पर हमने बेला की भूमि सम्मिलन की मानी है। भाव-प्रवाह की अबाधता के बाद हमें यह कहने मे सकोच है कि यहाँ रहस्यानुभूति दुरूह हो गयी है। अवश्य यह रहस्यानुभूति पिछले गीतो की भाँति दार्शनिक पूर्णता और अलकारिक विधान की नही है, उसका रूप कुछ सरल शब्दो मे व्यक्त किया गया है, वह हिन्दी कविता से कुछ भिन्न उर्दू शायरी के समीप की वस्तु है।

वयस के साथ-साथ व्यक्ति की कामनाएँ भी बढती हैं, पर ये कामनाएँ सासारिक तृष्णा की नही। आध्यात्मिक क्षेत्र की होती हैं, मुक्ति की होती हैं। बेला मे ऐसी ही कामनाएँ ही हैं। इस विस्तृत दृश्यमान रूप की धारा के उस पार जाने की दिव्य कामना, देह की वीणा पर ऐसे गान गाने की कामना कि जिसमे निखिल विश्व बँध

१– गीत १०

२—गीत ३

३—गीत क्रमश. ७, २६ और ४०

जाय। बैर से मधी दुनिया मे मधुवर्षण की कामना निराला की यहाँ है।[1] ऐसी कामनाओं मे कैथोलिक भाव का भी प्रभाव है।[2] प्रत्येक जन की सफलता, मानववादी आधार पर जन-जागृति की कामना,[3] इन गीतो मे की है जिनमे कहने का लहजा भी सूफियाना है (जमी रहने दे, जान रहने दे आदि)। कतिपय गीतो मे जीवन की विषमता ही ध्वनित होकर रह जाती है। इन विषमताओं का विरोधाभास, निराशा और मायूसी, फूलो का मुरझाना, ससार का कैदखाना, दिनो और रातों का मुसीबत मे होना, और राहु की घातें यह सब अभिव्यक्तियो की शैली मे हिंदी की परम्परित विशेषताओं से भिन्न पडती हैं। इन गीतो पर स्पष्टत दो प्रभाव देखे जा सकते हैं— एक ओर तो वे गीताजली की तरह ही मूक भाव-निवेदन करते है और दूसरी ओर उर्दू शायरी की धारा के समीप हैं। कही-कही उसकी ध्वनि भी वहीं है। अभिव्यक्त यह निराशा जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्तियाँ ही है क्या ? निरन्तर विरोधों के बाद विश्राति का यह अनुभव एक मानसिक अवस्था विशेष कही जा सकती है। यह मार्मिक तो है ही, व्यक्तित्व से सम्बद्ध की जाय तो एक अकल्य पार्श्व भी प्रकाशित होता है, लेकिन हम उसे समय विशेष का मानसिक वातावरण ही कहते हैं, अन्यथा संतोष और विश्वास भी वहाँ विरल नही है।

यह हम कई बार कह चुके हैं कि निराला की कवि-चेतना सदैव ही साधारण लोक-जीवन से सम्बद्ध रही है। उनके काव्य में सदैव ही उस जीवन के मार्मिक चित्रो की अभिव्यजना हुई है। बेला मे भी यह पक्ष है। गगा-तट पर बैठे हुए साधू-जोगियो के चित्र की यथार्थ दृष्टि मे उनके प्रति जनता की असीम श्रद्धा-भक्ति और कवि का हल्का-सा व्यग्य है।[4] परिमल के भिक्षुक की परम्परा के चित्र में कलाकार, व्यापारी, शिक्षक, कारीगर, महाराज और तरुणी के दृष्टिकोण (भिक्षुक के प्रति) से सामाजिक अनगढता पर व्यग्य है।[5] कही-कही स्पष्ट ही जन-क्रान्ति का सकेत है। रुखे वेश, सूखे अधर वाली जनता के बढते हुए दैन्य और विषमता के प्रति सहानुभूति का रूप रक्त की प्यास बुझाने और शक्ति के लौह स्वरो को बजाने मे व्यक्त होता है। रुण्ड-मुण्डो से भरे खेत और गोलो से पटे खेत इस रक्त-क्रान्ति की ओर सकेत करते हैं। 'यलगार'[6] करने की सी भावना भी इन पक्तियो मे है—

जिन्होंने ठोकरें खाई गरीबो मे पडे, उनके
हजारों-हा हजारों हाथ के उठते समर देखे।

१—बेला : गीत ४२

२—गीत ४६

३—गीत ६५

४—गीत क्रमश १२, १३, ४३, ५३, ६०

५—गीत ४४

६—'हम यलगार करते हैं'—अली सरदार जाफरी

गगन की ताकतें सोई, जहां की हसरतें रोई,

निकलते प्राण बुलबुल के बगीचे मे अगर देखें (पृ० ६३)। नवीनता का भेरी-गान, आंख के आंसुओ से सैलाव लाने की और शोला बरसाने की भावना, पूंजीपतियो का विरोध, सर्वहारा के प्रति सहानुभूति, समाज की व्यवस्था बदलने, इतिहास का नया-निर्माण करने, मुक्ति गीत, उद्बोधन के गीत बेला के आकर्षण हैं।[1] इन गीतो में प्रगतिवादी कविता का वह पूर्व रूप मिलता है जो आगे चलकर विकसित भी हुआ, जिसने जोश और क्रान्ति के तराने गाए और समाज का तख्ता पलटने का उद्बोधन किया। कविता की शैली यहाँ मचीय अधिक है। अमीरो की हवेली को पाठशाला बनाना, सेठों के घर पर किसानो का बैंक खुलवाना, विध्वसक और प्रचारात्मक राजनीति से सम्बद्ध ये भाव साम्यवादी कवियो मे अधिक प्रसिद्ध हुए थे। निराला को क्रान्तिकारी कवि इस रूप मे कहा जा सकता है और नाजिम हिकमत और पाब्लो नेरुदा के अभाव की पूर्ति, निराला, हिन्दी मे कर सकते हैं। इन जोशीली और उद्दाम कविताओ मे कही प्रभावान्विति की रक्षा भी नही हो पाती। जैसे—५६वें गीत मे विद्रोह और महफिल का राज और शृङ्गार, फिर बिच्छू और बिल केवल जोश मे निकली अभिव्यक्तियां हैं। नजरूल इस्लाम की सी आतकवादी और विध्वसात्मक भावो की ये कविताएं उन्हें क्रान्ति और विद्रोह का कवि बनाती हैं। निराला यहां साहित्यिक गीतकार कम, जन-गीतकार अधिक है।

बेला में फारसी छन्द-शास्त्र के निर्वाह पर भी गीत-सृष्टि हुई है। यही नहीं, उर्दू-शायरी का प्रभाव भाव, भाषा, शैली पर भी पडा है। इन गजलो मे वही कोमलता, बडी बात को थोडे मे कहने की वही शैली और दूर की कौडी लाने की वही कल्पना-विलास वृत्ति भी प्रयुक्त हुई है जिसके लिए उर्दू-शायरी प्रसिद्ध रही है। कल्पना की उडान, भावो की लताफत और हुस्नो तखय्युल (सौन्दर्य कल्पना) के साथ मुहावरेदानी, प्रेषण और अभिव्यक्ति मे उर्दू कविता के समकक्ष रखी जा सकती है। लेकिन उर्दू गजल परम्परा के अनुवर्तन मे भाव-गाम्भीर्य का वहन नही हो सकता है—उर्दू की उक्ति परक शैली के साथ ही हिन्दी काव्य सौष्ठव की भी रक्षा यहां नहीं हो सकी है। गजल[2] की एक विशेषता यह भी होती है—किसी एक ही भाव पर अनेक प्रकार की उक्तियां वहां दी जाती हैं। यह कुछ कुछ हिन्दी की समस्यापूर्ति[3] की सी वस्तु है। (हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन' मे बहार के दिनो की अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न उपमाओ और कल्पनाओ के माध्यम से हुई हैं—केशरी की वेशिनी कहती है कि बहार

१—गीत . क्रमश ५७, ५८, ५६, ६०, ४१, ४७

२—'गजले मुसलसल'

३—शायरों को कभी एक मिसरा दिया जाता है जिनको 'मिसरा तरह' कहते हैं। इस पर शायर तबा आजमाई करते हैं। इस तरह लिखी गई पूरी गजल को तरही गजल कहते हैं।

के दिन सुगन्ध भार के होते हैं, तितली कहती है—सिंगार के होते हैं, आदि) उर्दू किता[1] की शैली पर भी वेला मे कुछ कविताएँ हैं। जहां शेर को हिन्दी दोहो के निकट कहा जा सकता है वहाँ किता रूबाई[2] को चौपदो के कह निकट सकते हैं यद्यपि 'रुबाई' चौपदो के अधिक निकट है। वेला मे इनके उदाहरण एकाधिक हैं।

गज़ल के हरएक शेर मे किसी एक भाव की एक सीमा मे पूर्ण अन्विति पर अधिक जोर होता है। क़िता मे थोडे विस्तार का अवसर भी होता है। लेकिन किता की यह शैली वेला मे पूरी निखर नही पाई है। शेर की तरह वेला का एक प्रयोग यह होगा—

निगह तुम्हारी थी, दिल जिससे बेकरार हुआ
मगर मैं गैर से मिलकर निगह के पार हुआ

किता की अपेक्षा वेला के शेर अधिक सफल हैं यद्यपि उन्हे भी उर्दू माप-दण्डो पर तोला जाय तो एकाध ही पूरे वजन पर उतरेंगे।

लोक-गीतो का वर्ण्य कोई ऐसा विषय होता है, जिसमे जन-सवेदना हो। उसकी अनुभूति भी जन-अनुभूति कही जायगी। इसका विस्तार दैनन्दिन जीवन के साधारण परिवेश मे प्राय प्रत्येक पक्ष तक होता है। वेला की एक कजली मे मंहगाई की वृद्धि, गाँठ की कमाई का छूटना, आदि का सम्बन्ध 'न आए वीर जवाहरलाल' की टेक पर वर्णित है। 'टूटी बाह जवाहर की, रनजित लट छूटी पण्डित की' भी एक सफल लोक-गीत है, जिसका रूप भोजपुरी और अन्य लोक-भाषाओ मे प्रचुरता से मिल जाता है।

कुल मिलाकर वेला' को हम एक प्रयोग[3] ही मानते हैं। गेयता के साथ सहजता का ध्यान भी यहां रखा गया है। सहज बोध और उच्च काव्य की सह-स्थिति कुछ कल्प्य है। यह सही है कि वेला मे विषय और भावो का विस्तार है। व्यापकता भी है लेकिन गहनता और गाम्भीर्य का समकक्ष दावा भी हम उसके विषय मे नही कर सकते। काव्य का एक रूप जन-काव्य भी होता है और उसी दृष्टि से वेला का महत्व है। उर्दू शैली में हिन्दी काव्य को ढालने का वह प्रयोग मात्र है। प्रारम्भिक प्रयोग की सीमाएँ इसमे अपरिहार्य हैं। एक मकता उर्दू की परम्परा का और दूसरा हिन्दी परम्परा का, वह प्रभाव और सौष्ठव नही दे पाता। यह मिला जुला रूप भले

१—क़िता कम से कम दो शेरों का होता है। ज्यादा की कोई हद नहीं। दूसरे मिसरो का हमकाफिया होना जरूरी है। बलिहाज़-ए-मतलब तमाम अशआर आपस मे मरबूत (सयोजित) होते हैं। इस मे हर तरह का मजमून आ सकता है।

२—चार मिसरों वाली नज्म को रूबाई कहते हैं। इसमे पहला, दूसरा और चौथा मिसरा हमकाफिया होते हैं। चौथा मिसरा सबसे अच्छा और बरजस्ता (यथातथ्य) होता है। आमतौर पर इन मिसरों से तशबीह (उपमा) का काम लेते हैं।

३—यह प्रयोगवाद से सम्बद्ध नहीं है।

दें। जहाँ विशुद्ध उर्दू की शैली अपनाई गई है उसे हिन्दी का भी कठिनता से कहा जायगा। कोई आश्चर्य नही कि 'वेला' को लोग विशुद्ध हिन्दी मे परिगणित न करें। साथ ही 'वेला' मे वैविध्य भी है। कुछ कविताएं तो अवश्य निखरी हैं, परिष्कृत कला भी है लेकिन कई कविताएँ अस्पष्टता और दुरुहता की भी शिकार हैं और यह अस्पष्टता दुरुहता किसी उच्चतम भाव या मौलिकतम विचार के कारण आई हो ऐसी बात भी नहीं। भावो का विशृंखलित रूप और एकान्विति का ह्रास इनमे मिलता है। कदाचित यह विश्रांतिकाल का प्रभाव हो। 'वेला' का महत्व प्रयोग के रूप मे ही है।

अणिमा

दूसरे महायुद्ध के दिगन्त व्यापी प्रभाव ने भारत के राष्ट्रीय जीवन मे निराशा और पराजय की भावना फैलायी। राष्ट्रीय गतिविधि मे स्वतन्त्रता के प्रति जो आत्म-विश्वास था वह अब न रह गया था। लगता था देश की स्वतन्त्रता अकल्प्य है। सन् ४२ मे ही बगाल का अकाल पडा जिसने भारत की रही सही विश्वास-शक्ति को भी झकझोर दिया। जन-जीवन मे विद्रूप निराशा और प्रगाढ विषाद आ विराजा। साहित्य की गति भी दिशाहीन, दिग्भ्रम सी थी। ऐसे अवसर पर साहित्य मे दो परिणतियाँ होती हैं। या तो दबा हुआ विद्रोह उभडता है, विध्वस करता है, तहस-नहस की प्रवृत्ति आती है अथवा एकमात्र आश्रय और सम्बल के प्रति आकर्षण बढता है। भक्ति-काल की सामाजिक पृष्ठभूमि की व्याख्या इसी आधार पर की जाती है। ऐसा ही निराला की 'अणिमा' के साथ हुआ। इस भक्ति और अलोक मे प्रश्रय पाने का कारण व्यक्तिगत भी होता है। जिसकी व्याख्या हम अर्चना, आराधना की परिणति मे कर आए हैं। उनके जीवन मे सन् २९-३० से ही आर्थिक जटिलताएं भीषण रूप धारण कर चुकी थी। वे जीवन मे एक बेचैनी, वितृष्णा और अभाव का अनुभव भी करते थे। कहीं भी स्थिर न होकर उनका जीवन सुचारु न चल पाता था। निजी आवास छोडकर परिव्राजक का जीवन वे व्यतीत कर रहे थे। इस जीवन और व्यक्तिगत विपत्तियो के कारण भी वे क्रमश' भ्रमित हो रहे थे। सर्वत्र एक पीडा और विरोध का वातावरण था कि सरोज की मृत्यु हुई, जिसका कारण भी उनकी विवशता थी। यह उनकी मानसिक पीडा और विषाद को प्रगाढ करने के लिए बहुत था। अणिमा के गीतो मे यह विषाद रेखांकित है। इसके साथ एक-दूसरी परिणति भी लगी है। उनके जीवन और व्यक्तित्व से ही यह सम्बद्ध है। समाज की व्यथित की उपरोक्त परिस्थितियाँ साहित्य मे एक व्यग्यात्मक शैली और प्रत्यक्ष जीवन मे एक क्रान्ति की प्रेरणा भी देती हैं। 'अणिमा' का यह दूसरा पहलू है। वह इस तरह व्यक्तित्व के द्विविध रूपो को अभिव्यक्त करती है। एक ओर विषाद, निराशा के स्वर हैं, रहस्य, अलोक और भक्ति का प्रश्रय है तो दूसरी ओर समाज के विद्रूप और विकलाग पर व्यग्य प्रहार है। एक ओर अतीत का लेखा-जोखा है, आत्म-परिचय है, तद्रूप सतोष है, साहित्यिक बधुओ का प्रशस्ति-अकन है, दूसरी ओर विशृंखलता, असम्बद्धता, अस्पष्टता और भ्रम। इन

दूसरी प्रकार की असम्बद्ध विशृंखल रचनाओं के बारे में कुछ निश्चित नही कहा जा सकता। व्यक्तित्व अध्ययन के अवसर पर उनकी वर्तमान अवस्था पर विचार करते हुए उनकी संदिग्ध स्थिति पर यथेष्ट वाद-विवाद हैं। न तो वहाँ कोई निष्कर्ष निकाला जा सकता है न यहाँ। यदि इन्हे भविष्यवादी, अतियथार्थवादी कला का रूप मान लिया तो वह भी निरूपाख्य है। अस्तु।

अणिमा की भूमिका मे कवि ने गीतो के विषय मे गाने की अनुकूलता और स्वर के सौन्दर्य के साथ श्रुति-मधुरता का उल्लेख किया है। कई अर्थों मे ये गीत गीतिका की ही परम्परा मे है। इनमे भाव भी प्राय. उसी स्तर, प्रकार के हैं। कला के विषय मे भी गीतिका का सन्दर्भ लिया जा सकता है। अपनी प्रकृत दार्शनिकता, उदात्त और विराट कल्पना और आध्यात्मिक सम्मान को वे यहाँ भी व्यक्त करते हैं।[1] भक्ति के स्वर भी प्रकृति के उपदानों को प्रतीक बनाकर व्यक्त हुए हैं जिसमे उनका आत्मनिवेदन है, अपनी साधना का आख्यान है।[2] आत्मसमर्पण और जन से सहानुभूति और भक्ति की आर्तवाणी[3] भी इन गीतो मे मिलती है। निरभिमान, निस्संशय, निरामय जीवन की कामना और ईश्वर कृपा का अनन्य आश्रय इन्हें अर्चना आराधना की पूर्व भूमि बनाता है।[4] 'तुम्हे चाहता वह भी सुन्दर' मे द्वार-द्वार भीख मागते हुए के प्रति सहानुभूति और प्रभु-निवेदन के साथ समाज की अवस्था के प्रति लक्ष्य भी है लेकिन भौतिकता से परे एक निर्द्वन्द्व जगत की कामना कुछ असम्बद्ध सी इसलिए प्रतीत होती है कि यहाँ यथार्थ को भूलने का सा उपक्रम है। 'अज्ञता' अपेक्षाकृत अधिक भाव-सगति की रक्षा कर सकी है। जिनके तिनके नही जले हैं उनका यह अच्छा नैसर्गिक भाव-चित्र है। 'तुम और मैं' में यद्यपि परिमल के 'तुम और मैं' की भाँति अद्वैतवादी दार्शनिक पृष्ठभूमि नही है फिर भी भाव-औदात्य और ऊँची कल्पना की स्थिति है। यथार्थवादी पुट के साथ सुन्दर उपमाएँ और उच्च कल्पना गुम्फित है। जीवन के क्रम का आख्यान रहस्यात्मक सकेतो से परिपूर्ण है और विशुद्ध मुक्ति का स्वरूप व्यंजित हुआ है। 'तुम आए' उसी अरूप सत्ता के सम्मिलन का आनन्द व्यक्त करता है और प्रकृति मे उसका आभास। 'तुम चले ही गए प्रियतम' का शृंगार भाव आध्यात्मिक रगो से रंजित है और अरुप प्रियतम के अभाव मे जगत के आकर्षण को अहेतुक माना है। 'भारत वन्दना' गीतिका की परम्परा की है और 'तुम्ही हो शक्ति समुदय की' प्रार्थना-परक।

अणिमा मे निराशा और विषाद का वातावरण भी अगाढ है। यह अवसाद और पराजय का भाव कवि का व्यक्तिगत और आत्म-प्रकाश माना गया है। 'स्नेह निर्झर वह गया है' की स्थिति कुछ ऐसी ही है। 'सखी री यह डाल वसन वासन्ती

१—नुपूर के स्वर मद रहे, जब न चरण स्वच्छन्द रहे।

२—बादल छाए

३—जन-जन के जीवन के सुन्दर (२) उन चरणों मे मुझे दो शरण

४—(१) धूलि मे तुम मुझे भर दो (२) मैं बैठा था पथ पर

लेगी' का आशावाद यहाँ नही है। यहाँ तो सूखी डाल अपने क्षार हुए जीवन की कथा कहती है, जहाँ कोयल भी नही कूकती। जगत को उसने फल-फूल दिए और अब वैभव समाप्त हो चला है। केवल निराशा की अमावस्या है। 'गहन है यह अधकार' मे कवि को समस्त जगत स्वार्थमय लगता है। न दिन का प्रकाश है न चन्द्रमा की ज्योति। पूरे गीत मे व्यक्तिगत निराशा के स्थान पर निवृत्ति मार्गी दार्शनिक चिन्तना का रूप अधिक निखरता है। ज्ञानमार्गी शाखा के साधक का सा यह भावोच्छ्वास है, पर यह व्यक्ति-सस्पर्श से शून्य भी नही है। 'मैं अकेला' मे यह विषाद प्रगाढ हो जाता है। जीवन के अन्तिम दिन आ गए से लगते हैं। निराशा की यह अभिव्यक्ति मार्मिक है। और निराला सरीखे पौरुष व्यक्तित्व की यह वाणी सुनकर आश्चर्य होता है—लेकिन आत्मतोष मिटा नही है—

'जानता हूँ, नदी झरने
जो मुझे थे पार करने
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख,
नहीं कोई मेला (पृ०२०)

अणिमा का प्रशस्ति-अकन और सम्बोधि गीतो का रूप वर्णनात्मक है। पौरुष-व्यक्तित्व यहाँ श्रद्धानत, विनत भाव से भावाजली चढाता है। ऐसी भावाजलियाँ चढाने की परम्परा-सी रही है। टेनीसन ने मिल्टन के प्रति कविता सम्बोधित की थी, पत ने स्वय निराला की प्रशस्ति लिखी है। सत रविदास, आचार्य शुक्ल, अग्रज प्रसाद, विजयलक्ष्मी पडित के प्रति, महादेवी वर्मा के प्रति, स्वामी प्रेमानद जी महाराज आदि कविताएँ शुष्क वर्णनात्मक हैं और इनका परिवेश अकाव्यात्मक भी कहा जा सकता है। क्वचित कदाचित कुछ अच्छे ग्राम्य-चित्र और हल्की प्रतीक कल्पनाएं भर आ सकी हैं।[1]

'सहस्राब्दि' निराला की ऐतिहासिक चेतना और राष्ट्रीय जागृति को व्यक्त करती है। विक्रम के १००० सवत तक भारतीय इतिहास और सस्कृति का ओजस्वी वर्णन हुआ है। परिमल की 'यमुना' और अनामिका की 'दिल्ली' की परम्परा की यह कविता है। इतिहास की परिवर्तनशील गति के सन्दर्भ मे अतीत गौरव से परिचित होने का महत्व तत्कालीन स्थिति मे आवश्यक भी था। 'उद्बोधन' प्रेरणात्मक है—जातीय समानता, साम्य भावना का। 'मरण को जिसने वरा है' और 'गया अँधेरा' भी इसी प्रकार के गीत हैं।

अणिमा की कुछ कविताओ को लेकर समीक्षको मे विवाद उठा है। कोई उन्हे अति यथार्थवादी कला का उदाहरण मानता है, कोई विशुद्ध यथार्थवादी शैली की व्यग्य रचनाएं। कुछ तो उनमें निराला की विभ्रातिकालीन असम्बद्ध भावनाएँ देखते हैं। ऐसी रचनाओ मे 'यह है बाजार' एक है। जहाँ तक इस रचना का सम्बन्ध है वह यथार्थपरक है और उसे अतियथार्थवादी नही कहना चाहिए। इसकी

१—प्रसाद के प्रति

व्याख्या हो सकती है। दुखिया और सुखिया के विवाद का यह एक यथार्थपरक वर्णन है। तेल के सौदे को जाने वाले दुखिया के मन मे सुखिया के सास को कहे गए शब्दो का व्यग्य पीडा पहुँचाता है। वह सोचता है— 'बैठाली क्या जाने व्याही का प्यार'। यह लोक-मुहावरा है और ग्रामीण जीवन की साधारण घटनाओ मे व्यवहृत होता है। दुखिया की विवशता उसे तेज कदमो से चलाती है। अतीत और भविष्य की शकाओ के कारण वह सब कुछ भूल जाता है क्योकि वह जानता है कि सुखिया के व्यग्य का उत्तर वह सिंह बनकर दे भी तो सुखिया दूसरे का हाथ पकड लेगी और उसकी स्थिति स्यार से कम न रह जायगी। यह ग्राम्य-जीवन की परिचित घटनाओ मे से एक है। 'यह है बाजार, सौदा करते हैं सब यार' से तात्पर्य लेना होगा कि यहाँ सब कुछ का सौदा होता है। सुखिया यदि दूसरे पति के पास बैठ जाय तो वह भी सौदा होगा। इस रचना मे मुझे कोई असम्बद्धता नही मिलती और अपने आप मे यह एक निम्नवर्ग परिवार का यथातथ्य चित्र है। 'नाम था प्रभात, ज्ञान का साथी' अन्त के पहिले तक सार्थक, सम्बद्ध हेतुक है, लेकिन अन्त विशृखलता मे होता है। यदि प्रभात और ज्ञान के मनोविज्ञान को प्रतीकात्मक रूप दे दिया तो कविता का कुछ दूर तक अर्थ निर्वाह हो सकता है लेकिन फिर वही अत की समस्या उठती है। प्रभाकर माचवे[1] ने इसे शिशु-मनोविज्ञान पर आधारित माना है। इसके पीछे शिशु की सी असम्बद्ध कल्पनाओ की अवस्थिति मानी गई है। उनका क्या अर्थ होता है यह मनोवैज्ञानिक जानें। यह काव्य-विश्लेषण से अधिक मनोविश्लेषण की वस्तु होगी। तब प्रश्न है कि इसे कविता कैसे कहे ? जिसका प्रेषण कतिपय विशेषज्ञों तक ही हो और वह भी सदिग्ध हो, कविता नही होगी।

'मेरे घर के पच्छिम की ओर रहती है' भी ऐसी ही रचना है। निम्न स्तर की युवती का चित्र तो अच्छा उभरा है, पर असम्बद्ध कल्पनाओ और उपमाओ का निर्वाह फिर भी नही हो पाता। 'सडक के किनारे' अच्छी स्नेपशॉट वाली कला का नमूना है। इसे अति यथार्थवादी नही कहना चाहिए। 'चूंकि यहाँ दाना है' के विषय मे भी यही कहना चाहिए। न तो यहाँ किसी स्वप्न की सृष्टि है न कोई अबौद्धिक और अतार्किक पद्धति। यह सही है कि चित्र मे वस्तुन्मुखी दृष्टि प्रभूत है। किसी विशृखलता की स्थिति भी मुझे नही लगती। यहाँ दाना पर समस्त जीवन का आधार माना गया है। दीवानापन, महफिल, नग्मे, प्रेमव्यापार, सब 'दाने' पर आश्रित हैं। जीवन की दृष्टि और प्राण, पारिवारिक सम्बन्ध, वाद-विवाद और सघर्ष इसी दाने पर आधारित है। लोक प्रचलित कहावत भी रोटी को सारे जीवन का केन्द्र मानती है। परम्परागत मूल्यो और स्थापनाओ के विरुद्ध यह भले हो पर अन्तत जीवन का एक कटु यथार्थ व्यजित होता है। 'जलाशय के किनारे कुहरी थी' मे वही स्नैपशॉट वाली कला मिलती है। जहाँ तक प्रकृति के चित्र का सम्बन्ध है वह यथार्थ और वस्तुवादी है। निराला की पिछली कला की भाँति आत्म-परकता नही मिलती, न

१—साहित्य (त्रैमासिक) जनवरी १६५१

कल्पना और उपमानो का औदात्य । अत्यन्त साधारण और इतिवृत्तात्मक यह रचना है ।

अणिमा के गीतो के अतिरिक्त समस्त कविताएँ वर्णनात्मक, इतिवृत्तात्मक और शुष्क तुकवन्दी सी लगती हैं जिनमे गद्यात्मकता भी आती गई है । यह उनकी प्रतिभा और कला का विघटन माना जाता है । यह निराला की पराजय, निराशा और अवसाद का परिणाम भी वताया गया है । इस सवध मे निश्चित कुछ नहीं कहा जा सकता । प्रमाणो के आधार पर निराशा और पराजय व्यक्तिगत उतनी नही हैं जितनी सामाजिक प्रक्षेप है ।, रैदास और शुक्ल की प्रशस्तियाँ इसकी प्रतीक नही हैं । वह तो कवि की श्रद्धा है । उद्‌वोधन और' 'सहस्त्राब्दि' भी हमे उपर्युक्त निष्कर्ष पर नही पहुँचने देती । छायायादी कला से भिन्न एक अन्य रूप इनमे अवश्य मिलता है और प्रयोगो के रूप में ही इसका महत्व मानना चाहिए । आत्मतोप और विश्वास के स्वर भी साथ-साथ हैं और यथार्थपरक दृष्टि सामाजिक चेतना को अभिव्यजित करती है । कुछ अपवादों के वाद 'अणिमा' मे निराला-काव्य का एक नया आयाम मिलता है जो पूर्वतर से विलकुल पृथक है और प्रयोगमात्र है— यहाँ विघटन या निगति नही परिवर्तन है और प्रयोगिक महत्व ही उसका है ।

परिवृत—३

१ शिल्प-पक्ष
२ निष्पत्ति मूल्याकन

परिवर्त—आठ

शिल्प-पक्ष

१ प्रयोजन . काव्य बाह्यांग की व्याख्या

२ प्रतीक विधान

३ शब्द विधान उपयुक्त शब्द

शब्दों के स्वर और ध्वनिया

गीतों की शब्द योजना

४ छन्द विधान प्रयुक्त छन्दों का स्पष्टीकरण

मुक्त-छन्द

मुक्त-छन्द का इतिहास, छन्दोगुरु निराला

गीतों का छन्द विधान

उर्दू शैली के गीतों का छन्द विधान

प्रयोजन

इस परिवर्त का उद्देश्य निराला के काव्य की रीतियो, शैलियो और वाह्यागो के अध्ययन का है। काव्य का मूल अन्ततोगत्वा भाव प्रेषण अथवा भावानियोजन है और शिल्प पक्ष उसके प्रकार से सम्बद्ध है। शैली, शब्द से जिस अर्थ का वहन होता है वह प्रकारातर से शिल्प पक्ष का आनुषगिक विपय है और वह काव्य के व्यक्तित्व, उसकी मौलिकता के प्रक्षेप से सम्वन्धित है। शैली का सम्वन्ध शब्द चयन अथवा भापा परीक्षा से है। शिल्प पक्ष की प्राजलता भी अन्तत व्यक्तित्व का भाग है और कहा भी जाता है कि शैली ही व्यक्ति है। मौलिकता का एक आख्यान प्रेपण की रीति का भी है। इस प्रेपण की रीति और शिल्प की मौलिकता का व्यक्तित्व ही आधार है। शिल्प मे छन्द, प्रतीक-विधान और भापा विपयक परिवेश का भी अतर्भाव हो जाता है। भावानुक्रम मे कौन से शब्द आते हैं, के साथ-साथ किस रूप मे वह अभिव्यक्त होता है, का भी आत्यतिक महत्व है और इसी को मैं काव्य का शिल्प पक्ष कहता हूँ। एक भावावेग मे कविता का सृजन माना जाता है। इस आवेश की तात्कालिक परिणाम मूर्ति विधायिनी कल्पना होता है। कल्पना कविता मे रूप-चित्रो, प्रतीको का निर्माण करती है। यही काव्य का काव्य के अलकरण की भी जननी है। वस्तुतः अलकार से जिस यत्नज और वाह्य परिवेश का भान होता है, काव्य मे (और विशेपत निराला मे) ऐसे अलकरण का अभाव है। वह तो भाव के परिष्कार का ही अग होकर आता है। छद भी इसी भाव सगति और काव्य का मूर्त परिणाम है। तीव्रतर आवेग को भाव व्यजना निर्सगत छन्दोवद्ध हो जाती है और छन्द का काव्य के साथ घनिष्ठ सम्वन्ध है। काव्य के मूल भाव का शब्द के अभाव मे कोई स्थायी मूल्य नही है। शब्द ही वह माध्यम है जो काव्यगत भाव का परिवहन करता है। अत. शब्द की सत्ता काव्य में प्राथमिक है। काव्य की साधारणता और असाधारणता उसके शब्द विधान पर भी आधारित करती है। जहाँ कल्पना प्रसूत भाव-प्रतीक और भाव-मूर्तियो का काव्य मे प्रेपण की दृष्टि से सार्वभौमिक महत्व है, वही उसकी स्वाभाविक गति और अप्रतिहत प्रवाह की दृष्टि से अलकरण और शब्द विधान का भी महत्व है। इस परिवर्त मे हम

निराला के काव्य में प्रतीक विधान, उसके अलकरण, उसके छद और शब्द-विधान पर दृष्टिपात करेंगे। इस ओर की हमारी दृष्टि मे अलकार या छद की विवेचना सापेक्षिक ही होगी, अर्थात् किसी शास्त्रीय परिपाटी की अनुगता के स्थान पर उसके मूल आधार का ही विवेचन हमारा लक्ष्य है।

प्रतीक विधान—

प्रतीको का लक्ष्य भावात्मक सवेदना की तीव्रता है। काव्य का प्रतीक भाव के चित्रो का पुनरुत्सर्जन करते हैं और उस भाव के प्रेषण मे सहायता करते हैं। मनोविज्ञान के अर्थ मे ये प्रतीक इन्द्रिय-जनित ज्ञान के प्रतिनिधि होते ह। इनके द्वारा मस्तिष्क किसी अनुभव का भावन करता है। काव्य की सर्जिका कल्पना का प्राथमिक कर्त्तव्य प्रतीक विधान का होता है। जिसे जार्ज वेली ने लाक्षणिक सकेतात्मक मुक्ति (Symbolic Extrication) कहा है, वह प्रतीक विधान ही है।[1] लाक्षणिक सकेतात्मक मुक्ति वह प्रक्रिया है जिसके आधार पर कवि स्वय को एक असह्य यथार्थ सत्ता से मुक्ति कर पाता है और अपनी भावनाओ को प्रतीको के आश्रय से व्यक्त करता है। भावनाओ का प्रतीकों मे यह रूपान्तरण यदि पूर्ण और सत्य नही है तो जिस लयात्मक चेष्टा के द्वारा व्यक्ति यथार्थ से सम्बन्ध बनाये रखता है उसमे विघ्न आता है और काव्य की सर्जिका शक्ति क्षीण हो जाती है।[2] भावनाओ की, प्रतीको द्वारा, अभिव्यजना सशक्त हो जाती है। कवि भाव के प्रेषण के लिये जिन अलकारिक रूपो का प्रश्रय लेता है—उपमा—रूपक आदि उनका आधार एक विशिष्ट सौन्दर्य-भावना ही होती है, क्योकि वे उस भाव का विम्ब उपस्थित करते हैं। इन कल्पना-प्रसूत प्रतीकों या अलकारो के माध्यम से कवि ऐसा चित्र निर्मित करता है जो उसकी अनुकृति और भावना को व्यक्त करने मे सक्षम होते हैं। विशिष्ट कवि का प्रतीक विधान और अलकरण उसकी विशिष्ट सौन्दर्य-भावना पर आश्रित होता है। हिन्दी की छायावादी कविता मे इस सौन्दर्य भावना का ही महत्व है। सर्वप्रथम तो वह द्विवेदी युगीन और रीतिकालीन सौन्दर्य भावना से भिन्न है, दूसरे उसमे एक आध्यात्मिक छाया का भाव भी होता है। स्पष्ट ही यह सौन्दर्य भावना साधारण स्तर की नही है और परिणाम स्वरूप इस युग का प्रतीक-विधान भी असाधारण है। कामायनी महाकाव्य मे इस प्रतीक विधान का बडा महत्व है और इसी आधार पर 'प्रतीका प्रसादस्य' कहने को मन करता है। कामायनी के प्रतीक अपने साथ एकाधिक भावो को लेकर चलते हैं। निराला मे प्रतीक विधान की यह कला भी उच्च-कोटि की है। 'जुही की कली' के 'कली और मलय' अपने प्रतीकार्थ मे स्वस्थ प्रेम की व्यजना और लौकिक आधार

1 "I shall confine the term imagination to the primary process of image making, for the more comprehensive process which enfolds the first and terminates in a poem, I suggest that the term 'SYMBOLIC EXTRICATION' might be used." George Whalley : Poetic Process P 63

2 Ibid : P. 105

पर प्रेम-क्रीडा के साथ परासत्तात्मक सकेत भी करते हैं। यहाँ सुप्ति के वाद जाग्रति और अधकार के पश्चात् ज्योति का सकेत दिया गया है। 'जागृति मे सुप्ति थी' मे प्रकृति के प्रतीक के सहारे, सपने के भाव की सशक्त व्यजना हुई है।

जडे नयनों मे स्वप्न
खोल बहुरगी पख विहग—ये,
सो गया सुरा स्वर
प्रिया के मौन आधारों मे
क्षुब्ध एक कचन-सा निद्रित सरोवर मे (परिमल पृष्ठ १६४)

निराला के प्रतीको की यह विशेपता है कि वे रूप के चित्रण से अधिक भाव की व्यजना करते हैं। इस दृष्टि से पत मे और उनमे भेद है। पत चित्रण प्रिय हैं, जिसका कारण सौदर्य के प्रति सदैव उनकी वाल-सुलभ जिज्ञासा भी है। प्रकृति के चित्र देख कर वे भाव के स्थान पर उसके विभिन्न मोहक चित्र खींचने लगते हैं जब कि निराला भावनाओ की अभिव्यक्ति को प्राथमिक महत्व देते हैं। जहाँ उन्होंने विराट् चित्र और महाकाव्योचित प्रतीकों का आश्रय लिया है वहाँ भी चित्र गौण ही हैं।

दृढ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, वाहुओं पर, वक्ष पर विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
चमकती दूर ताराएं ज्यों हो कहीं पार

रेखाकित अश मे आकाश से लेकर पृथ्वी तक का विराट् चित्र आ गया है लेकिन इसका प्रयोग भी राम की निराशा को ही व्यजित करता है। वादलो सम्वन्धी उनकी कविताओ मे भी वादलो के प्रतीक, विराट् चित्र के साथ भावनाओ की ही व्यजना के प्रति लक्षित हैं। तुलसीदास का प्रतीक विधान इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। उसमे प्रकृति के प्रतीको के आश्रय से एक सास्कृतिक यथार्थ की व्यजना देने मे कवि सफल हो सका है।

'दूर, दूरतर, दूरतम, शेप,
कर रहा पार मन नभो देश,
सजता सुवेश, फिर-फिर सुवेश जीवन पर,
छोडता रग, फिर फिर सँवार
उडती तरग ऊपर अपार
सध्या ज्योति ज्यों सुविस्तार अम्बरतर।' (तुलसीदास पृ० २२)

यहाँ उर्ध्वगामी क्रिया का वर्णन है, साथ ही सध्या के अवसर पर आकाश मे उठती हुई सूर्य की लालिमा का प्रतीक देकर सस्कार की तहो को छोडते हुए ऊपर उठने के भावो की व्यजना दी गई है। आकाश मे अनेकानेक चित्र उभरते मिटते हैं और पश्चिम की लाली आकाश पर ऊपर उठती हुई ढाँपती जाती है। यह प्रतीक मन के सस्कार-परतो को छोडकर विस्तार मे जाने के भाव को कुशलता से व्यजित

कर रहा है। प्रतीको का उद्देश्य प्रधानतः उन भावो की व्यजना करना है जो साधारणतः व्यक्त नही किए जा सकते। निराला के प्रतीक-विधान की यही सबसे बड़ी महत्ता है कि वे चरम उदात्त भावो का चित्र भी खीच देते हैं। 'प्रिय यामिनी जागी' मे नैश जागरण के प्रतीक चित्र मन की कामना मुक्ति और जागृति की पवित्रता का भार कुशलता से व्यक्त कर देते हैं। 'मौन रही हार' के ध्वनि और रग के चित्र देने वाले प्रतीक, भावो को ही व्यक्त करते हैं। इन प्रतीको मे चित्रण के साथ भावनाओं के व्यक्त करने की जो सक्षमता है वही इनकी अप्रतिमता प्रमाणित करती है। ऐसा प्रतीक विधान छायावादी युग मे कम ही मिलता है और इस क्षेत्र मे एक प्रसाद ही निराला के प्रतिद्वन्द्वी ठहरते हैं। इतना सही है कि इस असाधारण प्रतीक विधान के कारण दोनो कवियो के भावो की असाधारणता भी कभी कभी ग्राह्य नही हो पाती, लेकिन गहरे पैठ कर ही इनका महत्व समझा जा सकता है। दुरूहता का प्रश्न उठाना यहाँ निरर्थक होगा। उदाहरणत सध्या सुन्दरी कविता मे आसमान से उतरती हुई परी के प्रतीक का विस्तार दिया गया है। वहाँ वातावरण की सृष्टि प्रमुख होकर आ गई है। इससे सम्भव है मानवी कृत सध्या के अनुभावो का सवेदन न हो सके क्योंकि यहाँ सध्या को परी कहकर उसके चित्र का विस्तार ही नही हुआ, वरन् उसके घुघराले बालो मे हसने वाले केवल एक तारे से तिमिरांचल द्वारा जिस वातावरण और भाव का चित्र आता है वहाँ सध्या कालीन स्तब्धता और अधकार को अधिक सक्षमता से व्यक्त करता है। वह एक अमूर्त सौन्दर्य भाव मे मूर्त कर सका है। इसी की तुलना मे महादेवी का 'धीरे धीरे उतर क्षितिज से— आ वसन्त रजनी' वाला चित्र ऊपरी चित्रात्मकता की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है लेकिन चित्र तक ही वह सीमित हो गया है। किसी भाव की व्यजना उससे नही होती। इसका कारण यही है कि निराला का प्रतीक विधान भावनात्मक तारतम्य के साथ लयात्मक चेष्टा से भी सन्निविष्ट है। सध्या के चित्र-मात्र पर वे मुग्ध नही हैं, उससे उत्पन्न भावनाओ के सगीत का स्वर भी वे सुन सके हैं जब कि महादेवी सध्या के चित्र के प्रति ही आकर्षित हैं। भावनाओ से सगीत सुनने और चित्र पर मोहित होने मे कौन श्रेष्ठ है इसका निर्णय नहीं, वरन् प्रतीक विधान की सक्षमता के निर्देश का ही लक्ष्य इस तुलना का है। एक मात्र चित्र देता है, दूसरा चित्र के साथ भावो की भी व्यजना करता है।

भावो की व्यजना का यही प्राथमिक लक्ष्य निराला के प्रयुक्त अलकारो का भी आधार है। उनके काव्य में उपमा और रूपको का प्रयोग-बहुल है। इस उपमा और रूपक अलकार की परम्परित लाक्षणिक विशेपताओ के निर्देश की अपेक्षा इनके मूल आधार और सामान्य विशेपता का महत्व यहाँ अधिक है। साधारणत. उपमा का आधार सधर्मता होता है जिसके कारण एक वस्तु दूसरी वस्तु के समान कही जाती है।[1] इस सधर्मता के आधार पर ही उपमा मे दूर की कौडी लाने का उपक्रम हिन्दी

१—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : काव्योग कौमुदी . तृतीय कला पचम प्रकाश पृष्ठ ६०

के रीतिकाल में निविड है। वहाँ नायिका के अगों को लेकर कवियो ने सृष्टि की प्रत्येक वस्तु से उसकी उपमा दे दी है। इस औपम्य विधान मे उक्ति-चातुर्य और चमत्कार भले हो, प्रभाव नही होता। छायावादी कला मे आकर इस उपमा-विधान में सधर्मता के साथ उपमान और उपमेय के प्रभावो का भी साम्य देखा गया है। पत उपमानो की अमूर्तता के लिये विशेष प्रसिद्ध हैं। निराला की उममाओ मे स्वाभाविक विराटता के साथ निविड प्रभाव की व्यजना भी हो सकी है और इस दृष्टि से पत मे प्रयुक्त उपमानो से कही आगे हैं। पत के उपमानो मे जहाँ कल्पनाधिक्य है वहाँ निराला के उपमानो मे विराट भावत्व का स्वाभाविक प्रसार है। जितने विराट निराला के उपमान हैं उतने पत के नही। निराला के काव्य में अलकार का आधार सज्जा ही नही है, न ही उनका लक्ष्य केवल वाह्य चमत्कार अथवा चटक है। वे तो भाव की सशक्त व्यजना की ओर प्रधावित हैं। वस्तुतः रूप और भाव की सगति ही उनका आधार है और जब तक यह सगति साध्य नहीं होती तब तक कविता हल्का चमत्कार भले हो, प्रभावोत्पादक वह नहीं होती। उनकी उपमाओ में अमूर्त और सूक्ष्मतम भावो की व्यजना-शक्ति है। इस उपमा विधान मे सधर्म और सादृश्य का जो आधार है वह विराट है, इसीलिए वह विराट भावनाओ का व्यजक है। मूर्त और अमूर्त आधारो के वीच एकात्म तादात्म्य की प्रक्रिया मे निराला की उपमाएँ अन्त सौन्दर्य के साथ सूक्ष्म सत्यो का भी उद्घाटन करती हैं। ऊपा. सूक्त मे जब ऊषा को दूध देती हुई धेनु से उपमित किया गया था तब उससे साम्य का आधार आन्तिरक ही था। कालिदास उपमा के सम्राट माने जाते हैं। निराला भी अपने उपमा विधान के कारण छायावादी युग मे श्रेष्ठ स्थान के अधिकारी हैं। विधवा [1] को जब इष्ट-देव के मन्दिर की पूजा और दीपशिखा, क्रूरकाल ताण्डव की स्मृतिरेखा और टूटे तरु की छूटी हुई दीन लता से उपमित किया गया है तब उसका आधार किसी वाह्य साम्य और सधर्मता ही न होकर अतरग और प्रभाव साम्य ही है। विधवा को देखकर जिस पवित्र का भाव का उन्मेष कवि-मानस मे हुआ होगा उसकी व्यजना उसे इष्टदेव की पूजा से उपमित करने मे ही हो सकती है, क्योंकि सम्भवत' पवित्रता का सर्वाधिक भाव पूजा से ही व्यक्त होता है। दीप-शिखा की निश्चलता विधवा के अपने ही भावो मे तल्लीन अवस्था की द्योतक है। साथ ही विधवा अभाग्य के प्रखर व्यग्य का भी स्मरण दिलाती है। तरु से छूटी हुई लता से उपमित कर तो हिन्दू समाज की नारी स्थिति का ही चित्र दे दिया गया है। यहाँ पति ही एकमात्र आश्रय माना जाता है, जब वही धराशायी हो गया तो विधवा की स्थिति छूटी हुई लता से कम मार्मिक नहीं होती। वादल [2] को सव्यसाची से उपमित करने मे वादल और सव्यसाची की लक्ष्य एकाग्रता का आख्यान है, यद्यपि इसमे कुछ

१—परिमल पृ० १२६

२—वादल-राग

चमत्कार प्रियता भी है। उसे बालक[1] से उपमित करने मे बादल की चंचलता का भाव व्यक्त होता है। सरोज-स्मृति मे सरोज के यौवनागम को नववीणा पर गाए गये मालकौश से उपमित[2] करने मे यौवन की गम्भीरता, मृदुता और औदात्य का भाव आया है। उपमाओ की विराटता का आख्यान तुलसीदास और राम की शक्ति-पूजा करती है, जहाँ रत्नावली समस्त प्रकृति छवि मे व्यक्त होती है और शक्ति की कल्पना सृष्टि की विराटता को ढाँप लेती है।

जब इस उपमा विधान मे उपमान और उपमेय का अभेद और तद्रूपता भाव का लक्ष्य होता है तब रूपक की सृष्टि होती है।[3] प्रयुक्त रूपको मे भी निराला का लक्ष्य प्रभाव साम्य ही रहा है, वे भी उत्पन्न भावो की संगति और एकान्वयन की ओर धावित हैं। जागो फिर एक बार[4] मे जहाँ आँखो का रूपक मधु-गलियो मे फँसे अलि से बाँधा गया है वहाँ पूरे रूपक का निर्वाह आँखों और भौंरो की मधुचर्या के भाव से किया गया है। भौंरा कमलकोश मे मधुपान में लिप्त होकर गुंजार बंद कर देता है। आँखें भी मधुचर्या करती हुई पलको मे बन्द हैं। रूपक का निर्वाह सांग नही है। भौंरे और आँखो के प्रत्येक अवयव की अभेदता की ओर रूपक का लक्ष्य नही है। वह दोनों की केवल वृत्ति के आधार और प्रवाह के साम्य को लेकर बाँधा गया है। इसे मैंने रूपक इसलिये कहा है कि केवल उपमा से आगे चलकर वह उपमान और उपमेय की क्रियाओ का अभेद भी सूचित करता है। तत्काल प्रभाव मे यह उपमा ही प्रतीत होती है। अन्य प्रयुक्त रूपको मे इसी प्रकार भाव संगति की रक्षा हुई है। उनके रूपको मे एक विराटता के भी दर्शन होते हैं। नर्गिस मे विराट रूपक का एक ऐसा उदाहरण है और तुलसीदास मे इनकी बहुलता है। जैसे—

प्रेयसी के अलक नील, व्योम,
दृग-पल, कलंक, मुख-मंजु, सोम,
निःसृत प्रकाश जो, तरुण क्षोभ प्रिय तन पर
पुलकित प्रतिपल मानस-चकोर
देखता भूल दिक् उसी ओर,
कुल इच्छाओं का छोर जीवनभर (तुलसीदास पृष्ठ ३४)

मे प्रेयसी का मुख चन्द्रमा है, उसका कलंक उसकी आँखें, आकाश उसकी अलकें और उसकी रूपद्युति ही चन्द्रमा का प्रकाश है। इस चन्द्रमा को देखकर चकोर-मन भी प्रतिपल पुलकित है। रूपक यहाँ सांग है। एक ऐसा ही सांग रूपक गीतिका

१—परिमल पृ० १८०, ३,
२—पृ० १८२, ४
३—काव्यांग कौमुदी पृष्ठ १०२ (पंचम प्रकाश) तृतीयकला
विश्वनाथप्रसाद मिश्र
४—परिमल पृष्ठ १९८ (१)—प्रथम

का प्रसिद्ध 'यामिनी जागी' वाला गीत है। (प्रिय) यामिनी जागी मे (प्रिय) जागी और यामिनी जागी तद्रूपता देखी गई है। मूलत यह रूपक भी वातावरण और प्रभाव साम्य पर ही आधारित है। रूपक के इस साधर्म्य और गुणो के साम्य की आधार भूमि पर ही छायावाद का वहु प्रचलित अलकार मानवीकरण है। इसमे अमानव पर मानव गुणो के आरोप करने की साधारण प्रवृति या प्रकृति होती है।[1] किन्ही अमूर्त गुणो और सामान्य व्यवहारों और अप्राण वस्तुओ मे मानवीय गुणो का (यथा भाव तथा आदि का) आरोप मानवीकरण कहलाता है। इसे अग्रेजी का काव्यालकार माना गया है।[2] इस अलकार की मूल भावना सर्व जीवन्तवाद और पैन साइकिज्म (Pan Psychism) तथा सर्व मानववाद है। निराला में इस मानवीकरण के पीछे एक दार्शनिक मतवाद का आग्रह भी देखा जा सकता है। अद्वैतवादी दर्शन मे प्रकृति और चराचर के समस्त पदार्थों मे एक ही परम-सत्ता का आभास और चेतना देखी जाती है। अत यह मानवीकरण सर्व जीवन्तवाद सर्व मानववाद एव पैन साइकिज्म से आगे बढकर सर्व चेतनावाद पर आधारित होता है। निराला मे इस अलंकार का प्रयोग वहुल है। 'जुही की कली, यामिनी, वेला, वादल, शेफाली,' आदि का मानवीकरण विशेष उल्लेखनीय है। इनमे न केवल मानव-भावनाओ और गुणो का आरोप ही हुआ है, वरन् वे उस सर्व चेतन सत्ता की तादात्म्य अवस्था तक पहुँच गई हैं।

शब्दालकारो में निराला का प्रिय अलकार अनुप्रास है। इस अलकार मे वर्णो तथा व्यजनो का साम्य देखा जाता है। निराला मे व्यक्त भाव की अनुकूलता के अनुसार वर्णो और स्व॰ो का वार-वार प्रयोग होता है। अनुप्रास का लक्षण यह वताया जाता है कि जहा अक्षरो की समानता दिखाई जाय, उनके स्वर मिलें या न मिले, वहा अनुप्रासालकार होता है।[3] लेकिन अनुप्रास को मम्मट ने वर्ण-साम्य वताया है तथा रुद्रट ने स्वर तथा व्यजनो के अनेक वार के निरन्तर आवर्तन को अनुप्रास कहा है।[4] निराला मे ध्वनियो के आधार पर भी अनुप्रास का प्रयोग देखा जा सकता है—

'कण-कण कर कङ्कण, प्रिय
किण-किण रव किङ्किणी
रणत-रणत नूपुर उर लाज
लौट रङ्किणी'

मे इसी ध्वनि का आवर्तन है। 'झूम-झूम मृद गरज-गरज घन घोर' की दूसरी पक्ति 'राग अमर अम्बर मे भर निज रोर' मे अनुप्रास का शास्त्रीय लक्षण न मिले,

---

१—हिन्दी साहित्य कोश पृष्ठ ५८९
२—साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोष (राजेन्द्र द्विवेदी) पृष्ठ १८४
३—काव्यांगकौमुदी विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पचम प्रकाश तृतीय कला—पृष्ठ ६६
४—हिन्दी साहित्य कोश : पृष्ठ २९

भले न मिले, लेकिन वहाँ भी अनुप्रास की छटा ही मानी जायगी। बाद वाली पंक्ति मे तो स्पष्ट ही अनुप्रास है।

झर-झर-झर निर्झर-गिरि सर मे
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में-

(परिमल पृष्ठ १७५)

इस अलकार मे भी निरी चमत्कार प्रियता से हटकर भाव की गति और ध्वनि के शब्द-चित्र देने की साधना ही देखी जा सकती है। वस्तुत निराला के काव्य मे सभी बाह्य उपकरण (प्रतीक और अलकार आदि) उनके भावो की तीव्र सवेदना के लक्ष्य के प्रति सत्य है कदाचित् इसीलिये उनकी स्वाभाविकता की भी रक्षा हो सकी है। कृत्रिम और अनावश्यक आरोप उनके प्रयुक्त सभी अलकारो मे नही मिलेगा। उल्लिखित अलकारो के अतिरिक्त भी उनके काव्य मे अन्य अनेक शब्द और अर्थ अलकार देखे जा सकते हैं। उन सब की मूल भावना भी भावानुगामिता है, स्वाभाविकता है।

शब्द विधान—

काव्य मे शिल्प का उपर्युक्त समस्त आख्यान केवल शब्दो के द्वारा सम्भव है और शब्दो के अभाव मे काव्य की अवस्थिति परिकल्पित नही की जा सकती। कदाचित इसीलिये मलामे ने कहा था—कविता-निर्माण शब्दो के द्वारा होता है। उसने सिद्ध किया था कि कविता मे प्रयुक्त शब्द रोमाच के प्रतीक हैं। प्रतीकवाद के आन्दोलन मे शब्दो पर अत्याधिक जोर दिया गया था। रूप, रस, गध और स्पर्श मे सूक्ष्मतम रोमाच का वर्णन कर सकने की क्षमता ही उसका साध्य थी। इस प्रतीकवाद और रोमाच के साहित्यिक मूल्य के प्रति लोगो की असहमति और विरोध हो सकता है, लेकिन इस आन्दोलन ने शब्द की महत्ता पर जो बल दिया था वह एक महत्वपूर्ण केन्द्र-विन्दु है। भारतीय परम्परा मे शब्द का आदि, अनादित्व उल्लिखित हुआ है और शब्द ही ब्रह्म माना गया। इस प्रतिपत्ति का, जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ, अर्थ यही है कि यहाँ ब्रह्म अथवा अनादि आदिसत्ता के व्यक्त पक्ष पर जोर दिया गया है। सृष्टि का व्यक्त रूप (Projected) ही अद्वैतवादी वेदान्तियो मे मान्य है। अभिव्यक्ति का यह साधन लौकिक क्षेत्र मे शब्द ही है। स्वय निराला मानते हैं कि "भावनाएँ शब्द-रचना द्वारा एक विशिष्ट अर्थ तथा चित्र द्वारा परिपुष्ट होती हैं। अर्थ शब्दो द्वारा, शब्द वर्णो द्वारा। ओम् सब वर्णों का सम्मिलित दृश्य है।" कवि की साधना कई अर्थो मे केवल शब्द की साधना है। जब वह शब्दो की सिद्धि प्राप्त कर लेता है तब वह किसी भी रहस्य और भाव को व्यक्त कर सकता है। कविता के प्रेरण का प्रारम्भ बिन्दु यही है और एक समीक्षक ने तो कहा है कि काव्य का अध्ययन उसके शब्द परिचय से प्रारम्भ होना चाहिये।[1] शब्द काव्य के अर्थ और

1—"Words are alpha and omega of Poetry. The study of a poem should begin with its vocabulary" —Norman Callan: Words as Meaning: Poetry in Practice—page 47, 44

उसकी ध्वनि को व्यक्त करते हैं। भावो और विचारो के औदात्य की रक्षा उचित शब्द विधान ही कर सकता है। उच्चतम भावना की अभिव्यक्ति के लिए असाधारण शब्द सधान की भी आवश्यकता है, अन्यथा उसका मूल्य न होगा। काव्य मे, जहाँ कि सम्पूर्ण आकर्षण प्राथमिकतः भावो का होता है, शब्द सगति अभिधार्थ से अधिक महत्वपूर्ण है। सगीत में भी शब्दो की ही महत्ता है, क्योकि सामान्यत गीत भी शब्दो से ही परिणीत है, सम्बद्ध है। सर्व प्रथम यह शब्दो की स्वर प्रक्रिया से सम्बन्धित है। आदिकाल में सगीत और काव्य की अन्वितियाँ भिन्न नहीं थीं, क्योकि पठन और उच्चारण स्वरित था[1] और जब शब्द सगीतात्मक हो जाते हैं तब वे गद्य या पद्य के परिक्षेत्र से हटकर सगीत के तत्व हो जाते हैं। डेविड पाल का कथन है कि कृति ध्वनियो से निर्मित होती है तथा गति, सघर्ष, बल आदि के दृश्यमान प्रक्षेप सगीत तत्व से ही प्राप्त होते हैं। वागनर सरीखे व्यक्तियो की यह मान्यता थी कि गीत सृष्टि का सर्वोच्च रूप वह है जिसमे श्रेष्ठ सगीत के साथ श्रेष्ठ काव्य भी हो। रावर्ट शूमन ने भी दोनो के घनिष्ठ सबन्ध की चर्चा की है।[2]

काव्य और सगीत दोनो मे शब्दो का आदि महत्व है। सगीत की चर्चा इसलिए कि गीतिका के गीतो मे वागनर की मान्यता का व्यवहारिक रूप है और निराला के काव्य मे जिस उच्चकोटि का शब्द विधान मिलता है, वह उसकी श्रेष्ठता और महत्ता को प्रगाढ करता है। अपनी शब्दावली के आधार पर वे सस्कृत के स्वर्णकालीन कवियो की याद दिलाते हैं। उनकी शैली के प्राण वस्तुत शब्द चयन की कला है जो उनकी शब्द समृद्धि के साथ उनके विचार और भाव के औदात्य की भी द्योतक है। विचार और भाव के अनुसार कौन से शब्द कहाँ और कैसे प्रयुक्त होने चाहिये और अल्पतम शब्दो मे गहनतम भाव की अभिव्यजना के सिद्धान्त का जितना परिष्कृत उपयोग निराला के काव्य मे मिलता है उतना प्रसाद को छोडकर हिन्दी के इस युग मे कही नही मिलता और कई दिशाओ मे तो वे प्रसाद को भी पीछे छोडते हैं। शब्दो और भाषा पर उनका अबाध अधिकार है। वे ऐसे कलाकार हैं जो शब्दो की मृतिका को किसी भी मूर्ति मे परिणत कर सकते हैं। उनका शब्द-विन्यास ही उनके प्रतीक विधान का मूल है। भाषा का यह साधारण परिष्कार निराला के शब्द समूह पर ही केवल आधारित नही है, वह भाव व्यजना का अनुगामी भी है। भावो के उचित प्रेषण के लिए निराला ने हिन्दी को विशाल नवीन शब्द समूह प्रदान किया है और इस दिशा मे उनके अध्ययन का क्षेत्र भी विस्तृत है। यहाँ भी निराला की स्वाभाविक स्वच्छन्द वृत्ति का प्रकाश है लेकिन उच्छृखल वह नहीं है। उनके शब्द भावो के चित्र और उनकी ध्वनियाँ तथा रंगो के चित्र भी प्रस्तुत करते हैं। वे उस विराट, विविध

1—Susanne K Langer Feeling and Form : A theory of Art. Page 148

2—On the Intimate Relationship between Poetry and Music : Ibid P. 150-151, 153

के अग हैं जो निराला के सम्पूर्ण काव्य की विशेषता है। निराला के सम्पूर्ण भाव के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि काव्य मे सीधी और सरल भाषा का सिद्धान्त लागू नही होता। जब तक भावो की तीव्रता और उसकी गहनता को व्यक्त करने का प्रश्न आता है तब स्वभावतः ही भाषा की निष्ठा साधारण स्तर को छोड़ देती है। निराला का काव्य सस्कृति की परम्परा का अग है और किसी भी सास्कृतिक कलाकार का भाषा विषयक मत और सिद्धान्त साधारण और सीधी-सादी भाषा का अनुगामी नही रहा। वस्तुत निराला का काव्य इस तथ्य का साक्षी है कि भाषा का परिवेश भाव के अनुरूप ही ग्रहीत होना चाहिये। प्रगति और प्रयोग के उनके काव्य में साधारण और जन भाषा का रूप भी मिलेगा क्योंकि उसकी साधना दैनन्दिन यथार्थ से सम्बन्धित है। निराला के काव्य मे स्वर और रग-शिल्प का अद्भुत योग है।

उपयुक्त शब्द—

समृद्ध और श्रेष्ठ कवि के सामने शब्दो का विशाल भडार होता है। उसकी विशेषता इसी में है कि वह उसमे से ऐसे शब्द का चुनाव कर ले जो वहाँ पर पूर्णत: उपयुक्त हो और उसका स्थानापन्न कोई भी शब्द उसको अपदस्थ न कर सके। डा० रामविलास शर्मा ने इसका एक उदाहरण दिया है—

'पर, क्या है
सब माया है—माया है
मुक्त हो सदा ही तुम' (परिमल पृष्ठ २०४)

उनकी दृष्टि मे मुक्त का प्रयोग (जहाँ) किया गया है वहाँ स्वच्छन्द रखने से अर्थ का अनर्थ हो सकता है।[1] इस 'मुक्त' शब्द के महत्व का बोध उस समय होता है जब हम कविता की पृष्ठ भूमि मे निहित भाव का भी परिशीलन करते हैं। उद्धृत अश 'जागो फिर एक बार' का है। स्थल विशेष मे वे अद्वैतवादी स्वर का व्याख्यान देते हुए आत्मा की मुक्ति का उल्लेख कर रहे हैं। स्वतन्त्रता शब्द मे फिर भी 'तन्त्र' शब्द है और स्वच्छन्द मे अप्रत्यक्ष उच्छृखलता का भी किंचित भाव आ जाता है। निबध, प्रबध आदि मे भी वह ध्वनि नही जो परा-मुक्ति का बोध दे सके। 'मुक्ति' भक्ति-दर्शन का शब्द है और इसके सांसारिक मुक्ति का ही बोध नही होता। चिरन्तन और शाश्वत मुक्ति की भी यह व्यजना करता है और आत्मा की मुक्ति ऐसी ही है। ऐसा ही एक और उदाहरण—

"करना होगा यह तिमिर पार—
देखना सत्य का मिहिर-द्वार"— (तुलसीदास पृष्ठ २८)

यहाँ 'मिहिर' शब्द की उपयुक्तता भी द्रष्टव्य है। मिहिर का अर्थ सूर्य होता है और सूर्य के अनेकानेक समानार्थी शब्द हैं, लेकिन सर्वप्रथम मिहिर को हटाने पर 'तिमिर पार' के साथ जो ध्वनि सगति बैठती है उसका ही अवस्थापन हो जायगा दूसरे इससे

१—राष्ट्रीय स्वाधीनता और साहित्य (डा० रामविलास शर्मा) पृष्ठ ७०

सत्य प्राप्ति के हेतु साधना की कठिनता का भी बोध हो रहा है। 'मिहिर' की ध्वनि 'निविड' की है और वह व्यजित करता है कि तिमिर पार करने के वाद भी सत्य का द्वार वन्द है और वह कठिन साधना से ही खुल सकेगा। निराला के काव्य मे शव्दो की यह एकान्तिक उपयुक्तता वहुल है, वह उनकी उत्कृष्ट कला का प्रमाण है।

शव्दों के स्वर और ध्वनियाँ—

मैंने ऊपर कहा है कि निराला के काव्य मे स्वर और रग-शिल्प का अद्भुत योग है। शव्दो के चयन मे निराला ने स्वर और ध्वनियो को भी अकित किया है।

> झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर,
> राग अमर अम्वर मे भर निज रोर,
> झर-झर निर्झर-गिरि सर मे,
> घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर मे (परिमल पृष्ट १७५)

'झूम-झूम' शव्द से वर्षाकालीन काले मेघो का आकाश मे मन्द-गति से सरकने की गति का वोध होता है और 'गरज गरज घन घोर' से उनकी गडगडाहट का। इसी प्रकार 'राग अमर अम्वर मे भर निज रोर' से प्रतीत होता है कि विजली की चमक और उसका स्वर आकाश मे छा गया है। 'झर-झर निर्झर' शव्द से मूसलाधार वृष्टि का अनवरत स्वर ध्वनित होता है। 'राग अमर' मे इस ध्वनि की शाश्वतता का भी भान करा दिया गया है। 'राम की शक्ति-पूजा' में युद्ध की अभिव्यक्ति का यह शव्द चित्र ध्वनियो स्वरो का भी समस्थापन करता है।

> "तीक्ष्ण शर-विधृत-क्षिप्र-कर, वेग प्रखर,
> शत शेल सम्वरणशील, नील नभ गर्जित-स्वर,
> प्रतिपल परिवर्तित व्यूह-भेद-कौशल समूह,
> राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह, क्रुद्ध कपि-विषम हूह
> विच्छुरित वन्हि—राजीव नयन—हृत लक्ष्य वान,
> लोहित लोचन रावण-मदमोचन महीयान" (अनामिका पृष्ठ १४८)

'विधृत क्षिप्र' से प्रतीत होता है कि तीर त्वरित-गति से लक्ष्य पर धँस गया है। 'प्रतिपल परिवर्तित व्यूह' मे वदलते हुए व्यूहो की गति है और 'राक्षस विरुद्ध प्रत्यूह, क्रुद्ध कपि विषम हूह' मे सेना के जयघोष का रव। 'विच्छुरित वह्नि' व्यक्त करता है कि तीर धनुष से छूटकर लक्ष्य की ओर चला जा रहा है। विच्छुरित मे यही छूटने की गति है। इसी के साथ कोमल ध्वनियो के इस ध्वनि चित्र—

> 'कण-कण कर कंकण प्रिय
> किण किण रव, किंकिणी
> रणन-रणन नूपुर, उर लाज
> लौट रंकिणी' (गीतिका पृष्ठ ८)

मे क्रमश तीव्र होते हुए नूपुर का स्वर है। कण-कण के वाद कंकण और किण-किण के वाद किंकिणी का आवर्तन ताल-वद्ध नूपुर के रव का द्योतक है और अपनी मधुरता

मे विद्यापति के इस पद के इस अश के समकक्ष है। 'किकिन रन रनि वल आ कन-कनि'। जुही की कली का 'उपवन सर सरित गहन-गिरि-कानन, कुज लता पुजों को पार कर' की शब्द योजना मे मलय की तीव्र गति का चित्र उभर आता है। इसी के साथ 'सध्या सुन्दरी' के इस अश—

नूपुरो मे भी रुन-झुन रुन-झुन रुन-झुन नहीं
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा 'चुप-चुप-चुप'
है गूँज रहा सब कहीं (परिमल पृष्ठ १३६)

मे सध्या कालीन लौटते पक्षी के मद्धिम कलरव के बाद सन्ध्या की स्तब्धता 'चुप-चुप-चुप' शब्द से व्यक्त होती है। कोमल भावो की व्यजना के अवसर पर शब्द चयन मे न तो 'तीक्ष्ण-शर-विधृत क्षिप्र-कर' की सी समास बहुला शैली होती है और न 'झूम-झूम गरज-गरज घन घोर' का सा मेघ स्वर। वहाँ कोमल शब्द जो श्रुति मधुर होते हैं, ही प्रयुक्त होते हैं—

राग, पराग, कपोल किये हैं,
लाल गुलाल अमोल लिये हैं,
तरु तरु के तन खोल दिये हैं,
आरती जोत उदोत उतारी (अर्चना पृष्ठ ३६)

व्यग्य-प्रधान और यथार्थवादी रचनाओ मे निराला की शैली साधारण शब्दो को प्रयुक्त करती है और व्यग्य को तीखा बनाती है—कुकुरमुत्ता और नये पत्ते का शब्द चयन ऐसा ही है। वहाँ भाषा का जन सामान्य रूप मिलता है। वेला मे उर्दू शैली के अनुसार व्यजक और चुस्त शब्दो का प्रयोग भी प्राप्य है। उसमे लोकगीतों के अनुरूप जन सामान्य के प्रचलित शब्दो का भी प्रयोग है। उनका शब्द-चयन भावो के अनुसार कही सस्कृत के तत्सम शब्दो की समास बहुला शैली मे है जिसे 'बाण' के निकट रखा गया है। कही कोमल भाव के अनुरूप मधुर श्रुति सुख के साथ मुख सुख की वगला शब्दावली के निकट जो विद्यापति और जयदेव की याद दिलाता है। इसके साथ साधारण और जन सामान्य की भाषा के लोक-रगानुसार सीधे-सादे सरल शब्द ही मिलते हैं। अर्चना और आराधना मे आकर उनकी कला में जो सहजता और सरलता आ गई है उसका अधिकाश उत्तरदायित्व प्रयुक्त शब्दो की साधारणता भी है। निराला के काव्य के अनुरूप ही उनका शब्द विधान भी विशाल, विराट, बहुल आदि विविध हैं। नये शब्दो के निर्माण मे निराला ने यथेष्ट योग दिया है और प्रचलित शब्दो मे भी नये अर्थ दिए हैं। 'तुलसीदास' के शब्द विधान से यह प्रमाणित है।

गीतों की शब्द योजना—

गीतिका मे चित्रो की रेखाएँ पुष्ट और वर्णों का विकास भास्वर है। उसकी रचना शास्त्रीय सगीत पद्धति मे क्रान्ति लाने की दृष्टि से हुई है। उसका लक्ष्य हिन्दी के शास्त्रीय सगीत की काव्य विरलता का परिहार है। इसमे निराला सिद्धान्त और व्यवहार दोनो मे सफल माने गए हैं। मालकौश सरीखे गम्भीर प्रकृति के राग में गाई

लेकर अवतरित हुई थी। पदो, कवित्तो और सवैयों के पुराने छन्द-विधान के प्रति अब असन्तोष की भावना और नये छन्द विधान के प्रति राग का आविर्भाव इसके साथ हुआ था। यहाँ आकर छन्दो की मात्रा, यति और स्वर योजन तथा गति मे भिन्नता आ गई। लेकिन यह नवीन विधान भी अपनी परम्परा से विलग नही था। उसमे उस बीती परम्परा का नया परिष्कार और विकास ही था। स्वतत्रता व्यवहृत होने के बाद भी छद मे सगीत के सस्कार की अवमानना नही की गई और प्राचीन छन्दो का एक नवीन विकसित रूप ही इनमे मिलता है। यह भारत की वैदिक काल मे चली आती हुई छन्द परम्परा का ही अग है और छन्दो के तत्वो का सन्निवेश भी इनमे हुआ है। ऐसा नही कि लय और यतिहीन ये छन्द हैं। प्राचीन छन्दो के प्रति क्रान्ति और विरोध का भाव रखते हुए भी उनमे छन्द की प्रकृत भूमि की उपेक्षा नही है। भारतीय काव्य परम्परा मे छन्द का आदि और सर्वव्यापी महत्व माना गया है। वहाँ न तो कोई ऐसा शब्द है जो छन्द विहीन हो और न कोई ऐसा छन्द है जो शब्द विहीन हो। साहित्य दर्पण मे पद्य की परिभाषा ही छन्दोबद्ध पद है। वैदिक काल में भी छन्द का बडा महत्व था और उसे वेद का ही पर्याय माना जाता था। वैदिक समस्त ऋचाएँ छन्दोबद्ध हैं। सम्भवत इसका कारण वेदो का श्रुत होना ही हो। 'छन्द पादौ तु वेदस्य' मे छन्दो को वेदो का ही चरण और वेदाग माना गया है। उसका महत्व अलौकिक है। उनसे अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है और असावधानी से प्रयोग करने वाला पाप का भागी होता है। सामवेद मे छन्दो का विशेष निरूपण है और निरुक्तकार यास्क ने इस पर विस्तृत प्रकाश डाला है। वे कहते हैं 'मन्त्र माननात् छदासि छादनात्' आच्छादन से भाव का दूरगामी प्रभाव और उसकी अमरता श्रृगार होता है। इससे व्यजना शक्ति बढ जाती है।[1]

सामान्यत छद का अर्थ अक्षर, मात्रा और विराम के नियमो से बँधी रचना होता है और साहित्य दर्पणकार के अनुसार वही रचना पद्य हो सकती है जो अक्षर और मात्राओ द्वारा व्यक्त हो और छन्दो मे हो। छन्द प्रभाकर मे कहा है—

मत्त वरण यति गति नियम, अन्तहि समता वन्द
जा पद रचना मे मिलें, भानु भनत सोइ छन्द[2]

एवरक्राम्बी ने उसे लायात्मक आदर्श की उतार चढाव वाली आवृत्ति माना है। उसका कथन है कि इसके द्वारा कवि मन मे उठे हुए रचना कालीन सवेग और सवेदन का अनुभव अखण्ड और पूर्णत मूर्तिमान करता है। विश्व साहित्यकोष मे इसका अर्थ दिया है "The recurrence of a rhythmic Pattern

१—छन्द से भाव, सवेदना और अनुभूति का प्रेषण सभव है। विभिन्न छदों से विभिन्न रसों की उत्पत्ति मानी जाती है और अपेक्षित रसनिष्पत्ति के लिए निर्धारित छन्दों के उपयोग की भी चर्चा की जाती है।

डा० पुत्तूलाल शुक्ल,

२—छन्द प्रभाकर जगन्नाथप्रसाद भानु पृ० १

within the line and in corresponding lines of a poem[1]" भावोत्तेजित वाणी स्वभावत छन्दो मे हो जाया करती है। सामान्यत छन्द की दो विशेषताएं होती हैं, लय और अन्त्यनुप्रास अथवा तुक। 'लय' छन्द की आत्मा है।[2] पल्लव के प्रवेश मे पत मानते हैं कि कविता का स्वभाव ही छन्द मे लयमान होना है।[3] अपने उत्कृष्ट क्षणो मे हमारा जीवन छन्द मे ही बहने लगता है, उसमें एक प्रकार की सम्पूर्णता स्वरैक्य और सयम आ जाता है। डा० पुत्तूलाल शुक्ल के अनुसार छन्द व वेखरी ध्वनि है जो प्रत्यक्षीकृत निरन्तर तरगभगिमा से आह्लाद के साथ भाव और अर्थ की व्यजना कर सके।

वेदेतर छन्दो को लौकिक छन्द कहते हैं जिनके सामान्यतः दो भेद माने जाते हैं—'मात्रिक' और 'वार्णिक'। मात्रिक छन्द वे हैं जिनमे अक्षरो की मात्राओ के अनुसार नियम निर्धारित हो और वार्णिक छन्द वे हैं जिनमे वर्णों के आधार पर नियम बनाये गये हों।[4] इनके तीन-तीन उपभेद भी हैं—सममात्रिक, समवार्णिक, अर्धसममात्रिक और अर्ध समवार्णिक एव विषममात्रिक, विषम वार्णिक। जहां मात्राएं अथवा वर्ण चारो चरणो मे समान हों वह सम, जहां प्रत्येक चरण मे भिन्नता हो वहां विषम, और जिन छन्दो के विषम चरणो में एक समान मात्रा या वर्ण हों और सम चरणो मे एक समान वहां अर्धसम छन्द होते हैं।

परिमल के प्रथम खण्ड की रचनाएं सममात्रिक हैं—

एक दिन थम जायगा रोदन	१५ मात्राएं
तुम्हारे प्रेम अचल मे	१५ मात्राएं
लिपट स्मृति बन जायेगा कुछ कन	१५ मात्राएं
कनक सींचे नयन जल में	१५ मात्राएं[5]

सान्त्यानुप्रास—रोदन और कन और मे, मे।

द्वितीय खण्ड मे विषममात्रिक पर सान्त्यानुप्रास कविताएं हैं—

कहां ?	३ मात्राएं
मेरा अधिवास कहां	१२ मात्राएं
क्या कहा ?—रुकती है गति जहां ?	१६ मात्राएं
भला इस गति का शेष	१२ मात्राएं
सम्भव है क्या	८ मात्राएं
करुण स्वर का जब तक मुझमे रहता है आवेश	२७ मात्राएं[6]

1—Shipley : Dictionary of world Literary Terms Page 270
2—Rhythm is the soul of Metre : Dr J N. Singh
३—पल्लव : सुमित्रानदन पत प्रवेश पृ० २१
४—काव्यागकौमुदी विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तृतीय कला, अष्टम प्रकाश, पृष्ठ २१८
५—परिमल पृष्ठ ३०

सन्त्यानुप्रास—कहाँ, जहाँ, और शेश, आवेश, मे

यदि इसे छन्द के चरण मानने से असहमति हो तो इसी के बाद—

मैंने मैं शैली अपनाई	१६ मात्राएँ
देखा दुखी एक निज भाई	१५ मात्राएँ
दुख की छाया पडी हृदय में मेरे	२० मात्राएँ
झट उमड वेदना आई	१४ मात्राएँ
उसके निकट गया मैं धाय	१५ मात्राएँ
लगाया उसे गले से हाय	१६ मात्राएँ[1]

सान्त्यानुप्रास—१६, १५ और १५, १६ की पक्तियो मे।

गीतिका की अधिकाश रचनाएँ सममात्रिक और सान्त्यानुप्रास हैं—

अभरण भर वरण गान	१२ मात्राएँ
बन वन उपवन उपवन	१२ ,,
जागी छवि, खुले प्राण	१२ ,,
वसन विमल तनु—वल्कल	१२ ,,
पृथु उर सुर पल्लव दल	१२ ,,
उज्ज्वल दृग कलि कल, पल	१२ ,,
निश्चल, कर रही ध्यान	१२ ,, [2]

जहाँ मात्राओं की कमी पडती है और आभास होता है कि मात्राएं समान नही हैं वहाँ निराला ने निर्देश दे दिया है कि गायक को वहाँ स्वर वढाने पडेंगे।

'सखि वसत आया' वाले गीत की मात्राएँ इसी निर्देश पर विभाजित हैं। यह मात्रा वढाने का प्रचलन छन्द शास्त्र मे भी है।[3]

छायावादी छन्द परम्परा स्वच्छन्दता और मुक्ति का पथ स्वीकार करते हुए भी अपनी वीती परम्परा से अलग नही है, यह हम ऊपर कह चुके हैं। लोक गीतो का आधार भी यहाँ सस्कृत और परिष्कृत होकर आया है। यहाँ भी हिन्दी के चिर-परिचित मात्रिक छन्दो की परम्परा का नया रूप मिलता है। इसका एकाशेन प्रकाशन उक्त उदाहरणो मे हुआ है। मात्रिक छादसिक अवधारणा का मूल तत्व यति और तुक हैं। छायावादी नवीन छन्दो मे भी छन्द का तत्व है यह तव प्रमाणित होता है जव उसका भी अपना प्रवाह अथवा गति और लय तथा गति मिलती है। छन्द शास्त्र मे पद्य अथवा कविता के प्रवाह को गति कहते हैं।[4] इसका कोई निश्चित नियम नही होता। गीतिका के निम्नलिखित छन्दो मे उसकी गति और लय सगीत के अनुकूल है—

१—परिमल · पृ० १२४

२—गीतिका : पृष्ठ ६

३—विश्वनाथप्रसाद मिश्र · काव्यागकौमुदी : पृ० २१६

४—वही पृ० २२७

स्तब्ध अंधकार सघन
मन्द गन्ध भार पवन
ध्यान लग्न नैश गगन
मूँदे पल नीलोत्पल
डूबा रवि अस्ताचल
सन्ध्या के दृग छल-छल[1]

छन्द प्रवाह की निर्देशक यति होती है। प्रवाह और लय की गति मे कहाँ रुकना पडेगा इसका निर्देश यति के आधार पर होता है—जैसे कवित्त छन्द के प्रत्येक चरण में १६ और १५ अक्षरो पर विराम देकर ३१ अक्षर होते हैं। यतिओ के दो प्रकार माने गये हैं[2]—(१) पूर्णांक यति (२) लयात्मक यति। चरण के अंत मे पूर्णांक और मध्य मे लयात्मक की स्थिति मानी जाती है। पद के अन्त मे तो पूर्णांक यति होना अनिवार्य है, जैसे—ऊपर के उदाहरणो मे रोदन, कन, में: कहाँ, जहाँ, शेष, आवेश, अपनाई, भाई, धाय, हाय आदि में विश्राम की सर्वत्र व्यवस्था है। लेकिन जब इसका उल्लघन होता है तब छन्द की लय बिगड जाती है। यह दोष कहलाता है। जब एक चरण का शब्द कटकर दूसरे चरण मे लगता हो तो 'यतिभग' होता है।[3]

देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का, प्रथम स्नेह का लतरान्तमिलन
नयनों का नयनों से गोपन प्रिय सम्भाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान—पतन[4]

उपर्युक्त अश में 'मिलन' मे यति का भग माना गया है[5] लेकिन मेरा विनम्र मत है कि जहाँ यति का भग होना माना गया है वस्तुतः यति की सगति उस रूप में नही लेनी होगी। उसका पाठ इस प्रकार हो—

देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन—विदेह का,
प्रथम स्नेह का लतरान्तमिलन—नयनों का,
नयनों से गोपन प्रिय सम्भाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन—

तो यति का भग नहीं होगा और वस्तुत. निराला को छन्द मे पढने की कला का ही प्राधान्य है। जहाँ यति होती है वहाँ अर्थ भी सम्पूर्णत. से आता है और भाव का प्रभाव बना रहता है। यह सही है कि दूसरे चरण को पढते समय श्वास को जरा लम्बा खींचना पडेगा। इसे चाहें तो अर्थ यति कह सकते हैं। 'ऐसी अर्थ यति से पाठ

१—गीतिका : पृ० ७३
२—आधुनिक हिन्दी काव्य में छद योजना : डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० २०४
३—काव्यांग कौमुदी : विश्वनाथप्रसाद मिश्र : पृ० २२८
४—अनामिका · पृष्ठ १५१
५—पुत्तूलाल शुक्ल आधुनिक हिन्दी काव्य मे छन्द योजना : पृ० २१०

मे ही सुविधा नहीं होती, भाव व्यजना मे भी योग मिलता है'।[1]

जहाँ चरणो का अन्त होता है वहाँ अक्षरो के ध्वनि साम्य को तुक कहते हैं। यह अन्त्यानुप्रास भी कहलाता है। जब चरण मे लय के अनुकूल प्रवाह की गति होती है तब या तो भाव के अनुरूप अथवा भाषा के अनुकूल अत मे अनुप्रास अथवा तुक आ जाती है। यह निश्चित नही किया जा सकता कि तुक कब आयेगी क्योंकि वह कभी भाव के अनुरूप आती है और कभी भाषा के अनुरूप। परिमल के इस उदाहरण मे तुक की अवस्थिति एक पूर्णांक पर ही है। यह पूर्णांक भाषा और भाव दोनो के अनुरूप है—

बैठ लें कुछ देर
आओ एक पथ के पथिक से
प्रिय अन्त और अनन्त के
तम गहन जीवन घेर
मौन मधु हो जाय
भाषा मूकता की आड में
मन सरलता की बाढ में
जल बिन्दु-सा बह जाय[2]

यहाँ 'देर' का अन्त्यानुप्रास 'घेर' और 'हो जाए' का 'वह जाय' से है। 'बैठ लें' से जिस भाव का प्रवाह आता है वह 'घेर' पर रुकता है और वह भाषा की लयात्मक गति का भी अनुकरण करता है। इसी प्रकार दूसरे चरण मे यह अन्त्यानुप्रास ही पद्यात्मकता का प्रमाण है। जिसका अतुकान्त कहकर विरोध होता है[3] उसमे भी तुक की अवस्थिति देखी जा सकती है। गीत मे तो यह अनिवार्य है ही 'मुक्त छद' मे भी इसे देखा जा सकता है।

१ एक वार बस और नाच तू श्यामा
२ सामान सभी तैयार
३ कितने ही हैं, असुर चाहिए कितने तुझको हार
४ कर मेखला मुड मालाओं से बन मन अभिरामा
५ एक वार बस और नाच तू श्यामा
६ भैरव मेरी तेरी झझा
७. तभी बजेगी मृत्यु लडायेगी जब तुझसे पजा
८ अट्टहास, उल्लास नृत्य का होगा जब आनन्द
९ विश्व की इस वीणा के टूटेंगे जब तार

१—डा० पुत्तूलाल का शुक्ल ' पृष्ठ ८१३
२—परिमल पृष्ठ २९
३—विश्वनाथप्रसाद मिश्र पृष्ठ २३०

१०   वन्द हो जावेंगे ये जितने कोमल छन्द ।[1]

प्रस्तुत पद्यांश मे १, ४, ५ मे, २, ३, ९ मे, ६, ७ मे और ८ तथा १० मे अन्त्यानुप्रास है।

यह कहा जा सकता है कि उक्त उदाहरण तो स्वय दूसरे खड का है जिसमे विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताएँ हैं। इसके उत्तर मे तीसरे खड की ही रचना का यह उदाहरण पर्याप्त होगा।

१   वन्द कचुकी के सव खोल दिये प्यार से
२.   यौवन उभार ने
३   पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालि के
४   मूक आह्वान भरे लाल सी कपोलो के
५.   व्याकुल विकास पर
६   झरते हैं शिशिर से चुम्वन गगन के

यहाँ १, २, ३, ४ और ६ मे अन्त्यानुप्रास है। यह सही है कि इसका अन्त्यानुप्रास अघम कोटि का है जिसमे केवल एक मात्रा की आवृत्ति होती है। वह मात्रा अन्त्य पर आधारित है लेकिन उत्तम और मध्यम अन्त्यानुप्रास भी निराला की कविताओ मे मिल जायेगा जो यह प्रमाणित करता है कि उन्होने छदोमुक्ति की साधना के वाद भी उच्छृ खलता को प्रश्रय नही दिया है। यहाँ मुक्त छन्द मे भी तुक की अवस्थिति दिखाने का ही मेरा प्रयास है। "मुक्त छन्द के कवियो ने भी अन्त्यानुप्रास की गरिमा का रहस्य समझा है"। सहस्राब्दि कविता मे अन्तरन्त्यानुप्रास, मालान्त्यानुप्रास और अष्टक पर्वाधार मात्रिक के उदाहरण से भी यह प्रमाणित है।[2]

मुक्त छन्द—

छन्दोमुक्ति की साधना का अर्थ अराजकता नही होता। उसकी भी अपनी व्यवस्था है। मुक्त छद का तात्पर्य छन्द शास्त्रीय रूढि और परम्परागत छादसिक नियमावली से स्वतन्त्रता ही है। निराला की मुक्त-छन्द-साधना का निर्देश केवल यही है कि कविता को छन्द के वन्धन से मुक्त किया जाय क्योकि परम्परागत नियमावली मे एक रूढि आ गयी थी और उसमे नवीनता की साधना नही हो सकती थी। प्रश्न उठ सकता है कि मुक्त छन्द की व्यवस्था मे भी नियम तो हैं, तव प्राचीन छन्दों की नियमावली के विरोध का क्या तात्पर्य ? इसका उत्तर हम आचार्य वाजपेयी जी के ही शब्दो मे देना चाहेगे, क्योकि हमारी भावना की व्यजना उससे अधिक सशक्त शब्दो मे और नहीं हो सकती। 'पुरानी कोठियों और महलो से जो दूर वातावरण मे वने थे, वाहर निकल आना भी कभी क्रान्ति कहला सकती है और नये आवास वनाकर रहना भी नये वातावरण का निर्माण करना

१—परिमल : पृष्ठ १५०

२—डा० पुत्तूलाल शुक्ल . पृष्ठ २२९-३०

कहा जा सकता है। ठीक यही बात निराला जी के छद और उनकी छदात्मक रचनाओ के सम्बन्ध मे कही जा सकती है।[1] निराला ने कहा है—'मुक्त काव्य कभी भी साहित्य के लिये अनर्थकारी नहीं होता, प्रत्युत उससे साहित्य मे एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण का मूल है।[2] इस मुक्त छन्द की परम्परा को निराला ने वेदो की मुक्त भावना से सम्बद्ध किया है।

मुक्त छन्द का इतिहास और छन्दोगुरु की स्थापना—

भिन्न तुकात अथवा ब्लैंक वर्स का आरम्भ प्रसाद ने किया। उनके छद में २१ मात्राएं हैं। रूपनारायण पाडे ने भी इस छन्द का उपयोग किया है। उनके द्वारा उपयुक्त छन्द में भी यह मात्रिक है। वर्णात्मक भिन्न तुकात छन्द का प्रयोग मैथिलीशरण गुप्त ने भी किया है जिसके प्रथम रचयिता अयोध्यासिंह उपाध्याय थे और प्रिय प्रवास मे इसका प्रथम प्रयोग मिलता है। उपाध्याय जी ने गण वृतो को हिन्दी मे अतुकान्त काव्य के योग्य माना है और यह इसलिये कि सस्कृत की कविता अतुकान्त है जो गण वृतो मे है[3]। १६ मात्राओ के अतुकान्त का प्रयोग सियारामशरण गुप्त ने भी किया है। पत की ग्रन्थि मे यह प्रयुक्त हुआ है। एक अन्य प्रकार की अतुकान्त कविता का रूप गिरिधर शर्मा मे मिलता है जिसकी गति कवित्त छद की सी है। उनकी 'सती सावित्री' मे १६ मात्राओ के आधार पर आठ-आठ वर्णों के तुकान्त से मुक्ति मिलती है। 'इन्दु' के एक अक मे इस अतुकान्त छद पर विवाद उठा था जिसमे हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त और रूपनारायण पाण्डे तथा जयशकर प्रसाद ने अतुकान्त मात्रिक छदो का समर्थन किया था[4]। लेकिन 'हिन्दी मे अतुकान्त कविता के कवियो मे किसी ने भी दूसरे का अनुसरण नही किया। जहाँ कही मात्राओ मे मेल हो गया है वहाँ मुमकिन है कि एक को अपने दूसरे कवि की रचना परखने का मौका न मिला हो और मौलिकता एक दूसरे से लड गई हो। ऐसा न होता तो वे कोई दूसरा छन्द जरूर चुनते जब कि अन्त्यानुप्रास उडा देने से ही अतुकान्त काव्य बन जाता है।[5] अब निराला की मान्यता है कि 'इस तरह की कविता अतुकान्त काव्य का गौरव पद भले ही अधिकृत करती हो, वह मुक्त काव्य या स्वच्छन्द छन्द कदापि नही। जहा मुक्ति रहती है, वहाँ बधन नही रहते। ऊपर जितने प्रकार के अतुकान्त काव्य के उदाहरण दिये गये हैं सब एक-एक सीमा मे बँधे हुए हैं, एक-एक प्रधान नियम सबमें पाया जाता है। गण वृत्तो में गणो की शृ खला, मात्रिक वृतो मे मात्राओ का सामान्य, वर्ण वृत्तो में अक्षरो की समानता मिलती है। मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि मे रहकर भी मुक्त है। केवल प्रवाह कवित्त छन्द सा जान पडता

१—आचार्य वाजपेयी आधुनिक साहित्य भूमिका पृष्ठ २६

२—परिमल भूमिका : पृष्ठ १२

३—प्रिय प्रवास की भूमिका

४—इन्दु जुलाई—अगस्त १६१५

५—परिमल भूमिका . पृष्ठ १८-१६

है। मुक्त छन्द का समर्थक इसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम राहित्य उसकी मुक्ति।'[1]

मुक्त छन्द भी अपनी विषम गति मे एक ही साम्य का अपार सौन्दर्य देता है। हिन्दी में मुक्त काव्य कवित्त छन्द की बुनियाद पर ही सफल हो सकता है। मुक्त छंद में Art of reading का आनन्द मिलता है।[2] उसमे Art of music नहीं मिल सकता, वह स्वर प्रधान नही, व्यजन प्रधान है। इसमें बाह्य समता दृष्टि-गोचर नहीं हो सकती, बाहर केवल पाठ से उसके प्रवाह मे जो सुख मिलता है उच्चारण से मुक्ति की जो अबाध धारा प्राणो को सुख प्रवाह-सिक्त निर्मल किया करती है वही इसका प्रमाण है।[3] मुक्त छद इस प्रकार छन्द की भूमि पर ही है जिसकी विषय गति में भी एक साम्य है जिसका प्रवाह ही उसे छान्दसिक प्रमाणित करता है और वह व्यजन प्रधान है, उसमे पढने की कला है और उसकी बुनियाद कवित्त छन्द है।

छन्दोगुरु निराला ही इस मुक्त छन्द के प्रवर्तक ठहरते हैं क्योकि प्रवर्तन के साथ ही उसे पूर्ण विकास भी उन्होंने दिया। इस छन्द मे यद्यपि बाह्य नियमावली की अवहेलना है पर उसकी आत्मा लय ही है। French Le Vers Est Libre और Free Vers में भी लयो की अवस्थिति है। इस लय के अभाव मे पद्य की स्थिति ही सन्देहास्पद हो जायेगी। जुही की कली की लय 'घनाक्षरी' की मानी गई है। घनाक्षरी मुक्तक दण्डक का एक भेद है जिसके अन्य नाम कवित्त और मनहरण भी हैं। इसे मुक्तक वर्णिक कोटि का माना जाता है। १६ और १५ अक्षर पर यति के साथ यह ३१ अक्षर का छन्द है। ध्रु व पद राग के लिये इसकी उपयोगिता महत्वपूर्ण है। यति का प्रयोग इसमे ८, ८, ८, ७ के बाद भी होता है और ७ या ६ वर्णों पर यति प्रतीत हो जाती है। चारों चरणो मे समान अन्त्यानुप्रास होता है[4]।

विजन-वन्—वल्लरी पर	४, ४ वर्ण
सोती थी सुहाग भरी स्नेह-स्वप्न-मग्न	८ वर्ण, ६ (३) मात्राएँ
अमल कोमल तनु तरुणी जुही की कली	८, ८ वर्ण
दृग बद किये शिथिल पत्रांक में	(-२), ६, ७ वर्ण
वासन्ती निशा थी	६ मात्राएं, ५ मात्राएँ
विरह विधुर प्रिया-संग छोड़	६, ६, ३, मात्राएँ
किसी दूर देश में था पवन	३, ६, ६, (७) मात्राएं
जिसे कहते हैं मलयानिल।	३, ६, ६, मात्राएँ[5]

यहाँ सोती थी सुहाग भरी आठ अक्षरो का एक छन्द आप ही बन गया है।

१—परिमल : भूमिका २—परिमल भूमिका पृष्ठ १६, १८, १६, २०, २१

३—पत और पल्लव -पृष्ठ ४२—४४

४—हिन्दी साहित्य कोष : पृष्ठ २, ३८

५—मात्रा और वर्ण विभाजन : डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृष्ठ ४२६ के अनुसार

तमाम लडियो की गति छन्द की तरह है।[1] 'स्नेह स्वप्न मग्न में विशेष यति है। विरह विधुर प्रिया सग छोड की अन्तिम तीन मात्राए, किसी दूर देश मे था पवन आदि की तीन मात्राओ से मिलकर पर्व पूरा करती हैं।[2] अन्त्यानुप्रास की समानता यहा नही है और न ही निश्चित वर्णों के बाद यति का कठिन नियम ध्यान मे रखा गया है। लय केवल घनाक्षरी की है। निश्चित यति और तुक के नियम राहित्य मे इसकी मुक्ति प्रतीत होती है और लय की अवस्थिति उसे छद प्रमाणित करती है। यह लय ध्वनियो के आवर्तन से उत्पन्न होती है जो उतार चढाव के एक व्यवस्थित अनुक्रम पर आधारित है[3]। 'विजन वन' से ारम्भ होकर सुहाग भरी तक पढ़ने पर 'भरी' की ध्वनि आगे तनुतरुणी से मिलती है और जुही की कली मे पुन. उसी ध्वनि—इ—का आवर्तन होता है। दृग बद किए के बाद निशा थी में फिर वही ध्वनि है। पवन के ध्वनि साम्य से मलयानिल मे यति आ जाती है। स्नेह-स्वप्न-मग्न मे स्वर अनुप्रास के चढाव के बाद अमल कोमल तनु तरुणी जुही की कली में स्वर उतर जाता है। पत्राक मे वह चढता है और फिर वासन्ती निशा थी में उतर जाता है। विरह विधुर प्रिया सग छोड मे स्वर को तीव्र करने के बाद 'जिसे कहते हैं मलयानिल' मे अनिवार्यता स्वर को उतारना पडेगा। यह सब पढने की कला पर निर्भर करता है।

छन्दोगुरु की मुक्त छन्द की स्थापनाओ पर आज भी अविश्वास प्रकट किया जाता है।[4] उसे पश्चिमी बीज का पूर्वी अकुर कहा गया है।[5] इन अविश्वासो का विवेचन आवश्यक हो जाता है क्योकि उससे मुक्त छद की स्थापनाओ के कुछ और आयाम प्रकट होते हैं। एक समीक्षक का कहना है कि वस्तुत यह हिन्दी वालो की मौलिक प्रतिभा की सूझ नही है। इसके कई वर्ष पूर्व बगाल और उसके पूर्व अग्रेजी मे इसके काफी प्रयोग हो चुके थे।[6] उन्ही के अनुसार इसका प्रथम प्रयोग वाल्ट ह्विटमैन ने किया था। लीव्ज आफ ग्रास का प्रथम सस्करण १८८५ मे निकला था। समीक्षक का कहना है कि जिस प्रकार घास की पत्तियां समान नही होती, उसी प्रकार कविता की भी, जो प्राकृतिक रचना ही है, पक्तियो के लिये आवश्यक नही है कि वे समान आकार की ही हो। निराला की मुक्त छन्द की उपर्युक्त विवेचना मे घास की पत्तियो का आकार देखा जा सकता है लेकिन मुक्त छन्द मे जैसा कि कहा गया है लय का प्राधान्य है। आकार वहा गौण हो जाता है और वैसे इस घास की पत्ती वाले आकार का भी इतिहास १८८५ के पहिले ही शुरू हो जाता है। अलायसियस बर्टेन्ड ने गेमपाई आफ दि नाइट (१८३७) मे ऐसी कविताओ का प्रणयन किया था जो चार्ल्स

१—परिमल . भूमिका पृष्ठ २०
२—डा० पुत्तूलाल शुक्ल . पृष्ठ ४३१
३—George Thompson · Marxism and Poetry . page 14-15
४—अजता दिसम्बर १९५३
५—लक्ष्मीनारायण सुधांशु जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त
६—अजता दिसम्बर १९५३

वोदलेयर द्वारा १८६२ मे लिटिल पोयम्स इन प्रोज के नाम से अनुवर्तित हुआ। जैसा कि वोदलेयर के शीर्षक से ही प्रमाणित होता है ये गद्य मे लिखी गई छोटी कविताएँ हैं और इन्हे गद्यात्मक काव्य ही कहा जाता है।[1] सच बात तो यह है कि न तो नोवालिम न मैकफर्सन, न वर्ट्रैन्ड और न ही वोदलेयर के ये प्रयोग मुक्त काव्य कहला सकते हैं। उनकी रचानाए गद्य कविता की श्रेणी मे ही आ सकती हैं। अग्रेजी का न तो निराला मे अनुकरण है न ही उससे प्रभाव या प्रेरणा की कल्पना की जा सकती है। वोदलेयर का नाम छायावादोत्तरकाल मे ही सुना जा रहा है। इसके पूर्व न तो वगाल में और न ही हिन्दी प्रदेश मे उनका नाम सुना गया था। यदि सुना भी गया होगा तो इस सीमा तक नही कि उनका अनुकरण ही होने लगे। फिर निराला के मुक्त छद में 'छन्द' की अवस्थिति है, वहा प्रवाह है, लय है जो उसे गद्यात्मक होने से वचाते हैं और 'प्रोज़ पोयम्स' नही वनाते। 'निराला की छन्द विशेपता उनकी दूसरी विशेपताओ की तरह ही सर्वथा नवीन और आश्चर्यजनक रूप से आधुनिक युग के अनुकूल होने पर भी पश्चात्य साहित्य की देन नहीं है। यह विकास समानान्तर तो है पर स्वतत्र भी है।[2]

निराला ने कहा है कि मुक्त भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिये मुक्त छन्द भी जरूरी है। उक्त समीक्षक का कथन है कि इसका कोई तात्विक आधार नही है। इस कथन का आधार अलकार और अलकार्य—(मेटर और टैक्नीक) का कल्पित पृथकत्व है। निराला के काव्य और उनके शिल्प पक्ष के अध्ययन मे हम निरन्तर देखते आ रहे हैं कि वहाँ भाव और अभिव्यक्ति की एक सगति है—उनमे पृथकत्व नही है। भाव और शिल्प, अनुभूति और अभिव्यक्ति की इसी अन्विति पर निराला का विशेप वल रहा है और जव वे कहते हैं कि मुक्त भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये मुक्त छद भी जरूरी है तव भी अलकार और अलकार्य का भेद वे नही करते। तात्पर्य यह नही है कि मुक्त भावनाओं की (अलकार्य) अभिव्यक्ति के लिये मुक्त छद (अलकार) मे पृथकत्व होना चाहिये। निराला का निर्देश है कि अनुभूति और भावनाएँ जव मुक्त होगी तव अपनी अभिव्यक्ति की अन्विति रक्षा के लिये भी वे मुक्त छन्द मे अनिवार्यत ढलेंगी। समीक्षक की यह धारणा भ्रामक है कि 'भारतीय साहित्य मे छन्द सदैव आरोपित माना गया है'। वेदो मे तो छन्द का आवेष्टन स्वाभाविक है। छन्द की व्याख्याएँ जो वेदो और भाष्यो मे मिलती हैं उसके वाह्यारोप को प्रमाणित नहीं करती। छन्द की रूढि-प्रियता के प्रति विरोध कर निराला ने मुक्त छन्द के स्वभाव को वेदो की परम्परा से भी सम्वद्ध किया है। जिस तुलसीदास के छन्द के प्रमाण पर समीक्षक ने निराला के कथन को असगत ठहराया है उसका छन्द मुक्त छन्द नहीं है। वह स्वय एक नया छद विधान है। इस छद की विवेचना मे पद्धरि

१—'Free Verse' Shipley : Dictionary of World Literary Terms

२—नलिन विलोचन शर्मा:—साहित्य : त्रैमासिक : जनवरी, १९५४

परिवर्त—नौ

निष्पत्ति मूल्यांकन

१ प्रयोजन विश्वास और स्थापनाए

व्यापकता और अप्रतिमता

समग्र-सक्षिप्त आकलन

क्रान्ति और विद्रोह

२ दुरूहता बौद्धिक काव्य और काव्य की बौद्धिकता

दार्शनिक काव्य

३ मानवतावाद जनवाद

युग-चेतना, समाज-चेतना, राष्ट्रीयता

४ रहस्यवाद प्रसाद, महादेवी, कबीर, रवीन्द्र और निराला

५ स्वच्छन्दतावाद-युग प्रसाद पत और निराला

प्रदेय

निष्पत्ति . मूल्यांकन

भारतीय सास्कृतिक जागरण की पृष्ठभूमि में हिन्दी कविता की जो नई चेतना की लहर आई थी उसकी सफल, चरम परिणति हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी कविता है। जिसने कविता की दृष्टि और सृष्टि मे ही युगान्तर उपस्थित नही किया, वरन् मौलिक और ऐतिहासिक महत्व की प्रतिमाओ का अवदान दिया। स्वच्छन्दतावाद चली जाती हुई काव्य-परम्परा के प्रति विद्रोह और विरोध के रूप मे प्रतिष्ठित हुआ था, जिसने अपनी मौलिकता से हिन्दी की धारा मोडी। वह अपने दूरगामी प्रभाव और काव्य के शाश्वत तथा स्थायी मूल्यो की दृष्टि से भी आधुनिक हिन्दी कविता—जिसका प्रारम्भ १९ वी शताब्दी से हो जाता है—का स्वर्ण युग माना जाना चाहिए। स्वच्छन्दतावादी कविता की प्रतिष्ठा का अधिकाशेन उत्तरदायित्व, श्रेय, उन व्यक्तियो पर है जिन्होंने अपने व्यापक और मौलिक प्रतिदान से यह कार्य किया। निराला उन व्यक्तियों मे असाधारण और अप्रतिम स्थान श्रेष्ठता के अधिकारी हैं। विद्रोह और पौरुष का इतना ऊर्जस्वी घोष हिन्दी में युगो की उपलब्धि है जिस पर आने वाली पीढियां गौरव कर सकेंगी। व्यापक सवेदना और मानववादी विचारो के कवि निराला के वेदान्तिक अद्वैतवादी, पौरुष-विद्रोही व्यक्तित्व ने स्वच्छन्दतावादी काव्य-शास्त्र को भी नयी दृष्टि दी है और कविता के इस युगान्तर को केवल विद्रोह और विरोध तक ही सीमित न रखकर निर्माण और सृष्टि की अभिनव भूमियां। जहा तक निराला के काव्य का सम्बन्ध है, वह एक ऐसी ऐतिहासिक उपलब्धि है जो हिन्दी कविता मे प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करती है। 'परिमल' से लेकर 'गीतगुज' तक विविध और व्यापक आयाम लेती हुई उनकी कविता स्वय मे पूर्णता अर्जित करती है और एक श्रेष्ठ कलाकार की निस्सगता का समस्यापन। भाव और शिल्प, प्रभाव और परिणति, मे वह हमारी सास्कृतिक, साहित्यक विरासत का नूतन परिवेश है। अपने स्वभाव के अनुरूप ही निराला मे व्यक्तित्व की महानता के साथ काव्य की महानता भी है। काव्य का उनका सास्कृतिक पक्ष वहिरग ही नही अतरग भी है। हम उनके काव्य मे एक सास्कृतिक निष्ठा और महानता की गरिमा देखते हैं और हमारा विश्वास है कि दार्शनिक काव्यो की भारतीय परम्परा मे उनका स्थान शीर्ष कोटि का

है। विद्रोह काव्य के साथ ही उसकी बौद्धिक प्रशाति और दार्शनिक परिवेश उसे श्रेष्ठ कला की व्यापकता से समन्वित करते हैं और इस दृष्टि से भी वह अपने युग की मौलिक सृष्टि है।

प्रस्तुत परिवर्त का उद्देश्य उपर्युक्त विश्वासो और स्थापनाओ की परीक्षा का है समग्रत. और निष्पत्या यह परिवर्त काव्य के मूल्याकन की आशसा लेकर चलता है। काव्य (Great Poetry) की अवधारणाके परिपार्श्व में निराला काव्य का यह परीक्षण, पूर्ववर्ती परिवर्तो का समाहार है और निष्कर्षत उसकी कतिपय मौलिक विशेषताओं का स्पष्टीकरण। हमारा प्रास्थानिक प्रयत्न स्थायी और शाश्वत मूल्यो के काव्य की सामान्य अवधारणाओ का परिचय प्राप्त करना है, तत्पश्चात् इस निष्कर्ष पर उनके काव्य की मूल विशेषताओ का परीक्षण। प्रत्येक कवि का महत्व युगीन भी होता है। युगीन महत्व का तात्पर्य युग की सीमित परिधि मे ही महत्व से नहीं वरन् समय की अप्रतिहत गति मे विशेषकाल की श्रेष्ठता और महता की दृष्टि से उसका स्थान निर्धारण है। कोई भी श्रेष्ठ कवि अपनी ऐतिहासिक परम्परा की धारा मे नये प्रयोग और सृष्टि करता है उस परम्परा को वह विकसित करता है, प्रगति देता है—अलग हटकर, नया जोडकर। परम्परा का यहाँ अर्थ 'रुढि' नही है। वह एक ऐसी प्रवहमान चेतना है जो अपवाद-रहित प्रत्येक श्रेष्ठ कवि मे मिलती है। युगीन महत्व से मेरा तात्पर्य उन विशेषताओ से है जो सामान्यत युग मे और प्राप्य नही है। जब तक किसी कवि मे यह तत्व नही होता तब तक वह श्रेष्ठता का अधिकारी नही है—यह मेरा दृढ विश्वास है।

[स्वच्छन्दतावादी युग की सम्पूर्ण कविता मे जितना अर्थपूर्ण वैविध्य निराला मे मिलता है उतना कदाचित् कही नही है। उनका सम्पूर्ण काव्य एक अर्थ मे पूरे युग के काव्य इतिहास का प्रतीक है, युग के समस्त मूल्यो को वह प्रस्तुत करता है। मुक्ति के साथ विस्तार और व्यापकता का यह आख्यान अप्रतिम है] स्थायित्व का प्रमाण तो कदाचित समय निर्धारित करेगा लेकिन महानता के विषय मे हम अपना विश्वास प्रकट कर सकते हैं। महत् काव्य की एक विशेषता हमारी दृष्टि मे उसकी व्यापकता है। काव्य की व्यापकता को मैं दो रूपों में देखता हूँ। एक व्यापकता आरोपित होती है—सायास, दूसरी स्व-प्रेरित। एक प्रयत्न साध्य होती है, दूसरी स्वभाव का ही परिणाम। एक वस्तुपरक होती है दूसरी आत्मपरक। निराला की व्यापकता स्वप्रेरित, स्वभावगत और आत्मपरक है। एक तुलना से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के वृहदाकार के बाद भी उनकी मूलभूमि में कोई अन्तर नही आया है। द्विवेदीयुग से लेकर अब तक उनके विभिन्न प्रयोगो में भी उनका व्यक्तित्व एक सा है। काव्य-व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से व्यापकता का शृगार वहाँ नही होता। भारत भारती से लेकर आज तक रचना-बहुलता के साथ गुप्त जी का काव्य-व्यक्तित्व जहाँ का तहाँ है। महादेवी वर्मा के काव्य में भी विकास और विविधता नाम की कोई वस्तु नही है। वह आदि से अन्त तक

एकतान, एकरस है। इसके विपरीत निराला के काव्य मे यह व्यापकता मिलती है। उनके प्रत्येक विकास के साथ व्यापकता की वृद्धि होती गई है। "परिमल" मे ही जहाँ 'जुही की कली' का उन्मुक्त प्रेम-व्यापार है, वहाँ "तुम और मैं" की दार्शनिकता भी है, 'बादल-राग' और 'जागो फिर एक बार' का क्रान्ति घोष है, 'यमुना के प्रति' की सास्कृतिक-चेतना है, 'शिवाजी के पत्र' की राष्ट्रीयता है, 'विधवा' और 'भिक्षुक' की प्रगतिशीलता है। आत्मपरक व्यापकता का एक और लक्षण होता है। व्यक्तित्व की विशेषता की छाप वहाँ सर्वत्र मिलती है क्योंकि वह वस्तु की रूप की नही आत्मा की व्यापकता होती है—चेतना की। यह व्यापकता नित नये मार्ग, आयाम ढूँढ लेती है। प्रत्येक नवीन वहाँ शीघ्र ही अतिक्रमित भी हो जाता है। निराला की प्रतिभा को प्राचीनता का बधन कभी स्वीकार नही हुआ। मुक्त-छद की साधना के बाद गीतो मे भी नये प्रयोग उन्होंने किए। प्रगति और प्रयोग के रूप मे पुनः उनके काव्य ने एक नया आयाम लिया। बृहत्तर रचनाओ मे उनकी प्रतिभा महाकाव्य की गरिमा का सस्पर्श करती है—उसे प्राप्त करती है। और अर्चना आराधना के गीतो मे भक्ति के साथ ही जीवन की विविध क्षेत्रीय व्यजना भी सहजता से हुई है। इस विविधता और व्यापकता के आधार पर यह सादृश्य कथन उपयुक्त प्रतीत होता है कि, 'हिन्दी भाषी जनता के साहित्यिक ज्योतिषियों ने, कहानी वाले सात अधे भाइयो की भाँति, भाँति-भाँति से हाथी की हास्य विस्मय भरी रूप-रेखायें बखाने की, जिनसे निराला जी की अपेक्षा समीक्षकों की निराली सामुद्रिकता का ही परिचय मिलता है'[1] वस्तुतः ऐसा कोई एकवृत्त या केन्द्र नही है जिसके प्रति कहा जाय कि यही निराला की कविता है अथवा यही निराला है। यह वैविध्य और व्यापकता पूरे युग मे अप्रतिम है।

प्रसाद की व्यापकता यदि देखनी होगी तो चित्राधार से लेकर कामायनी तक की उनकी सभी रचनाओ का आकलन करना होगा। उन्होने वृत्त छोडे हैं और सीमाएँ बढाई हैं। ऐसा नहीं कि केवल चित्राधार अथवा कानन कुसुम अथवा लहर मे ही प्रसाद की व्यापकता का पूरा आख्यान मिल जाय। कामायनी केवल महाकाव्य होने के नाते इसका अपवाद है। निराला के विषय में ऐसा नहीं है। परिमल की व्यापकता हम देख चुके हैं। गीतिका अथवा अनामिका पर भी यदि दृष्टि केन्द्रित की जाय तो उनकी व्यापकता का आख्यान मिल जायगा। अवश्य किसी महाकाव्य के प्रणयन के अभाव मे निराला, प्रसाद की कामायनी वाली उच्चता को नही पा सके, लेकिन महाकाव्य की गरिमा से मडित उनकी कविताओ के प्रमाण पर यह कहना भी असगत होगा कि उनमें महाकवि की प्रतिभा का अभाव है और वे केवल प्रगीत कवि हैं। पत के सम्बन्ध में समस्या ही दूसरी है। पल्लव से लेकर उत्तरा और सौवर्ण तक उनकी कविता में विविधता तो अवश्य है, लेकिन व्यापकता हम उसे नहीं कहते। ग्राम्या अथवा युगवाणी मे उन्होने एक नया रास्ता अपनाया और स्वर्ण-किरण अथवा

१—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी पृ० १३७

है। विद्रोह काव्य के साथ ही उसकी बौद्धिक प्रशांति और दार्शनिक परिवेश उसे श्रेष्ठ कला की व्यापकता से समन्वित करते हैं और इस दृष्टि से भी वह अपने युग की मौलिक सृष्टि है।

प्रस्तुत परिवर्त का उद्देश्य उपर्युक्त विश्वासों और स्थापनाओं की परीक्षा का है समग्रत. और निष्पत्या यह परिवर्त काव्य के मूल्यांकन की आशंसा लेकर चलता है। काव्य (Great Poetry) की अवधारणा के परिपार्श्व में निराला काव्य का यह परीक्षण, पूर्ववर्ती परिवर्तों का समाहार है और निष्कर्षत. उसकी कतिपय मौलिक विशेषताओं का स्पष्टीकरण। हमारा प्रास्थानिक प्रयत्न स्थायी और शाश्वत मूल्यों के काव्य की सामान्य अवधारणाओं का परिचय प्राप्त करना है, तत्पश्चात् इस निष्कर्ष पर उनके काव्य की मूल विशेषताओं का परीक्षण। प्रत्येक कवि का महत्व युगीन भी होता है। युगीन महत्व का तात्पर्य युग की सीमित परिधि में ही महत्व से नहीं वरन् समय की अप्रतिहत गति में विशेषकाल की श्रेष्ठता और महत्ता की दृष्टि से उसका स्थान निर्धारण है। कोई भी श्रेष्ठ कवि अपनी ऐतिहासिक परम्परा की धारा में नये प्रयोग और सृष्टि करता है उस परम्परा को वह विकसित करता है, प्रगति देता है—अलग हटकर, नया जोडकर। परम्परा का यहाँ अर्थ 'रुढ़ि' नहीं है। वह एक ऐसी प्रवहमान चेतना है जो अपवाद-रहित प्रत्येक श्रेष्ठ कवि में मिलती है। युगीन महत्व से मेरा तात्पर्य उन विशेषताओं से है जो सामान्यत. युग में और प्राप्य नहीं है। जब तक किसी कवि में यह तत्व नहीं होता तब तक वह श्रेष्ठता का अधिकारी नहीं है—यह मेरा दृढ विश्वास है।

[स्वच्छन्दतावादी युग की सम्पूर्ण कविता में जितना अर्थपूर्ण वैविध्य निराला में मिलता है उतना कदाचित् कहीं नहीं है। उनका सम्पूर्ण काव्य एक अर्थ में पूरे युग के काव्य इतिहास का प्रतीक है, युग के समस्त मूल्यों को वह प्रस्तुत करता है। मुक्ति के साथ विस्तार और व्यापकता का यह आख्यान अप्रतिम है। स्थायित्व का प्रमाण तो कदाचित समय निर्धारित करेगा लेकिन महानता के विषय में हम अपना विश्वास प्रकट कर सकते हैं। महत् काव्य की एक विशेषता हमारी दृष्टि में उसकी व्यापकता है। काव्य की व्यापकता को मैं दो रूपों में देखता हूँ। एक व्यापकता आरोपित होती है—सायास, दूसरी स्व-प्रेरित। एक प्रयत्न साध्य होती है, दूसरी स्वभाव का ही परिणाम। एक वस्तुपरक होती है दूसरी आत्मपरक। निराला की व्यापकता स्वप्रेरित, स्वभावगत और आत्मपरक है। एक तुलना से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के वृहदाकार के बाद भी उनकी मूलभूमि में कोई अन्तर नहीं आया है। द्विवेदीयुग से लेकर अब तक उनके विभिन्न प्रयोगों में भी उनका व्यक्तित्व एक सा है। काव्य-व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से व्यापकता का शृंगार वहाँ नहीं होता। भारत भारती से लेकर आज तक रचना-बहुलता के साथ गुप्त जी का काव्य-व्यक्तित्व जहाँ का तहाँ है। महादेवी वर्मा के काव्य में भी विकास और विविधता नाम की कोई वस्तु नहीं है। वह आदि से अन्त तक

एकतान, एकरस है। इसके विपरीत निराला के काव्य में यह व्यापकता मिलती है। उनके प्रत्येक विकास के साथ व्यापकता की वृद्धि होती गई है। "परिमल" मे ही जहाँ 'जुही की कली' का उन्मुक्त प्रेम-व्यापार है, वहाँ "तुम और मैं" की दार्शनिकता भी है, 'वादल-राग' और 'जागो फिर एक बार' का क्रान्ति घोष है, 'यमुना के प्रति' की सास्कृतिक-चेतना है, 'शिवाजी के पत्र' की राष्ट्रीयता है, 'विधवा' और 'भिक्षुक' की प्रगतिशीलता है। आत्मपरक व्यापकता का एक और लक्षण होता है। व्यक्तित्व की विशेषता की छाप वहाँ सर्वत्र मिलती है क्योकि वह वस्तु की रूप की नही आत्मा की व्यापकता होती है—चेतना की। यह व्यापकता नित नये मार्ग, आयाम ढूंढ लेती है। प्रत्येक नवीन वहाँ शीघ्र ही अतिक्रमित भी हो जाता है। निराला की प्रतिभा को प्राचीनता का बधन कभी स्वीकार नही हुआ। मुक्त-छद की साधना के वाद गीतो में भी नये प्रयोग उन्होंने किए। प्रगति और प्रयोग के रूप में पुनः उनके काव्य ने एक नया आयाम लिया। वृहत्तर रचनाओ में उनकी प्रतिभा महाकाव्य की गरिमा का सस्पर्श करती है—उसे प्राप्त करती है। और अर्चना आराधना के गीतो मे भक्ति के साथ ही जीवन की विविध क्षेत्रीय व्यजना भी सहजता से हुई है। इस विविधता और व्यापकता के आधार पर यह सादृश्य कथन उपयुक्त प्रतीत होता है कि, 'हिन्दी भाषी जनता के साहित्यिक ज्योतिषियो ने, कहानी वाले सात अधे भाइयों की भाँति, भाँति-भाँति से हाथी की हास्य विस्मय भरी रूप-रेखायें वखान की, जिनसे निराला जी की अपेक्षा समीक्षकों की निराली सामुद्रिकता का ही परिचय मिलता है।'[1] वस्तुतः ऐसा कोई एकवृत्त या केन्द्र नहीं है जिसके प्रति कहा जाय कि यही निराला की कविता है अथवा यही निराला है। यह वैविध्य और व्यापकता पूरे युग मे अप्रतिम है।

प्रसाद की व्यापकता यदि देखनी होगी तो चित्राधार से लेकर कामायनी तक की उनकी सभी रचनाओ का आकलन करना होगा। उन्होंने वृत्त छोडे हैं और सीमाएँ बढ़ाई हैं। ऐसा नहीं कि केवल चित्राधार अथवा कानन कुसुम अथवा लहर मे ही प्रसाद की व्यापकता का पूरा आख्यान मिल जाय। कामायनी केवल महाकाव्य होने के नाते इसका अपवाद है। निराला के विषय मे ऐसा नहीं है। परिमल की व्यापकता हम देख चुके हैं। गीतिका अथवा अनामिका पर भी यदि दृष्टि केन्द्रित की जाय तो उनकी व्यापकता का आख्यान मिल जायगा। अवश्य किसी महाकाव्य के प्रणयन के अभाव में निराला, प्रसाद की कामायनी वाली उच्चता को नहीं पा सके, लेकिन महाकाव्य की गरिमा से मडित उनकी कविताओ के प्रमाण पर यह कहना भी असगत होगा कि उनमें महाकवि की प्रतिभा का अभाव है और वे केवल प्रगीत कवि हैं। पत के सम्बन्ध में समस्या ही दूसरी है। पल्लव से लेकर उत्तरा और सौवर्ण तक उनकी कविता में विविधता तो अवश्य है, लेकिन व्यापकता हम उसे नहीं कहते। ग्राम्या अथवा युगवाणी मे उन्होने एक नया रास्ता अपनाया और स्वर्ण-किरण अथवा

१—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी पृ० १३७

स्वर्ण-धूलि मे उनकी कविता ने पुन एक पाट बदला। यह रास्ता बदलने और पाट बदलने की स्थिति व्यापकता कठिनता से कहलायेगी और यह भी सही है कि पल्लव कालीन अपने काव्य-वैभव को पत फिर नही पा सके। निराला के प्रत्येक मोड मे उसी मौलिकता, शक्तिमत्ता, प्राजलता और काव्य-परिष्कार के दर्शन होते हैं, लेकिन पत के विषय मे यह नही। ग्राम्या और युगवाणी के पत मे पल्लव-कालीन पत का काव्य-परिष्कार नही है और न उनके स्वर्ण-काव्य में ही। पल्लव-कालीन पत की जो अपील है वह न तो उनके प्रगतिवादी मार्ग-परिवर्तन मे है न अरविन्द दर्शन वाली परिणति, पाट-परिवर्तन मे। निराला की यह व्यापकता और अप्रतिमता उनके सम्पूर्ण काव्य के सक्षिप्त आकलन से प्रमाणित होती है।

'परिमल' से लेकर 'गीतगुज' तक निराला की काव्य-साधना ने विभिन्न आयाम लिये हैं। परिमल की स्वच्छन्दतावादी कविताएँ उस युग का नेतृत्व लेकर चली थी। इनमे निराला का रूप छायावादी, रहस्यवादी कवि का है। मुक्त छन्दो की साधना मे भी लय और प्रवाह की रक्षा द्वारा उन्होने स्वच्छन्दता को उच्छृखलता से बचाया। नूतन कल्पना, नूतन प्रतीक तथा नूतन उपमाविधान द्वारा काव्य का अभिनव शृ गार किया। 'जुही की कली' के मासल-शृ गार से लेकर 'तुम और मैं' की अद्वैत-दर्शन की काव्य व्याख्या, 'यमुना के प्रति' का सास्कृतिक परिवेश, 'महाराज शिवाजी के पत्र' की राष्ट्रीयता और 'बादल राग' का क्रातिघोष तथा 'विधवा', 'बहू' 'भिक्षुक' का सामाजिक-चेतना से समन्वित यथार्थ 'परिमल' की व्यापकता और विविधता के प्रमाण है। जिस क्रान्ति का समस्थापन निराला ने किया और उसे पूर्णता तक पहुँचाया, जितनी विविधता व्यापकता उनके इस प्रथम सग्रह मे मिलती है उतनी उस युग के किसी कवि मे नही है। पत के पल्लव का पट इतना विस्तृत नही है। वे कल्पना और सौन्दर्य तक सीमित हैं। प्रसाद का आँसू भी उस विविधता का धनी नही है। इसीलिए परिमल को मैंने स्वच्छन्दतावादी क्रान्ति का प्रथम प्रतिनिधि काव्य-सग्रह कहा है—उस क्रान्ति का समस्थापक। 'गीतिका' भी एक नई क्रान्ति की आशसा लेकर आई। उसमे सगीत के साथ ही परिष्कृत और उच्चस्तरीय काव्य का समन्वय हुआ है। उन गीतो की मौलिकता ही इतनी है कि आज तक उनका अनुकरण तो क्या सादृश्य तक नही मिलता और वे स्वतत्र अन्विति और आदर्श के रूप मे समादृत हैं। सगीत काव्य का यह अभिनव प्रतिदान था। इन गीतो मे निराला की कवि-चेतना का स्फुरण विभिन्न दिशागामी और सार्वभौमिक रहा है। इसी के बाद 'अनामिका' उनके प्रतिनिधि काव्य-सग्रह के रूप मे आई। इसमे एक ओर निराला की छायावादी कविताओ और स्वच्छन्द प्रवृत्ति का आख्यान है दूसरी ओर व्यग्य प्रधान सामाजिक यथार्थ के चित्र जिसमे प्रगतिशील कला का नमूना है और प्रगतिवादी धारा का नेतृत्व करने की क्षमता। यहाँ 'दिल्ली' आदि रचनाओ मे निराला सास्कृतिक कलाकार हैं। 'अनामिका' निराला काव्य मे ही नही, कदाचित् सम्पूर्ण आधुनिक काव्य का भी एक प्रकाश-स्तम्भ है, जिसमे उसके प्रकाश

का एक अश छायावादी कविता का प्रतिनिधित्व करता है दूसरी ओर छायावादोत्तर काल की प्रवृत्तियों का दिशा-निर्देश । अनामिका मे महत् काव्य के तत्वो का सन्निवेश भी हुआ है—जहाँ नर्गिस की कल्पना महाकाव्यात्मक है, राम की शक्ति-पूजा का आख्यान महाकाव्यात्मक है और सरोज-स्मृति में उनके व्यक्तित्व का सर्वाधिक प्रकाशन है। तुलसीदास अपनी सास्कृतिक गरिमा और महाकाव्य के औदात्य के लिए प्रसिद्ध हैं। यहाँ एक साथ ही निराला का काव्य और व्यक्तित्व, महाकाव्य और महाकवि की गरिमा पाता है। कुकुरमुत्ता, अणिमा, वेला, नये पत्ते में निराला काव्य पुन एक क्रान्ति करता है। यों तो निराला ने हिन्दी मे विभिन्न प्रयोग और क्रान्तियाँ की हैं लेकिन इस क्रान्ति का महत्व इसलिए भी है कि यह एक ऐसे कवि द्वारा आई है जो स्वय स्वच्छन्दतावाद के रूप में एक क्रान्ति पहिले ही कर चुका था। इस क्रान्ति का महत्व यह प्रमाणित करने मे भी है कि प्रगति का परम्परा से, प्रयोग का पीढी से क्या सम्बन्ध होता है ? कुकुरमुत्ता का व्यापक, (सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और साहित्यिक) व्यग्य एक महत् प्रतिभा और काव्य शक्ति का परिचायक है। नये पत्ते के रूप मे जो यथार्थवादी कला का रूप प्रस्तुत हुआ वह हिन्दी कविता की वास्तविक प्रगतिवादी धारा का अग्रगण्य है। 'देवी सरस्वती' उन सारे बिखरे प्रयत्नो का समाहार करती है जो उसके पूर्व ग्राम और साधारण वर्गों के प्रति बौद्धिक सहानुभूति लेकर बढे थे—आकर्पित हुए। 'वेला' मे फिर एक क्रान्ति होती है—यह प्रमाणित करने के लिए एक क्रान्ति होती है—यह प्रमाणित करने के लिए कि हिन्दी कविता मे भी उर्दू की सी मुहावरेदानी, वाग्विदग्धता है। गजलो का यह प्रयोग भी एक परम्परा का आरम्भ ही था। साथ ही लोक-गीतों की प्रकृत भूमि का सस्पर्श भी वेला मे हुआ। अणिमा मे उनकी कला प्रगति और प्रयोग के द्विविध रूपो का समस्थापन करती है। कहना तो यही चाहिए कि यह गीतो में नयी शैली के साथ यथार्थवादी कला एव विभिन्न प्रयोगो का दिशा-निर्देश है। जिन स्वरो और प्रवृत्तियो की प्रधानता अर्चना, आराधना और गीत गुज मे है उनका सूत्र 'अणिमा' से ही प्रारम्भ हो जाता है। अपने वर्तमान परिवेश मे निराला एक भक्त, साधक कवि के रूप मे हैं। यह उनकी कला का पुन· एक विकास है। एक अर्थ मे कहा जाय तो यह मत्रो और श्लोको, भगवद्गीतों की कला का पुनरुत्सर्जन है। इस पूरे काव्य-विकास में निराला के काव्य का सर्वप्रमुख रूप—(विशेषत.) जो सामने आता है वह क्रान्ति का है, विद्रोह का है। यह विद्रोह भी विध्वसात्मक नही है, नव-निर्माण है। वस्तुत· यह मुक्त-कवि का रूप है। दूसरा रूप उनके काव्य की विविधता और व्यापकता का है। तीसरा रूप उनके काव्य की आदि-भारतीयता का है, क्योकि वह सास्कृतिक काव्य का परिवेश है। उनके परवर्ती काव्य के आधार पर वे जन-कवि के रूप मे समादृत हैं।

जहाँ तक निराला के काव्य की कथित दुरुहता का प्रश्न है हम उसे उनके परिवेश के कारण मानते हैं। उनके काव्य की बौद्धिकता और दार्शनिकता आरोपित अथवा सायास नहीं है। वह बौद्धिक और दार्शनिक उन्हीं अर्थो मे है जिन अर्थों मे

उनका व्यक्तित्व। बौद्धिक काव्य और काव्य की बौद्धिकता मे अन्तर है। बौद्धिक काव्य मे काव्य, बौद्धिक आयास का परिणाम होता है, लेकिन काव्य तो प्रकृत्या मानस-वाणी है वहाँ दृष्टिकोण बौद्धिक अथवा दार्शनिक हो सकता है। बौद्धिक काव्य मे बुद्धि ही काव्य को आच्छादित कर लेती है और काव्य का प्रकृत प्रवाह रुका-सा होता है, लेकिन काव्य की बौद्धिकता मे कवि का चिन्तन और दर्शन भी अभिव्यक्त होता है। कामायनी के उदाहरण से यह अन्तर और स्पष्ट हो जायगा। कामायनी को बौद्धिक काव्य नहीं कहा जा सकता, क्योकि उसका काव्य बौद्धिक आयास का परिणाम नही है। उसका काव्य बुद्धि से आच्छादित, आक्रान्त नही है। कामायनी की बौद्धिकता का यही अर्थ है कि उसमे प्रसाद का चिन्तन और दर्शन मूर्त हुआ है। "हम निराला के मूल विकास के मूल में (भी) भावना की अपेक्षा बुद्धितत्व की प्रमुखता पाते हैं। निराला जी ने अपनी बुद्धि-विशिष्ट रचनाओ को अभिधा शैली में और स्वच्छन्द छन्द मे लिखा है—आत्म-विश्वास को और भी दृढ करने मे निराला जी की वे कविताएँ समर्थ हुई हैं जिनमें बुद्धितत्व की प्रधानता थी किन्तु जिनमें वाणी की ओजस्विता का अद्भुत प्रदर्शन था—यह बुद्धि तत्व आधुनिक भावना विजडित कविता में निस्सगता छाने मे और कोरी भावुकता या कल्पना प्रवणता को सग्रथित कला सृष्टि का स्वरूप देने मे समर्थ हुआ है, एक दूसरे से असम्पृक्त या टूटी हुई कल्पनाओ को एकतानता (इससे) मिली है।"[1] काव्य का धर्म चेतना का विस्तार होता है इससे भी आगे उसका धर्म चेतना को प्रगाढ गहन और तीव्र करना होता है। यह कार्य काव्य की इसी बौद्धिकता से हो सकता है। जब काव्यानुभूति अपनी पूर्णता और शुद्धता में अनुभूति कहलाती है तब उसमे बौद्धिकता का भी सन्निवेश होता है अन्यथा उसका केवल ऐन्द्रिय अनुभूति होकर रह जाना भी असभव नही। काव्य के इस रूप का व्यक्तित्व के बौद्धिक पक्ष से घनिष्ठ सम्बन्ध है और व्यक्ति चेतना के विकास मे उसका विकास अपेक्षाकृत अधिक भी है। एक विशेषता निराला-काव्य की यह भी है कि जहाँ वह निरी भावुकता से बच सकी है, उसके बुद्धितत्व ने जहाँ काव्य निस्सग तटस्थता का अवदान दिया है वहाँ वह निरे दर्शन-सूत्रो और वर्णनो तक भी सीमित नही है। गीतिका मे यह रूप अधिक स्पष्ट होता है। वहाँ भावना और बुद्धि साथ-साथ चलती है। इस द्वितीय चरण मे निराला जी बुद्धि और भावना का रमणीय योग करने मे समर्थ हुए हैं।—(और) कविताएँ विशेष उज्ज्वल और निखरी हुई हैं।[2] इस अवसर पर अग्रेजी कवि ब्राउनिंग की याद आती है जो वहाँ इस प्रकार के काव्य का अग्रदूत होकर आया था। निराला की जिज्ञासा भी ब्राउनिंग की तरह बौद्धिक है और जिस दुरूहता, अज्ञेयता और अस्पष्टता के दोषी निराला कहे जाते हैं। ब्राउनिंग पर भी ऐसे ही आक्षेप हुए थे। इन आक्षेपो का उत्तर हम यह कह कर भले न दें कि कविता के लिए बोधगम्य होना आवश्यक नहीं है,

१—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी पृ० १३६-१३९-१४०

२—वही पृ० १४१

क्योंकि वह एक मनोदिशा को व्यक्त करती है, अथवा कविता मे किसी वस्तु का यथातथ्य चित्रण कर देना उसके तीन-चौथाई आनन्द को समाप्त कर देना है या कि शनै शनैः अनुमान लगाने मे जो तृप्ति मिलती है वह लुप्त हो जाती है और कल्पना तो वही लुभाती है जिसकी व्यजना या इगित किया जाता है।[1] फिर भी इन आक्षेपो और दुरुहता के प्रश्नो को मैं सापेक्षिक मानता हूँ। हमारे लिए दुरुह काव्य वही हो सकता है जिसकी भूमि तक हम नही उठ पाते।[2] यह कहने मे कोई सकोच नही है कि निराला काव्य का पूरा-पूरा रसबोध साधारण भावुकता का कार्य तो नही ही है।

निराला के काव्य में इस बुद्धि तत्व की प्रमुखता का एक और परिणाम हुआ है। उनका काव्य, दर्शन और चिन्तन की गम्भीरता से समन्वित भी हो गया है। वे केवल स्वच्छन्दतावादी कल्पना विलासी स्वप्न-द्रष्टा न होकर एक चिन्तक भी हैं। उनके काव्यो में दार्शनिक सत्यों का रागपक्ष से समन्वित उद्‌घाटन है, उनकी भावात्मक अनुभूति है। इसे ही हम दार्शनिक काव्य कहते हैं। दार्शनिक विचारो अथवा सूत्रों को पद्य-बद्ध कर देना ही दार्शनिक काव्य नही है। दार्शनिक कवि वही हो सकता है जिसे उन तत्वो का साक्षात्कार हो गया है, वे उसकी अनुभूति के अग बन सके हैं, उनका केवल परिचय ही नहीं हैं। कविता केवल वस्तु का प्रकाशन नही, उस वस्तु की भावना का प्रकाशन है।[3] कोई दार्शनिक तत्व कवि की अनुभूति बनकर आया है या नही इसका एकमात्र निष्कर्ष यही है परीक्षा की जाय कि उन विचारो को आवेगात्मक अनुभूति की कितनी सशक्त और काव्यामक व्यजना हुई है। जागृति मे सुप्ति थी और तुलसीदास आदि के एकाधिक स्थल इस निष्कर्ष पर खरे उतरेंगे। उत्तम काव्य की कल्पना सम्भव है दर्शन के अभाव मे की जा सके, लेकिन महान काव्य की यह एक अनिवार्य आवश्यकता हो जाती है। यह सही है कि प्रत्येक महान काव्य विश्व के प्रति एक दृष्टिकोण प्रकट करता है, वह ज्ञान और चिन्तन की एक पद्धति का अथवा एक दर्शन का परिचय देता है। निराला की कतिपय कविताएँ ('तुम और मैं, तुलसीदास के कुछ अश और परिमल मे आयी उनकी अन्य दार्शनिक कविताएँ) गूढ़तम सत्यो के साक्षात्कार से प्रत्यक्ष सबन्वित है। उनमे एक दर्शन (VISION) से मुक्त चिन्तन मुखर है। ये कविताएँ छोटे आकार और प्रकार मे भी दार्शनिक सत्यो का

१—मलाम

2—"Of course metaphysical poetry can not be enjoyed by the profane But non-metaphysical poetry has its profanes also.

One who has never been blessed with the sight of, say a mountain peak cannot enjoy a poem which has the Himalays as its themes' —Herbert Read

3—The Philosophical Poem is not obviously Lyrical in Nature and is in variably long
H Read From in Modern Poetry P. 64.

प्रकटीकरण करती है। गह मान्यता यहाँ मुझे यथातथ्य प्रतीत नही होती कि दार्शनिक कविताएँ अनिवार्यत. प्रगीतात्मक नही होती और कि वे नियत. ही लबी हुआ करती हैं। [1]

यदि एक शब्द मे कहा जाय तो निराला का जीवन-दर्शन मानवतावाद है। सास्कृतिक नवोत्थान के नवीन दार्शनिक आयोजन में स्वामी विवेकानन्द ने-सर्वत्र एक ही आत्मा का प्रकाश माना है। निराला के मानवतावाद की दार्शनिक भूमि यही है। रवीन्द्र ने कहा था 'मारिते चाइना आमि सुन्दर भुवने' निराला कहते हैं—'धन्य ! स्वर्ग यही'। इस जगत और भवन के प्रति निराला का मोह है और वे मानुषेर माझे आमि बाँचिवारे चाई'[2] अथवा 'मानुषेर चेये बड किछु नाई।'[3] की ही भाँति मानवतावाद के गायक हैं। वस्तुतः मानव सबन्ध से परे साहित्य नही है।[4] रवीन्द्र की भाँति ही निराला का दर्शन मानवतावाद है, जब वे कहते हैं 'तुम हो महान, तुम सदा हो महान' तव मानव की श्रेष्ठता का उद्घोष करते हैं। यह मानवतावाद युग की देन भी रहा है। युग की प्रजातान्त्रिक भावना के मूल में इसी दर्शन की स्थिति है। सम्राट एडवर्ड की प्रशस्ति का आधार यही व्यापक मानवतावाद है। निराला के काव्य की ध्वनि यही है कि मनुष्य ही मनुष्य का प्रतिमान है। मानव की समानता और उसकी श्रेष्ठता के आख्यान के कारण ही निराला मानवतावादी कहे जायेंगे। निराला के मानवतावाद को किसी आनुषगिक विषय के रूप मे न लेना चाहिए। वह किसी आन्दोलन किसी कार्य-क्रम की प्रतिपत्ति नहीं है, उसकी अन्विति स्वतन्त्र है, यद्यपि प्रेरणा के रूप मे वह अद्वैतवादी दर्शन से सम्बद्ध है। इस मानवतावाद का एक रूप जनवाद भी उनके काव्य मे मिलता है। यह जनवाद मानवतावादी सीमा का ही एक प्रत्यक्ष उपकरण है। काव्यगत जनवाद से मेरा तात्पर्य केवल उनके नवीन यथार्थवादी दृष्टिकोण से है जो काव्य मे जन-सामान्य की प्रतिष्ठा करता है। यह वह जीवन यथार्थवादी दृष्टि है जो लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात करता है।[5] जिस दृष्टिकोण के सहारे सामान्य जनता की आशा आकाक्षा और उनके जीवन का प्रतिनिधित्व होता है वही दृष्टिकोण जनवादी कहलायेगा। जनवाद का व्यापक अर्थ प्रकृत्या मानवतावाद ही है और मानवतावाद का उल्लेख कर जनवाद के सम्बन्ध मे कहना यद्यपि सीमा सकुचित करना होगा। तथापि निराला के परवर्ती काव्य की मूल-ध्वनि को हम जनवादी ही कहना चाहते हैं। यो प्रसाद भी मानवतावादी दार्शनिक हैं लेकिन जनवाद का रूप उनमे

1—A poem expresses not a thing in itself but the poet's feeling of it. John. Benett : Metaphysieal Poets.

२—रवीन्द्र

३—नजरुल इस्लाम

४—डा० रामविलास शर्मा : राष्ट्रीय स्वाधीनता और साहित्य पृ० ८०

५—जयशकर प्रसाद काव्य और कला तथा अन्य निवन्ध पृ० १२०

नहीं मिलता। यह कहा जाय कि मानवतावाद एक दार्शनिक सैद्धान्तिक उपपत्ति है जब कि जनवाद उसका क्रियात्मक व्यावहारिक रूप है। निराला जनवादी इन्हीं अर्थों में हैं कि उनके काव्य मे शोषित, दलित, और कृषको की विषम स्थिति का चित्रण मिलता है। इस जनवाद को किसी राजनीतिक दल की कार्य प्रणाली से सम्बद्ध न किया जाय, (और न ही करना चाहिए) तो तुलसी तक में जनवादी प्रवृत्ति के दर्शन मिलेंगे। जनवादी कही जाने वाली निराला की कविताओ मे विषय ही नहीं शैली और भाषा भी उन्हें जन के समीप लाती है। आधुनिक युग के जनवादियो मे जब हम शीर्षस्थान पर निराला को देखते हैं तो हमारी दृष्टि निराला के उस काव्य पर है जो ग्रामीण जनता, सामान्य शोषित दलित वर्गों के प्रति सहानुभूति के साथ उनके लोक रगो को उभारता है, निम्न वर्ग की विषमताओ का चित्रण करता है। उनकी आशा आकाक्षा का प्रतिनिधित्व करता है और सामाजिक असमानता पर व्यग्य। यह प्रवृत्ति 'विधवा' और 'भिक्षुक' के रूप मे परिमल मे ही बीजत है, जिसका विकास 'वे किसान की नई बहू की आँखें' 'दान' आदि से होता हुआ कुकुरमुत्ता और नये पत्ते की अधिकाश कविताओ, एव बेला, अर्चना, आराधना के गीतो तक चला गया है। नये पत्ते की 'महगू महँगा रहा, कुत्ता भौंकता रहा, झींगुर डरकर बोला' आदि मे जीवन का जो व्यग्य है वह जनता की विवशता को प्रकाशित करता है। सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति मे उनके प्रगति और प्रयोग काव्य का अधिकाश भाग सफल है। किसानो और मजदूरों की विवशता को यहा वाणी मिली है, उनकी आशा आकाक्षा व्यक्त हुई है। कही कही तो स्पष्ट ही पूजीवाद और पथभ्रष्ट नेताओ पर सीधे व्यग्य है। 'करूँ आरती मैं जल-जल कर सी' कविता मे भी जन-जन के प्राणो से निराला का मोह, सामाजिक यथार्थ की व्यक्तिगत अनुभूति का प्रमाण है। 'उनकी करुणा जो दलितो को मनुष्यता के सिहासन पर प्रतिष्ठित करती है, उनका आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टिकोण जो समाज के निहित स्वार्थों की असलियत पहचानता है, उनकी सघर्ष का सामना करने की प्रवृत्ति और जीवन मे आस्था, उन्हे आधुनिक निराशावाद से भिन्न प्रगतिशील मानवता का कवि सिद्ध करते है।'[1] इसी प्रगतिशील मानवता के दृष्टिकोण को हम जनवाद कहते हैं।

इस सब का मूल कारण यही है कि कवि के वर्तमान धर्म का पालन निराला ने पूरा-पूरा किया है। युग-विमुख उनका काव्य कभी नही रहा। छायावादी कवियो पर कल्पना विहार और स्वप्निलता के आक्षेप का परिहार निराला जिस शक्तिमत्ता से करते हैं कदाचित युग का कोई कवि नही करता। युग की आत्मा को पहचानने मे, उसका प्रतिनिधित्व करने मे निराला ने कभी पलायन नहीं किया। इस युगोन्मुखता का पहला रूप तो यह है कि उनके काव्य मे युग-चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। साहित्य का सापेक्षिक महत्व यहीं मिलता है। सचेत लेखक सामाजिक विकास की

१—डा० रामविलास शर्मा : लेखक को लिखे गए ३० दिसम्बर १९५८ के पत्र से

समस्याओ मे प्रति उदासीन न रहकर शान्ति, स्वाधीनता, जनतंत्र और जातीय संस्कृति के लिए सघर्ष करते हैं। आज के युग की परिधि में वे अब तक के संचित मानव मूल्यो की रक्षा करते हैं। इसी मार्ग पर चलकर वे इन मूल्यो को और भी समृद्ध करके अगले युगो को एक महान विरासत के रूप मे छोड जाते हैं।[1] युग-चेतना का यह रूप निराला मे केवल सूचना तक ही सीमित नही है। चेतना और सूचना मे अन्तर होता है।[2] कवि की युग-चेतना का तात्पर्य यह नही होता कि उसे युग संबंधी आवश्यक तत्वो की सूचना है। उसका तात्पर्य यही है कि वह युग के निष्कर्ष को पहचानता है, उसे परखने की दृष्टि से वह सम्पन्न है। युग का वास्तविक पूर्ण चित्रण करने के लिए निराला में जन-जीवन के साथ घनिष्ट सम्पर्क ही नही एक तादात्म्य की स्थिति मिलती है। वे उसके दूर खडे दर्शक-मात्र नही हैं। उनका काव्य सही अर्थों में प्रगतिशील हैं।

रवीन्द्र ने कहा था कि वास्तविक जगत के सारे रास्ते उनके जाने पहचाने हैं, वे उसके ऋण का शोध करते है, उसके आह्वान को मानते हैं। जहा दुख है, व्याधि है, कदर्यता है, वहा वे रोमांस की चादर फेंककर लौह-कवच धारण करते हैं।[3] निराला मे भी यह लौह-कवच धारण करने की प्रवृत्ति प्रारम्भ से रही है। नर्गिस की रोमांटिक भाव-धारा मे भी जगत के सौन्दर्य का आख्यान हुआ है। वन वेला मे इस पृथ्वी का घोर यथार्थ व्यक्त हुआ है। इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोडती हुई श्रमिका से निराला का भाव तादात्म्य इसी सामाजिक चेतना का परिणाम है। वाल्मीकि और कालिदास की रचनाओ के अंतस्तल में गहरी समाज भावना का अन्तः स्रोत प्रवाहित हो रहा है। डिवाइन कामेडी के अंतस्तल में भी सामाजिक चेतना की व्यंजना मानी जाती है। शेक्सपियर के साहित्य में भी एलिजाबेथ-युगीन इंग्लैंड की समाज चिन्ता की छाप है। गेटे ने तो कला को जीवन का चरम आश्रय ही माना था। निराला-काव्य में भी नवीन भारत की सामाजिक पृष्ठभूमि है। उनकी कविता वह माध्यम है जिसके द्वारा कवि अपने आसपास के जागतिक कर्मों मे कल्पना की राह से भाग लेता है और इस प्रक्रिया में वह उस चेतना को भी अभिव्यक्त करता है जिसका संबंध व्यक्ति से है तथा उस चेतना को भी जिसका सम्बन्ध सामाजिकता से है।[4] इस सामाजिक चेतना से जिस प्रगतिशील काव्य का रूप निराला मे मिलता है उसने राष्ट्रीय नव-जागरण की नई चेतना स्फूर्ति और प्रेरणा का अनुकूल वातावरण प्रस्तुत किया है। यह प्रगतिशीलता किसी सिद्धान्त-विशेष, मतवादी दृष्टि-कोण का परिणाम नही है। जो काव्य जीवन के यथार्थ को गम्भीरता और कलात्मक परिष्कार से प्रतिबिम्बित करता है वही प्रगतिशील काव्य है। यह भी महत् काव्य का सामान्य गुण हो सकता है। निराला-काव्य के तीसरे चरण मे इस प्रगतिशील की

१—डा० रामविलास शर्मा · प्रतीक अक्टूबर १९५५

२—युग-चेतना · अक्टूबर ५७

३—नव-जातक

४—हर्बे-पियर्स · मेल रिव्यू

अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक है। यो रूढि से विद्रोह करने के कारण उनका सम्पूर्ण काव्य प्रगतिशील है। प्रगतिशीलता का रूप भारतेन्दु के समय से ही प्रारम्भ हो जाता है लेकिन उसका चरम विकास इसी युग की उपलब्धि है। नवीन जागरण की पृष्ठ-भूमि मे राष्ट्रीय भावना का विकास भी भारतेन्दु से प्रारम्भ हो जाता है और वही से राष्ट्रीय साहित्य की धारणा भी। प्रसाद के नाटको और कतिपय गीतो मे इस भावना की उदात्त व्यजना हुई है। काव्य के क्षेत्र मे इस राष्ट्रीय भावना का उद्घोष निराला के काव्य की एक और विशेषता है। जागो फिर एक वार, शिवाजी का पत्र, आदि एकाधिक कविताओ मे यह विशेषता है जिसके दूसरे सास्कृतिक पक्ष का उद्घाटन यमुना, दिल्ली, यही, खडहर के प्रति आदि मे है। गीतिका के गीतो मे स्वदेश प्रेम विस्तृत है। जागो जीवन-धनि के, भारति जय विजय करे, जागे मेरे उर मे तेरी मूर्ति अनेक कविताओ मे राष्ट्रीय भावना का प्रकाशन हुआ है। इनमें भी स्थूलता से हटकर जीवन की स्पन्दित प्रेरणा पर अधिक आग्रह है। 'उनकी राष्ट्रीयता भी अन्य भावनाओ के अनुसार एक विराट भाव रूप समष्टि में प्रतिष्ठापित है जिससे देश विशेष की भौगोलिक सीमा के वर्णन से अधिक उसके सुख स्वास्थ्य की आकाक्षा ही उभर कर सामने आती है।'[1] युग के सामने जो नैतिक और सामाजिक प्रश्न उठे हैं उनको काव्यात्मक अभिव्यक्ति देने और भारतीय समाज एव जनता के सास्कृतिक पक्ष का उद्घाटन करने में उनकी राष्ट्रीयता का विराट रूप मिलता है। ये रचनाएँ एक सीमा तक काल की सभ्यता और सस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनकी राष्ट्रीयता की एक और विशेपता यह है कि वह भावावेश का परिणाम नही है। वह ऐसी राष्ट्रीयता भी नही है जिसका मूल्य समय के अवसान के साथ कम हो जाय। किसी तात्कालिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह नही है। उसके पीछे ऐतिहासिक एव सास्कृतिक चेतना का वल है। वह उद्वोधनात्मक है अवश्य, साथ ही सूक्ष्म भाव सवेदना और विराट भावना के कारण उसका स्थायित्व भी है।

निराला के काव्य की दार्शनिकता का एक रूप वह भी है जिसे हम उनका रहस्यवाद कहते हैं। 'परोक्ष की रहस्यपूर्ण अनुभूति से उनके गीत सज्जित हैं। रहस्य की कलात्मक अभिव्यक्ति की जो बहुविध चेष्टाएं आधुनिक हिन्दी में की गई हैं उनमे निराला जी की कृतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। कुछ कवियो ने तो रहस्यपूर्ण कल्पनाएँ की हैं, किन्तु निराला जी के काव्य का मेरुदण्ड ही रहस्यवाद है। उनके अधिकाश पदो मे मानवीय जीवन के ही चित्र हैं सही, किन्तु वे सब के सब रहस्यानुभूति से अनुरजित हैं।'[2] वस्तुत जिसे हम रहस्यवाद कहते हैं वह छायावादी साहित्यिक भूमि की ही दार्शनिक भूमि है। स्वच्छन्दतावाद की दो दिशाओ के रूप मे छायावाद और रहस्य-वाद माने जाते हैं। रहस्यवाद मानव की जिज्ञासा ज्ञान, प्रत्यक्ष जगत के परे एक

१—गगाप्रसाद पाडेय महाप्राण निराला पृ० २८१

२—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी · हिन्दी साहित्य · बीसवीं शताब्दी पृ० १४७

परोक्ष जिज्ञासा है। आत्म परक काव्य की रहस्योन्मुखता एक प्रमाणित तथ्य है। दार्शनिक भूमि पर अज्ञात-सत्ता को केन्द्र बनाकर, प्रतीक मानकर उसके प्रति जो भाव-निवेदन होता है वह सब रहस्यवाद की सीमा है। रहस्यवादी काव्य वह है जिसके केन्द्र मे प्रतीक की सत्ता होती है, जो आध्यात्मिक तथ्य का व्यक्त रूप होता है। जहाँ काव्य में प्रतीक और आध्यात्मिक केन्द्र की अर्थ स्थिति से भावनाएँ निःसृत होती हैं, उसे रहस्यवादी काव्य का क्षेत्र कहना चाहिए। व्यक्त प्रसार मे किसी आध्यात्मिक तत्व का भान, आभास पाना और दिव्य सौन्दर्य की झाँकी से उसे व्यक्त करना छायावादी भूमि है, लेकिन जब द्रष्टा पूरे दर्शन को देखकर उसे प्रगाढ करता है और उस अव्यक्त सत्ता को प्रतीक मानकर काव्य-सृजन करता है तब वह रहस्य-वादी भूमि कहलाती है। ज्ञान, प्रेम और सौन्दर्य की भाव-भूमियों पर रहस्यवाद का प्रकाशन होता है। जिनमे से अन्तिम तत्व छायावाद के अधिक निकट पडता है। आधुनिक रहस्यवादी कवियो मे निराला का सबन्ध ज्ञानात्मक रहस्यवाद से है। महादेवी मे वह प्रेम प्रधान है। महादेवी का रहस्यवाद प्रेमी-प्रेमिका के अनेक सबधो से नियोजित है। महादेवी की भूमि द्वैतात्मक है जब कि निराला अद्वैतवादी दार्शनिक हैं। उनका रहस्यवाद ज्ञानात्मक और बौद्धिक कोटि का है और प्रसाद के अधिक निकट है। निराला मे चिन्तन की प्रधानता है, महादेवी मे भाव की। प्रसाद की रहस्य चेतना भी ज्ञानात्मक, बौद्धिक और दार्शनिक है। उनमे भी अद्वैतवादी चेतना का सन्निवेश है। महादेवी और प्रसाद मे दुखवाद और आनन्दवाद का अन्तर है। ए, आत्मा के विरह निवेदन का स्वीकार करता है दूसरा उसके चिरन्तन सबन्ध को व्यक्त करता है। प्रसाद के सौन्दर्य, नारी वर्णन मे रहस्यशक्ति का आभास मिलता है। उसी की अनुभूति कवि को होती है। निराला मे भी प्रकृति और सौन्दर्य सत्ता मे एक ही परम सत्ता की अनुभति मिलती है। यद्यपि उनमे जिज्ञासा विरह और मिलन की स्थिति मान ली गई है,[1] तथापि उसे साधनात्मक रहस्यवाद के सोपानो के समकक्ष नही रखा जा सकता। वस्तुत यहाँ भी निराला की स्वच्छन्द वृत्ति का ही अपेक्षाकृत अधिक प्रकाशन होता है। जब जो भावना उठी उसी को लेकर वे आगे बढ गए। यहाँ भी विविध दिशाओ का स्पर्श उनमे मिलता है। निराला को कबीर के निकट भी इसीलिए नही रखा जा सकता। कबीर की साधनात्मकता के साथ उलट-बाँसियो का रूप भी मिलता है। यद्यपि उनका रहस्यवाद भी ज्ञानात्मक कोटि का है, तथापि यौगिक क्रियाओ और साधना-पद्धतियो की जो पृष्ठभूमि वहाँ है वैसी किसी भूमि का परिचय निराला में नहीं मिलता। निराला में 'बहुरिया' के प्रतीक भी नहीं मिलेंगे। प्रार्थना-परक गीतो में भी जननी मा आदि का सम्बोधन रहस्यात्मक स्थितियो को नही व्यक्त करता, अवश्य वहाँ रहस्यपूर्ण वातावरण है। उनका आरम्भ भी 'मान-वीय चित्रण' से होता है। इनमें अनहोनी परिस्थितियाँ नही है, सयमित जीवन-

---

१—विश्म्भरनाथ उपाध्याय : महाकवि निराला—काव्यकला और कृतियाँ पृ० २३८-३९-४०

सौन्दर्य का आलेखन है, यद्यपि इनमें कोई रहस्य प्रकट नही है। तथापि रहस्यवादी कवि का स्वर सर्वत्र व्याप्त है।[1] यो 'जुही कली' 'तरगों के प्रति', 'सन्ध्या सुन्दरी' भी एक रहस्य वातावरण से सन्निविष्ट रचनाएं हैं। अर्चना और आराधना के गीतो में निविड आत्म निवेदन है। गीतिका में कुछ रहस्यमय स्थितियो का भी आलेख है। लेकिन उन सब में एक चिन्तन की धारा है। जागृति में सुप्ति थी का शृ गार परा-सकेत माना जा सकता है। शेफालिका के विषय में भी यह कहा जा सकता है, करुण की व्यजना ही दार्शनिक है। इसी प्रकार गीतिका के 'अस्ताचल रवि जल छलछल छवि' मे रहस्य वातावरण है और 'हुआ प्रात तुम जावोगे चले' मे परकीया की उक्ति के द्वारा प्रेम-रहस्य प्रकट किया गया है। 'देकर अन्तिम कर रवि गए अपर पार' में एक रहस्य सृष्टि है और 'तुम्ही गाती हो अपना गान' मे शुद्ध परोक्ष के ज्योति चित्र भी हैं।[2]

रवीन्द्र का प्रभाव छायावादी रहस्यवादी कवियो पर देखने की प्रवृत्ति लोगो मे है। जहाँ तक निराला का सम्बन्ध है, रवीन्द्र और उनमें यथेष्ट पार्थक्य है। रवीन्द्र के रहस्यवादी मूल भूमि—जो रहस्यानुरक्ति पर आधारित है—जिज्ञासा की बौद्धिकता का परिणाम नहीं कही जा सकती। वे अति समृद्ध भावात्मकता से सर्वत्र रजित हैं और एक आत्यतिक अस्पष्ट मधु-चर्या मे अधिक विस्मृत हो जाते हैं। उनकी इस अनुरक्त रहस्यात्मकता में आत्मिक अकन की अपेक्षा भावाकुलता का रग अधिक प्रगाढ है, सत्य की प्रखर और सघर्ष प्रधान गहन अनुभूति की अपेक्षा उसमे मधुर-हृद्य-वेदना और सुवासित नि श्वास की व्यजना अधिक है।'[3] मैं नही जानता क्यो ?[4] की स्थिति वहाँ सर्वत्र मिलती है। इसका कारण सम्भवत यह है कि रवीन्द्र पाश्चात्य प्रभाव की सर्वोत्तम उपलब्धि भी हैं।[5] आशा है इससे रवीन्द्र और निराला का अन्तर स्पष्ट हो जायगा।

उपरोक्त विवेचन से कदाचित यह आभास हो कि निराला भी उन आध्यात्मिक

१—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी पृ० १४८

२—वही

3—In his devotional—my-stical works, too, we often have the luxury rather than the ardour of his spirit, his delicious heart-aches and perfumed sighs rather than any deep experience wrung out of hard struggle with fact J. C GHOSH. P. 107

4—I don't know why ?

5—The finest product of western influence:

[Bengali Literature :

श्रेणी के कवियो के सदृश्य हैं जिनके विषय मे जानसन ने कहा था ।[१] 'वे सर्वाधिक विरोधी विचारो को बलपूर्वक एकीकृत कर देते हैं ।' (मेरा तात्पर्य यहाँ निराला की जब जो भावना आई उसे लेकर बढ चलने में है, उनकी विविधता से है) लेकिन जानसन का यह कथन उचित नही है । निराला की विविधता का निष्कर्ष यही नही होगा । विविध स्थितियो और विचारो का प्रकटीकरण यह प्रमाणित नही करता कि वे विरोधी भी हैं। फिर निराला के काव्य की रहस्य-सत्ता के विषय मे दुर्बोधता भले व्यक्त की जाय वहाँ विरोध नही है ।—निराला की रहस्यवादी रचनाओं मे भी बुद्धितत्व का प्राधान्य है, यह हम कह चुके हैं । विचारक कोटि की दार्शनिकता उनमे सर्वत्र प्राप्त है । इस विचारात्मकता, बुद्धितत्व-प्रधानता का यह निष्कर्ष भी नही कि वहाँ अनुभूति की न्यूनता है । वस्तुत: काव्य-क्षेत्र मे जब उनका तीव्र सवेदित रूप व्यक्त होता है तब अनुभूति का तत्व तो स्वत प्रमाणित है । इसका प्रमाण, हम इसे भी मानते हैं कि उस रहस्य की अभिव्यक्ति लौकिक और मानवीय चित्रण के द्वारा प्रकाश युक्त है । "मानवोचित सहृदयता और तन्मयता के साथ (ही) उच्चकोटि की दार्शनिक अनुबध (वहाँ) है, अतएव उनके गीत भी मानव-जीवन के प्रवाह से निखरे हुए, फिर प्रकाश से चमकते हुए हैं ।"[२] रहस्य से आवेष्टित होकर भी उनकी रचनाओ की प्रकृत व्यजना को क्षति नही पहुँचती और मध्ययुगीन सतो अथवा पाश्चात्य मिस्टिक कवियों की तरह कुहासामय वातावरण वहाँ नहीं मिलता ।

सामान्यत कविता के तीन तत्व होते हैं—राग-तत्व, बुद्धि-तत्व और कल्पना-तत्व । प्राय ऐसा होता है कि किसी कवि मे इनमे से एक ही तत्व की प्रधानता होती है और वही चरम विकास को प्राप्त होता है । उसके काव्य का मूल इनमे से कोई एक तत्व होता है । प्रसाद मे राग-तत्व की प्रधानता है । वे भावुकता प्रधान कवि हैं । इसी से सौंदर्य के प्रति उनका सहज आकर्षण है । उनके काव्य मे सौंदर्यमय रहस्य ही केन्द्रीय तत्व है । इसके विपरीत निराला मे बौद्धिक शक्ति सर्वोपरि है । कलापक्ष के परिष्कार के साथ उनके काव्य मे तटस्थता का कारण यही बुद्धि तत्व की प्रधानता है । काव्य के शिल्प पक्ष मे शाब्दिक अलकारो, रूपको का प्राधान्य और छन्द योजना तथा रूप सृष्टि मे चित्र निर्माण की क्षमता निराला की सर्वाधिक विकसित है । पत मे कल्पना-प्राधान्य है । छायावादी उनकी कविताओ मे कल्पना पक्ष का अपेक्षाकृत अधिक

1—"Johnson, who employed the term 'meta physical poets' apparently having Donne, cleveland and cowley chiefly in mind, remarks of them that the most heterogeneous ideas are yoked by violence together : The force of this impeachment lies in failure of the conjunction the fact that often the ideas are yoked but not united " T.S. Eliot . Metaphysical poets · seelected Essays p 283

२—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी . हिन्दी साहित्य-बीसवीं शताब्दी पृष्ठ १४७

विकास है। किसी चित्र-निर्माण या वस्तु-वर्णन मे असख्य अप्रस्तुतो को ले आना और उपमा की शृङ्खला खडी कर उसे सज्जित करना पत की महत्वपूर्ण विशेपता है। लेकिन यही पत और निराला में अन्तर भी है। चित्र की सम्पूर्णता ही उनके निर्माण का वास्तविक प्रस्थान हो तो (है भी) पत मे यह विरल है। पत मे अगो का वाहुल्य तो है पर अनेक अगो के एकीकरण से सम्पूर्णता की ओर उनकी दृष्टि कम ही गई है। निराला का अग-समष्टि और चित्र-सम्पूर्णता पर अधिक ध्यान है। काव्य की जो मौलिक प्रेरणा—कल्पना—है वह पत मे उच्चकोटि की है इसमे सन्देह नही, पर इस कल्पना को सज्जित कर उसे रूप का आकार दे देने की विशेषता निराला की है। इसीलिए पत के काव्य मे जहाँ उपमा उत्प्रेक्षा का आधिक्य है वहाँ निराला में रूपको का। वस्तुतः यह रूपक भी एक या अनेक कल्पनाओ का सानिध्य व्यक्त करते हैं। इस अलकरण में वुद्धि तत्व की प्रधानता भी देखी जा सकती है। यह विवाद असाहित्यिक होगा कि इनमें से कौन-सा तत्व अधिक महत्वपूर्ण है या श्रेष्ठ है, क्योंकि श्रेष्ठ कवियो का एक प्रास्थानिक निकष इन तीनो के समाहार का ही होगा। निराला मे वुद्धितत्व की प्रधानता है इसका निष्कर्ष यह नही कि अन्य दो तत्व वहाँ क्षीण हैं या उनकी स्थिति ही नही है। वस्तुत' कहना यही है कि राग और कल्पना के होते हुए भी निराला मे वुद्धि की प्रधानता है। इसी प्रकार प्रसाद मे रागतत्व की प्रधानता है सही, लेकिन वुद्धि और कल्पना का तत्व भी खोया नहीं है। 'प्रलय की छाया' की उदात्त कल्पनाएँ, कामायनी के मनोभावो का मूर्ति-विधान और प्रकृति और सौन्दर्य के उदात्त वर्णन मे हमे कल्पना तत्व का समुचित निर्वाह तो मिलता ही है साथ ही उनकी दार्शनिक पीठिका में उनका वुद्धितत्व कार्य कर रहा है। निराला मे भी उनके रूपक-विधान और चित्र निर्माण की क्षमता में कल्पना का सन्निवेश है—नर्गिस की कल्पना तुलसीदास का प्रकृति वर्णन और शक्ति-पूजा मे उनकी कल्पना शक्ति का परिचय मिलता ही है, साथ ही परवर्ती अर्चना आराधना युग मे अथवा भक्ति-परक गीतो मे रागात्मिका शक्ति का भी। यह परिमल गीतिका और अनामिका की प्रेम-भावना प्रधान कविताओ में भी है पर इन सवमे जो वुद्धि-तत्व की अन्तर्धारा प्रवाहित हो रही है उसी के कारण निराला को हमने वुद्धि-तत्व प्रधान कवि कहा है। इन तीनों—राग, वुद्धि, कल्पना—का समन्वय जिस श्रेणी का हम प्रसाद और निराला मे पाते हैं वैसा अन्य कवियों—पत या महादेवी मे नहीं। पत कल्पना तत्व को ही चरम विकसित अवस्था तक ले गए और महादेवी ने छायावाद की दार्शनिक भूमि, रहस्यवाद को अपना क्षेत्र वनाया। इसी आधार पर हम कहते हैं कि प्रसाद और निराला ने जहाँ युग का नेतृत्व भी किया वहाँ पत और महादेवी ने युग की विशेप धाराओ का प्रतिनिधित्व। नेतृत्व का भी अधिकांश और प्राथमिक श्रेय हम निराला को ही देना चाहते हैं। इसका कारण है कि स्वच्छन्दतावाद का जितना पूर्ण विस्तार निराला मे मिलता है उतना न पत मे है, न महादेवी मे और न ही प्रसाद में। स्वच्छन्दतावाद की जितनी विभिन्न दिशाओ का स्पर्श निराला करते हैं उतना युग का कोई कवि नही। विशालता, विविधता, व्यापकता और विस्तार

दृष्टि से उनके काव्य की सीमा प्रसाद से वृहद् है (साथ ही यह भी हम स्वीकार करते हैं कि प्रसाद की तुलना में निराला की गहनता, प्रगाढता उसी कोटि की नही ।) काव्य की इसी वृहद् सीमा, व्यापकता और तटस्थता के कारण ही हम उन्हें युग का अप्रितम कवि कहते हैं। कवि-भोक्ता और कवि सर्जक का जितना पार्थक्य निराला में है उतना कदाचित् किसी मे नही। भोगने वाली प्राणी और सर्जक मनीषा का यह पार्थक्य, कलाकार की जिस सम्पूर्णता से निराला मे व्यक्त होता है वही उनकी मौलिक अप्रतिमता है। निराला वास्तविक अर्थों में कलाकार हैं। कलाकार की निस्सगता और तटस्थता को भी उनके बुद्धि-तत्व का ही परिणाम मानना चाहिए। हिन्दी कविता के स्वच्छन्दतावादी युग से निराला काव्य क्षेत्र मे नेतृत्व करते आ रहे हैं, स्वाभाविक रूप से उनका अवदान महत्वपूर्ण है।

युग को निराला की सर्वोत्तम देन एक विद्रोह और क्रान्ति की है जो काव्य-क्षेत्र में चली आती हुई मान्यताओ और रूढि के विरुद्ध थी। स्वच्छन्दतावाद का विद्रोही स्वरूप सर्वाधिक, निराला के काव्य मे प्रकट हुआ है। छन्दों का बन्धन अस्वीकार कर उन्होंने उसका नया निर्माण किया। भाषा, भाव, शैली और छन्द सभी मे उन्होंने आत्यन्तिक विद्रोह किया। जीवन और काव्य दोनो क्षेत्रो मे उनका विद्रोह समगति का है। पुरातन और नूतन का सघर्ष उनके काव्य मे बडे नाटकीय ढग से प्रस्तुत है। उनके विद्रोह का प्रमुख रूप मुक्त काव्य है। "उनके मुक्त काव्य मे स्वच्छन्द कल्पना का अति स्वाभाविक प्रवाह है। काव्य का चिर दिन से चले आते हुए छन्द-बन्ध से छूटना हिन्दी मे एक स्मरणीय घटना है। इस श्रेय के अधिकारी निराला जी ही हैं।"[१] वास्तविक अर्थों मे मुक्त छन्द के प्रवर्तक वही हैं, यह हम परिवर्त तीन और आठ के प्रासगिक विवेचन में देख चुके हैं। हमारी धारणा है कि वह हिंदी की मौलिक देन है। परिमल की तृतीय खड की रचनाओ मे उन भूमियो का व्यावहारिक निर्देश है जिनके आधार पर मुक्त छन्दो की सृष्टि विकसित हो सकेगी। मुक्त छन्द के विषय मे उनकी स्थापनाओ का स्वतत्र महत्व है। वस्तुत "स्वच्छन्दता का जो अबाध स्वरूप निराला जी की रचनाओ मे देखा जाता है, उसकी तुलना इस युग के किसी दूसरे कवि से नही हो सकती।"[२]

निराला की दूसरी देन उनकी गीत-सृष्टि है। हिन्दी में गीतो का जैसा प्रयोग, रूप निराला ने स्थापित, निर्देशित किया, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उनके गीतो मे शास्त्रीय सगीत-पद्धति के साथ ही काव्य परिष्कार भी है। मुक्त छन्द के बाद छन्दोबद्ध सगीतात्मक सृष्टि का उनका यह दूसरा चरण हिन्दी काव्य के लिए नया प्रस्थान ही कहा जायगा। निराला शास्त्रीय सगीत के सैद्धान्तिक और व्यवहारिक साधक रहे है। गीतिका की गीत-सृष्टि मे उन्होंने शास्त्रीय निरकुशता के प्रति विद्रोह किया है और रूप तथा छन्द विधान की नवीन शैलियो को अभिसूचित। लय और ताल मे बधे हुए

---

१ डॉ नन्ददुलारे वाजपेयी हिन्दी साहित्य—बीसवीं शताब्दी पृ० १२६
साहित्य पृ० २६ (आचार्य वाजपेयी)

उनके उच्च काव्य का दिशा निर्देश शास्त्रीय संगीत के हीन काव्यत्व के परिष्कार की ओर है। इन गीतों का आधार काव्यात्मक संगीत अथवा संगीतात्मक काव्य है। यहाँ दो अन्वितियाँ एक होती है। गीतिका के विषय मे एक शका उठाई जा सकती है—कि उसका प्रेषण सीमित वर्गों तक ही हो सकता है, जिसका परिहार अर्चना, आराधना के गीत करते हैं। लोक-गीतो की सहज-भूमि पर आधारित लोक-धुनो की प्रचुरता वेला, अर्चना-आराधना मे मिलती है। हिन्दी गीत की परम्परा को दोनो रूप एक अप्रतिम देन हैं।

काव्य को सामाजिक यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित करने और उसे जन सामान्य की वाणी बनाने का श्रेय निराला की तीसरी देन है। यह सही है कि प्रगतिशील-साहित्य-सघ की स्थापना—जो साहित्य मे यथार्थवादी भूमियो और सामाजिकता मानवतावाद के प्रति आग्रह लेकर चली थी—सन् ३६ मे हुई। पत युगात मे १६३६ में इसे नये मोड की सूचना देते हैं तथा ग्राम्या और युगवाणी की रचनाओ मे इस नयी दिशा की अनिवार्यता पर विश्वास प्रकट करते हैं, पर इस सामाजिक यथाथ और दलित शोपित वर्ग से सहानुभूति का प्रतिवादी रूप भी परिमल से ही मिलने लगता है। कुकुरमुत्ता, नये पत्ते और अणिमा, वेला की मूल भूमि यही है। प्रगतिवादी काव्यधारा का भी सही नेतृत्व निराला करते हैं। इसके पर्व तक इस धारा मे या तो मात्र वौद्धिक सहानुभूति मिलती है या उस वर्ग के प्रति केवल एक प्रदर्शन प्रिय-आकर्पण।

अपने वृहत्तर प्रयोगो के रूप मे स्वच्छन्दतावादी काव्य को सास्कृतिक चेतना और महाकाव्यात्मक शैली का यह अवदान निराला का एक दूसरा प्रदेय है। यहां स्वच्छन्दतावादी काव्य अपनी परम्परा से कटी हुई शाख की तरह अलग नही है इस रूप मे कामायनी के पश्चात् निराला की इन रचनाओ का स्थान महत्वपूर्ण है यो मुक्त-छन्द की स्थापना मे भी निराला ने अपनी वैदिक परम्परा को याद किय है। प्रौढता का ऐसा श्रेय कदाचित प्रसाद को छोडकर और किसी को नही है ...वि व्यक्तित्व और काव्य रीतियो की इस प्रौढता के कारण प्रसाद और निराल ...वच्छन्दतावादी युग की ऐसी उपलब्धियाँ हैं जो उनके महत्व को स्थायी बनायेगी ...लाकार की निस्सगता, युग की व्यजना, परम्परा की ऐतिहासिक चेतना, भाप ...ा परिष्कार, काव्य के कथ्य का औदात्य और दार्शनिक परिवेश आदि कतिप ...से गुण उनके काव्य मे है जो महत् काव्य की धारणा को पुष्ट कराते हैं औ ...म बिना सकोच के उनके काव्य को महत् काव्य (Great Poetry) कह ...कते हैं।

युग की काव्य दृष्टि को निराला की काव्यशास्त्रीय देन का विवेचन हम परिवर्तः तीन मे कर चुके हैं। उनकी काव्य दृष्टि मे जहाँ क्रान्ति विद्रोह स्वच्छन्दता नवीनता का आग्रह है, वही निर्माण की दिशाओ, स्थापना के नये आयामों का निर्देश भी। परिमल और गीतिका की भूमिका, प्रबन्ध-पद्म और प्रबन्ध-प्रतिभा तथा 'चयन'

के उनके साहित्यिक निबन्ध स्वच्छन्दतावादी काव्य-शास्त्र के निर्माण मे महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं। इनमें काव्य की मुक्ति के साथ उसको मानव की अनुभूतियो की प्रकृत अभिव्यजना मानना, काव्य के मूल में कल्पना का आख्यान, प्रतिमा और साधना का कवि-कर्म में महत्व और काव्य के शिल्प पक्ष पर निराला के विचार स्वच्छन्दवादी काव्य-दृष्टि का प्रकाशन करते हैं। इस रूप मे उनका महत्व हम लिरि-कल वैलेड्स की भूमिका और कालिरिज की स्थापनाओ के (अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी काव्य में) स्थान से कम नहीं आकते। मुक्त छन्द में वे हिन्दी में एक साथ हॉपकिन्स और वॉल्डह्विट मैन के प्रतीक हैं। युग का अधिकाश काव्य उनकी स्थापनाओ और मान्यताओ को लेकर चला है। यद्यपि उनका प्रत्यक्ष अनुकरण सफल नहीं हुआ तथापि उनकी काव्यदृष्टि का प्रभाव युग व्यापी है, इसमें कोई सन्देह नही। उनकी मुक्त छन्द की सृष्टि तो सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन के रूप में आदृत हो ही चुकी है।[1]

इस प्रकार निराला के काव्य का प्रत्येक मोड युग को उनकी देन मानी जा सकती है। मुक्त छन्द से लेकर उनकी गीत-दृष्टि, वृहत्तर प्रयोगो का महाकाव्यात्मक औदात्य, सामाजिक यथार्थ के रूप में मानवतावादी और जनवादी काव्य का रूप सभी एक नया-दिशा बोध देते हैं। दर्शन और काव्य का, सगीत और काव्य का समन्वय एव काव्य में कलाकार की निस्सगता, व्यापकता का आख्यान भी युग को उनकी देन हम मानते हैं। इस विविधता और व्यापकता, साधना और प्रौढता के कारण उनके काव्य को महत् काव्य कहने में हमें जरा भी सकोच नही है।

'इत्यलम्'

परिशिष्ट

उपस्कारक ग्रन्थ-सूची

निराला काव्य

१.	परिमल	(सप्तमावृत्ति)
२	गीतिका	(चतुर्थ सस्करण)
३.	तुलसीदास	(चतुर्थ सस्करण)
४.	अनामिका	(द्वितीय संस्करण)
५	कुकुरमुत्ता	(१९५२)
६	अणिमा	
७.	वेला	(१९४६)
८.	नये-पत्ते	(१९४६)
९.	अर्चना	(१९५०)
१०.	आराधना	(स० २०१०)
११	गीत-गुज	(सं० २०११)

समीक्षा और निबन्ध सग्रह

१	प्रबन्ध पद्म	(सं० २०११)
२.	रवीन्द्र कविता कानन	(१९५४)
३	प्रबन्ध प्रतिभा	
४.	चयन	
५	पतजी और पल्लव	

जयशकर प्रसाद— लहर, आँसू, कामायनी, काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध
सुमित्रानन्दन पत—पल्लव ग्राम्या, युगवाणी
महादेवी वर्मा—याम., आधुनिक कवि, पथ के साथी
अयोध्यासिह उपाध्याय—प्रियप्रवास (भूमिका)

समीक्षात्मक ग्रन्थ

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, चिन्तामणि भाग २
आचार्य श्यामसुन्दरदास—रूपक-रहस्य, गोस्वामी तुलसीदास
आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—हिन्दी साहित्य-बीसवी शताब्दी (१९४९)
आधुनिक साहित्य (स० २००७)
नया साहित्य . नये प्रश्न (१९५५)
जयशकर प्रसाद (स० २००७)
डा० रामविलास शर्मा—निराला (१९४८)
स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य (१९५६)
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१९५३)
डा० नगेन्द्र—आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ
सुमित्रानन्दन पत
विचार और विश्लेषण
विचार और अनुभूति
डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—आधुनिक हिन्दी साहित्य (१८५०-१९००)
डा० केसरी नारायण शुक्ल—आधुनिक काव्य-धारा
डा० भोलानाथ तिवारी—हिन्दी साहित्य (१९२६-१९४७)
डा० रघुवश (सम्पादक)—हिन्दी काव्य की प्रवृतिया
डा० प्रेमनारायण शुक्ल—हिन्दी साहित्य मे विविधवाद
डा० पुत्तूलाल शुक्ल—आधुनिक हिन्दी काव्य मे छद योजना
विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—काव्याग कौमुदी
जगन्नाथ प्रसाद भानु'—छन्द प्रभाकर
शम्भूनाथसिह—छायावाद युग
नामवर सिह—छायावाद
प्रो० क्षेम—छायावाद के गौरव चिन्ह
बच्चन सिह—क्रान्तिकारी कवि निराला
विश्वम्भरनाथ उपाध्याय—महाकवि निराला : काव्य कला और कृतिया
गगाप्रसाद पाँडेय—महाप्राण निराला
श्री बल्भ्रा—महाकवि श्री निराला अभिनन्दन ग्रथ
उमाशकर सिह—महाकवि निराला का निरालापन
पद्मसिह शर्मा कमलेश—मैं इनसे मिला (४)